नलोदय

कालिदास

कालिदासग्रन्थावलि.

जिसमें-

महाकवि कालिदास कृत-नलोदय मेघदूत, ऋतुसंहार,
शृंगारतिलक, पुष्पबाणविलास, विक्रमोर्वशी,
अभिज्ञान शाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र,
श्रुतबोध, शृंगाररसाष्टक ग्रन्थों का
पं० कन्हैयालालजी मिश्र कृत
सरल भाषानुवाद है।

प्रकाशक—

पं० हरिशंकर शिवशंकर शर्मा,
अध्यक्ष-'कैलास' समाचार-पत्र
हिमालय-डिपो, हिमालय-प्रेस,
मुरादाबाद।

प्रथमबार ४००० } दिसम्बर १९२५ } मूल्य ३)

मुद्रक—
प० शिवशंकर शर्मा,
अध्यक्ष—'हिमालय-प्रेस', मुरादाबाद ।

निवेदन ।

देवादिदेव महादेव भोलेनाथ की असीम कृपा से 'कालिद ग्रन्थावली' का पूर्व भाग प्रकाशित होकर आपके करकमलों में उपस्थित है। इस पूर्व भाग में (मेघदूत, पुष्पबाण विलास, ऋतुसंहार, शृङ्गार रसाष्टक, शृङ्गार तिलक, नलोदय, अभिज्ञान शाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र विक्रमोर्वशी, और श्रुतबोध इन दश ग्रन्थों का सरस अथच रोचक भाषानुवाद दिया गया है और पुस्तक प्रमाण कोटि के बाहर न होजाय, इस लिये प्रत्येक ग्रन्थ के [illegible] का एक मूल श्लोक लिखकर क्रमशः शेष सब श्लोकों के भी अंक [illegible] गये हैं, जिससे [illegible] सुगमता पूर्वक प्रत्येक श्लोक का अनुवाद [illegible] सकता है। यद्यपि मेरी चिरकाल से यह इच्छा थी कि, [illegible] कालिदास की ग्रन्थावली का एक मनोहर संस्करण भाषानु[illegible] सहित प्रकाशित किया जाय, किन्तु तथापि इतने बड़े सा[illegible]क का[illegible] में हठात् हस्ताक्षेप करते हुए चित्त घबराता था; कारण कोई ऐसा सहायक प्राप्त नहीं होता था, जो उक्त ग्रन्थावली को केवल लोकोपकार की दृष्टि से प्रकाशित करने के लिये कटिबद्ध हो। पर 'प्रभु अपने हीनहु आदरही' की कहावत के अनुसार गत ज्येष्ठ मास में एक दिन अकस्मात् स्वनाम धन्य पण्डित श्री हरिशंकर जी शास्त्री अध्यक्ष 'हिमालय प्रेस' से मेरी भेंट हुई, और बातों बातों में ही शास्त्री जी ने कहा कि,–'हम अपने 'कैलास' पत्र के ग्राहकों को इस वर्ष कालिदास की ग्रन्थावली ही उपहार में देना चाहते हैं, आप उन ग्रन्थों पर भाषानुवाद लिख दीजिये,' आशा रूपी लता पर जल सिंचन हुआ। मैंने उस अभीष्ट आज्ञा को सहर्ष शिरोधार्य करके कार्यारम्भ किया और छै मास के भीतर ही सब ग्रन्थों का अनुवाद लिखकर उक्त महानुभाव को समर्पण कर दिया। यद्यपि मुझमें इतनी, बुद्धि–योग्यता और विद्या नहीं थी, कि मैं कालिदास सरीखे महाकवि के ग्रन्थों पर भाषानुवाद लिखता, किन्तु 'अति अपार जे सरित वर, जे नृप सेतु कराहिं। चढ़ि पिपीलिका परम लघु, बिन श्रम पारहि जाहिं॥' बस, इसी न्याय से इसमें कृतकार्य होने को समर्थ हुआ हूँ। अब यह संस्करण पढ़ने से, यदि पाठकगण सन्तुष्ट हुए, तो मेरा श्रम सफल होगा। मनुष्य से पग–पग में भूल होती है, मनुष्य से भूल न होने पर वह देवता होता। ग्रन्थावली के इस संस्करण

में भ्रम प्रमाद नहीं है, यह बात कैसे कह सकता हूं ? किन्तु जहाँ तक संभव-भ्रम प्रमाद दूर करने के यत्न में त्रुटि नहीं की गई है । सहृदय, पाठकवर्ग इस संस्करण में किसी प्रकार का भ्रम प्रमाद देखने पर क्षुभित न हों, वरन पत्र द्वारा मुझे लिख भेजें, तो मैं आगामि संस्करण में उस दोष को दूर करदूंगा और उनका चिर कृतज्ञ रहूंगा।

कालिदास के आविर्भाव होने का समय-जन्म स्थान, किस कुल में जन्म, कौन भाग्यवान् उनके पिता, कालिदास का परिचय, देवी के वर से विद्यालाभ इत्यादि किम्वदन्ती के ऊपर निर्भर करके यद्यपि अनेक मनुष्य अनेक प्रकार के भाव प्रकाशित करते हैं, किन्तु किसी के साथ किसी का मेल नहीं मिलता। सारांश कालिदास के उत्पन्न होने का समय निरूपण करना अत्यन्त कठिन है. वह अतीत के घोर अन्धकार में निमग्न हैं। उक्त महाकवि की जीवनी लिखना और अंधकार के समुद्र में गोता मारना दोनों बातें ही समान हैं ।

उपसंहार में मैं अपने परममित्र, हिमालय प्रेसाध्यक्ष, सर्व गुणालंकृत श्रीमान् पण्डित हरिशङ्कर जी शास्त्री विद्यारत्न महोदय को अनेकानेक हार्दिक धन्यवाद देता हूं कि-जिन्होंने अपना प्रचुरधन व्यय करके कालिदास की ग्रंथावली 'कैलास' के प्रत्येक ग्राहक को बिल्कुल मुफ्त उपहार में देकर बल्कि डाँक व्यय तक अपने पास से लगाकर हिन्दी-हिन्दू और हिन्दोस्थान में सदा के लिये अपना नाम चिर स्मरणीय किया है ।

भाषानुवादक—कन्हैयालाल मिश्र ।

कवि प्रतिभा।

प्रतिभा समस्त देश और सर्व समय में पूजी जाती है। समय के अनुसार जाति हीनावस्था वा उन्नतावस्था में अवस्थान कर सकती है, किन्तु प्रतिभा ऊँचे शिखर पर स्थित होकर हीन को उन्नत और उन्नत जिससे नीचे न गिरे, इस विषय में सहायता करती है। इसी लिये कालिदास की प्रतिभा हमारे सुख और दुःख में—सम्पद् और विपद् में—उत्साह और अवसाद के समय मन्त्र महौषधि की समान अवलम्बनीय है। हमारे दुरावस्था में गिरने पर भी स्वदेश वासी महापुरुषों की अमृत वर्षिणी वाणी हमारे सूखे हृदय में वल का संचार करती है। हम न छोटे हैं—न हीन हैं और न हम अकर्मण्य (निकम्मे) ही हैं, हमारे ही एक मनुष्य ने जब जगत् में श्रेष्ठ स्थान पाया है और वह (यावच्चन्द्र दिवाकर) मनुष्य समाज का वरणीय रहेगा—तब हमारी आशा कभी निराशा में परिणत नहीं होसकती। इसी कारण कहना पड़ता है, महाभाग कालिदास के ग्रन्थ हमारी साधारण सम्पत्ति है, इस अमूल्य सम्पत्ति का प्रचुर प्रचार और हमारे पूर्वजों की रत्नमाला प्रत्येक भारतवासी काव्य-रस-रसिक व्यक्ति के कण्ठ में शोभायमान हो।

कालिदास केवल हमारे ही नहीं—वरन वे मनुष्य समाज की साधारण सम्पत्ति है। इसी लिये उनके ग्रंथ में कोई प्रांतिक भाव दिखाई नहीं देता। भारत के किसी देश का प्रथम आलोक (प्रकाश) उन्होंने देखा था, यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। जब उन्होंने 'प्रचण्ड सूर्य' की कथा लिखी, तब उनको उत्तर भारत का मनुष्य और जब उन्हों ने मेघ महाशय को मालवा प्रदेश रत्ती रत्ती दिखा कर विश्राम लिया, तब वे मालवा वासी मनुष्य जान पड़ते हैं। भारत उनकी जन्मभूमि है, भारत के वन—उपवन—समुद्र—नदी—पर्वत उपत्यका प्रत्येक से वे भली भाँति परिचित थे। इन सब नद-नदी—पहाड़—कान्तार—वन—उपवन के सहित मानों कवि ने वार्तालाप करके सबका परिचय जान लिया था। हमारे भारतवर्ष से और भी किसी कवि ने ऐसा स्नेह किया था, या नहीं, यह नहीं जाना जाता। भारत के सुख दुःख के साथ उनका हृदय मानों जड़ित होगया था। कालिदास हमारे जातीय कवि थे; क्या इसी लिये प्रत्येक जाति उनको स्वदेशवासी प्रमाणित करने की चेष्टा करती है?

बंगाल, मिथिला, उड़ीसा, तैलंग, महाराष्ट्र इत्यादि देशों में कालिदास विषयक नाना प्रकार के प्रवाद प्रचलित दिखाई देते हैं। जैसे वे प्रथम जीवन में अत्यन्त मूर्ख थे, फिर देवी के वर से उनके ज्ञानचक्षु खुले हम भारतवासी सब बातों में ही ईश्वर की सत्ता का अनुभव करते हैं। वास्तविक बड़े पुरुष को श्रेष्ठ पद देने में हम कभी आगा पीछा नहीं सोचते। कालिदास असाधारण पुरुष और भगवती के वरपुत्र हैं, इस विषय में हमको कोई सन्देह नहीं।

कालिदास जिस समय अवतीर्ण हुए थे, वह समय भारत के इतिहास का एक अपूर्व समय था। कालिदास ने अपने ग्रंथों में उस समय का जो वृत्तान्त लिखा है। वह समय भारतवासियों के लिये महत्वजनक है उस समय भारत वासी भारत की चारों सीमा में आबद्ध रहने से मानों तृप्ति नहीं मानते थे। संप्रसारण के लिये, हाथ पैर हिलाने के लिये, पृथ्वी में अपनी सत्ता फैलाने के लिये, समस्त भारतवासियों को एक राजा के आधीन रखकर उसके झण्डे के नीचे खड़े होकर, सम्पूर्ण भू-मण्डल को विजय करने के निमित्त मानों कवि ने सबको एकत्रित होने का आदेश किया है। उस समय हम देखते हैं, भारत-शत्रु हूंण—कम्बोज—पारसीक—यवन—पाश्चात्य इत्यादि को परास्त करके भारतकी प्रधानता स्थापन के लिये कवि ने मानों रघु की दिग्विजय वर्णन के मिस देश वासियों को जागरित, उत्तेजित और आशान्वित किया है। यह किस समय की कथा है? पण्डित रामावतार शर्मा और डा० ब्लक ने निश्चित किया है कि—यह और किसी समय की कथा नहीं है, जिस समय गुप्त सम्राट् ने समूचे भारत को एक छत्राधीन किया था, जिस समय उसने बौद्ध के प्रभाव से देश वासियों को विमुक्त करके ब्राह्मण्य धर्म की पुनः प्रतिष्ठा की थी, वेद विहित क्रिया कलाप में जिस समय पुनर्वार देश परिपूर्ण हुआ, उसी समय महाभाग कालिदास का आविर्भाव हुआ था। कवि ने प्रकारान्तर में कहा है।

"आसमुद्रक्षितीशानाम्"

इससे समुद्र गुप्त की कथा अवगत होजाती है।

'तस्मै सभ्याः सभार्याय गोप्त्रे गुप्ततमेन्द्रियाः।'

'अन्वास्य गोप्ता गृहिणीसहायः ॥'

'तनु प्रकाशेन विचेयतारका।'

'प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी ॥'

"इक्षुच्छाया निषादिन्यस्तस्यगोप्तुर्गुणोदयम् ।
आकुमार कथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः" ॥

इत्यादि श्लोकांश में हमको समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त, द्वितीयकुमार गुप्त का नाम मिलता है। प्रयाग के स्तम्भ में समुद्रगुप्त की जो विजय कीर्त्ति खुद रही है, उसके साथ रघुके दिग्विजय की विशेष समानता पाई जाती है। कालिदास ने साम्राज्यवादी के समान रघु की विजय का इतिहास अत्यन्त चतुरता से वर्णन किया हैं। गुप्त सम्राट् गण विद्याप्रचार के लिये जी खोल कर खर्च करते थे, याग यज्ञ में अपना सर्वस्व व्यय करके इन्होंने स्वदेश वासियों को समृद्धि और सदाचार सम्पन्न अजर और बलवीर्य से युक्त किया था। कालिदास ने अपने काव्य में ब्राह्मणादि चारों वर्णों को अपने अपने वर्णोचित नियम पालन करके ब्राह्मण को ब्राह्मण होने के लिये, क्षत्रिय को क्षत्रिय, वैश्य को वैश्य और शूद्र को शूद्र होने के लिये उपदेश दिया है। उस समय कोई भी इन सब नियमों को उल्लङ्घन नहीं करता था, इसी कारण उस काल देशवासी सम्यक् प्रकार से समृद्धि शाली और भुजबल में सबके आदर्श प थे।

कालिदास के समय में हम देखते हैं कि भारतवासी वाणिज्य में विशेष ऐश्वर्य सम्पन्न हुए थे। इस वाणिज्य ने भारत के बाहर जल और स्थल दोनों मार्गों में ही प्रधानता प्राप्त की थी। विदेश में मरे वणिक् का उत्तराधिकारी निर्णय करने में कालिदास ने अपनी विशेष विज्ञत्ता दिखाई है। वस्त्र शिल्प, चित्र शिल्प, भास्कर कार्यों में हमारे देश भाइयों ने पूर्ण चतुरता दिखाई है, यह हमको कवि के ग्रंथों द्वारा भली भाँति प्रतीत होता है।

गुप्त सम्राट् के समय शैव सम्प्रदाय का विशेष प्रादुर्भाव हुआ था। कालिदास भी शैव सम्प्रदाय के अन्तर्गत थे। उन्होंने अपने काव्य में गीता–साँख्य–वेदान्त का मत वर्णन करके परब्रह्म की स्तुति की है। 'परंतोऽपि परश्चासि' [कुमार २ य १४] 'अनवाप्त मवाप्तव्यं न ते किञ्चन विद्यते' (रघु १० म ३१) 'प्रलयस्थिति सर्गानामेकाः कारण ताः गतः, (कुमार) 'त्वामा मनस्ति प्रकृतिं पुरुषार्थ प्रवर्त्तिनीम्' (कुमार)

मनुष्य व्यक्ति गत भाव से जिस जिस कारण उन्नति वा अवनति-लाभ करता है, समाज भी उसी उसी कारण से ऊंचा उठता या गिरता
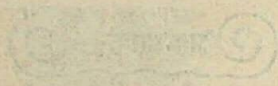
* श्रीगणेशाय नमः *

नलोदय

भाषानुवाद ।

प्रथम सर्ग ।

मंगाचलरणम् ।

हृदय ! सदा गादवतः पापाटव्या दुरो सदा यादवतः ।
अरिसमुदा यादवत स्त्रिजगन्मायाः स्मरेण मा यादवतः॥१॥

हे हृदय ! जो दुःसह पापरूपी वन के पक्ष में दावानल स्वरूप हैं (जिनके प्रसाद से यह पापरूपी वन-भूमि भस्मी-भूत होती है,) शत्रु-कुल से जो इन तीनों भुवनों की रक्षा करते हैं, कामदेव के द्वारा जो पुत्रवान् हैं, उन यदु-कुल-तिलक वासुदेव से तुम कभी विच्युत मत होना; अर्थात् उनको सदा स्मरण करते रहना; (उन्हीं में आसक्त रहना केवल-मात्र वही सब प्रकार का पुरुषार्थ प्रदान कर सकते है) ॥ १ ॥ देवकी के गर्भ से जिन श्रेष्ठ पुरुष ने जन्म लिया है, गोपिकागण नयन-माला द्वारा जिन को पान करती हैं अर्थात् आदर के सहित प्रेमाश्रु भरी आँखों से जिनका दर्शन करती हैं, जिनके द्वारा पृथ्वी की रक्षा होती है, कालिया नामक सर्प और कुवलियापीड़ हाथी को जिन्हों ने दूरी-भूत और पराजित किया था, कंस ने जिनके प्रति द्वेष-भाव दिखाया था, उनको तुम कभी मत त्यागना (भूलना) ॥ २ ॥ शत्रु-कुल की मान और मर्यादा जिनके द्वारा क्षुण्ण (अटल) होती है, जो (बचपन में) शकट भंजन करके प्रसिद्ध हुए थे, संसार के मनुष्य निरन्तर भक्ति-पूर्वक प्रणाम करते हुए जिनकी

सत् नामावली पाठ करके संसार-श्रम से छूट जाते हैं, कमलादेवी जिन में सर्वकाल विराजमान हैं, क्या निन्दा, क्या स्तुति, दोनों ही जिनके पक्ष में समान हैं, मनुष्य जिनके प्रसाद से श्रेय (कल्याण) लाभ करते हैं, भ्रमर-कुल जैसे एक मात्र हाथी के निकट से ही मद-वारि रूप भोजन पाते हैं, वैसे ही एक-मात्र जो सब की रक्षा करते हैं, दूसरे किसी व्यक्ति से रक्षा की आशा नहीं है और दानव-गण जिनसे नाश को प्राप्त होते हैं, हे हृदय ! तुम उनसे विचलित मत होना ॥ ३ ॥ ४ ॥

पूर्व-काल में परम रूपवान् और पवित्र नाम वाले एक राजा थे। वे नीति के अति उत्तम मार्ग को जानते थे। उनके शासन-काल में राज्य के भीतर अति-वृष्टि इत्यादि ईति का दोष दिखाई नहीं दिया।* सुतरां शस्य (अन्न) हानि की भी संभावना नहीं थी। खानों से उत्पन्न रत्नादि को पाकर प्रजा सुख से समय बिताती थी ॥ ५ ॥ जो राज्य-सेना रूपी तरणी की सहायता से बाण-राशि पूर्ण शत्रु-पूर्ण नदी को उत्तीर्ण हुए थे, जो कर्म व्यसन में आसक्त नहीं होते थे, जिनके शासन-काल में वन-प्रदेश गज रत्नादि से पूर्ण थे, दोष करने पर जो पुत्र को भी दण्ड देते थे, जिन के धन में साधु-जनों का न्याय-अंश विद्यमान था। जो अधीन राजाओंसे कर ग्रहण पूर्वक गदा, खड्ग रूप जल-जीव पूर्ण ऐश्वर्य-सागर की समान विराजमान रहते थे, उन शत्रु-कुल का नाश करने वाले श्रेष्ठ राजा के शासन-काल में वसुन्धरा (पृथ्वी) देव जननी अदिति द्वारा अधिष्ठित चन्द्र-सूर्य सम्पन्न स्वर्ग को अपेक्षा भी अधिक शोभा पाती थी। स्वर्ग के साथ पृथ्वी का बहुत कम पार्थक्य (अन्तर) था। उन राजा को पूजा और उनके गुण से प्रसन्न होकर देवराज इन्द्र वसुन्धरा के निकट बने रहते थे ॥६-७-८॥ उनकी सेना में कोई व्यक्ति खल दिखाई नहीं देता था। पृथ्वीतल में उनकी असंख्य यज्ञवेदी वनी हुई थीं। मैंने इस समय साधुगणों के निकट निवेदन करके अपने पाप समुद्र में सुशोभन-काव्य रचना रूप तरणी के लिये श्रम किया है। विशेषतः उन पुण्य-शील नृपति के चरित्र की रचना करने से ही मेरे पाप समूह ध्वंस होजायँगे, इस में सन्देह नहीं ॥ ६ ॥

---

* अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषिकः खगाः ।
अत्यासन्नाश्च राजानः षडेते ईतयः स्मृताः ॥

अतिवृष्टि, अनावृष्टि शलभ (टिड्डी) मूषिक (चूहा) खग (पक्षी) अत्यासन्न राज्य यह छः ईतिका दोष कहे गये हैं।

उन राजा का नाम नल है। वे शत्रु-कुल निर्मूल करके राज्य शासन करते थे। उन्हों ने जिस समय राज्य शासन किया था, उस काल उन सूर्य की समान प्रतापशाली राजा के द्वारा दशों दिशा अलंकृत हुई थीं। वे जब युद्ध में प्रवृत्त होते तो कहीं भी उन की विजय में विघ्न नहीं होता ॥ १० ॥ उन्हों ने कामदेव के समान रूप धारण पूर्वक हजार वर्ष की परमायु ग्रहण की थी। शिवजी के पुत्र कार्त्तिकेय की समान मर्यादा को प्राप्त होकर आक्रोशवान् वैरिकुल को पराजित किया था ॥११॥ ऋतुपर्ण इत्यादि जो सब राजा उनके आश्रित थे, उन में कोई भी अश्व-विद्या-विशारद नलसे श्रेष्ठ न था। नीति के द्वारा जिस प्रकार धन-संचय होता है. लक्ष्मी उसकी अपेक्षा भी उनको अधिक धन देती थी। शत्रु के प्रति भी उनमें सदय बुद्धि विद्यमान् थी ॥ १२ ॥ वे उद्यम और यत्न सहित अपने आश्रित रहने वाले शत्रु की भी रक्षा करते थे। वे कपट और छल नहीं जानते थे, उनके पिता वीरसेन के नाम से प्रसिद्ध थे ॥ १३ ॥

राजा नलने वैरि कुल-निर्मूल करके पृथ्वी तल में कीर्ति फैलाई थी। उन के प्रहार से (जर जर) हो कर वैरियों के सब हाथी पृथ्वी पर दाँत टेक टेक कर प्राण त्याग करते। सर्वत्र ही उनके 'जय' शब्द की घोषणा होती ॥ १४ ॥ उनके मन्त्री जो सब व्यसन शून्य उपदेश करते, उसी के अनुसार वे पृथ्वी का शासन किया करते। प्रधान प्रधान राजा अपराध-क्षमा करने के कारण उनको प्रणाम करते ॥ १५ ॥

उसी समय विदर्भ देश में भीम नामक एक ऐश्वर्य शाली दण्ड हीन राजा थे। उनके एक कन्या उत्पन्न हुई। कन्या का नाम वैदर्भी व दमयन्ती था। वह भीम-नन्दिनी दमयन्ती ही तीनों लोक में धन्या और माननीया थी। यद्यपि असंख्य असंख्य शत्रु इन वैदर्भ राज के निकट (युद्ध की इच्छा से)उपस्थित होते, किन्तु (तत्काल) भय से भाग जाते ॥ १६ ॥

दमयन्ती मनोहर विभ्रमादि द्वारा विलासवती थी, उसके रमा-रंभा सदृश दोनों ऊरू की मनोहरता देखने से वह सदृशी बोध होती। उस ने अपनी कान्ति द्वारा मानों कन्दर्प को धारण किया था। इस प्रकार दिन दिन बढ़कर उसने क्रम क्रम से यौवन पदवी में आरोहण किया ॥ १७ ॥ दमयन्ती रमणी कुल में रत्न स्वरूपिणी थी और उधर नल राजा भी मनुष्य कांति के पूर्ण निकेतन थे। नल राजा के वैरी परास्त होकर कहीं रक्षा का उपाय न देख घृणा कर मरुभूमि में भाग गये थे ॥ १८ ॥ नल राजा अपने तेज से प्रकाशित होकर असंख्यों युद्धों में जय श्री को प्राप्त हुए थे। इस कारण दमयन्ती ने उन ऋषि-श्रेष्ठ नलराज को ही पति बनाने

की इच्छा की। नल राजा भी दमयन्ती के पाने की इच्छा कर रहे थे। क्योंकि वैदर्भी ने रूपमें संसार की सब स्त्रियों को परास्त किया था ॥१६॥

क्रमशः कामवाण से नल का शरीर जर्जरित होगया। वे काम–व्याधि से ग्रसित होगये। जहाँ सूर्यकी किरण प्रवेश नहीं कर सके, ऐसे मनोरम उद्यान [बगीचे] में गमन करके उन्होंने काम–सन्ताप को दूर करने को इच्छा की। तब वे घोड़े पर सवार होकर उद्यान में गये ॥ २० ॥ उद्यान में पहुँचकर वैरिकुल–नाशक, विरह–संतप्त, काम–ज्वर से दग्ध नल ने देखा कि कई एक हंस वहाँ विचर रहे हैं, वे उन्हीं का हित–साधन कर ने के लिये वहाँ आये थे। हंसों को देखते ही नल का हृदय प्रेम से भर गया। उन्होंने तुरन्त उनको पकड़ लिया ॥ २१ ॥

तब सारस की नाईं शब्द करने वाले हंस ने नल को सम्बोधन करके कहा—महाराज ! आपके हृदय में हिंसा–रस का उदय हुआ है–ह‍ं व्यर्थ कष्ट देना आप को उचित नहीं है। आप जैसी सुन्दरता के आधार हैं, हमारी सहायता से आप को उसके अनुरूप (योग्य) ही उपहार मिले· गा ॥ २२ ॥ आप के अंगों की शोभा कामदेव से भी अधिक मनोहर है। आप की समान रूपवती भीम–नन्दिनी दमयन्ती के पास जाकर हम आप की प्रशंसा करेंगे। तो वह आप के प्रति अत्यन्त अनुरागिणी होकर आप के अंक गत होगी। आप उसके संग विहार करना ॥ २३ ॥

तदनन्तर हंसों ने आनन्द–दायिनी उस दमयन्ती के पास जाकर (वक्ष्यमाण वचन) कहने आरंभ किये दैत्योंकी शिल्पकार मय रचित माया जिस प्रकार मनको मोहित करती है; उसी प्रकार चित्त विनोदिनी दमयन्ती सखियों समेत हंसों के निकट जाकर उनकी बातें सुनने में दत्त चित्त हुई ॥ २४ ॥

हंसों ने कहा,—वैदर्भि ! आप यदि चन्द्रवदन, शत्रु-कुल नाशक, कुमारी अबलाओं के स्पर्शनीय नल की सहधर्मिणी (भार्या) बनें, तो आप श्रीवत्स लांछित कमला की समान शोभा धारण करेंगी- इस में सन्देह नहीं ॥ २५ ॥

हंसों की बात सुन कर भीम-नन्दिनी के हृदय में आनन्द उदय हुआ और उसका चित्त भी काम-बाण से विद्ध होगया। तब उस नव युवती रसवती ने अनिर्वचनीय शोभा धारण की। फिर उसने शीघ्र ही उन हंसों को नल के पास भेज दिया ॥ २६ ॥

तदनन्तर हंसों ने समस्त ऐश्वर्य के आधार देवता की अपेक्षा भी श्रेष्ठ राजा नल के पास जाकर दमयन्ती की भाँति-भाँति से प्रशंसा

करी ॥ २७ ॥ हंसों के नल से दमयन्ती की प्रशंसा करने पर निषधराज उस विरह-संतप्त वैदर्भी के अत्यन्त ही वशीभूत होगये। वरन दमयन्ती के प्रति [पहिले से ही] अधिक अनुरक्त होने के कारण उनमें अधीरता उत्पन्न होगई। इधर दमयन्ती भी निरभिमान नलके गुणों को विचारती विचारती दिन बिताने लगी ॥ २८ ॥

इस ओर राजा भीम ने देखा—समुद्र तथा पहाड़ों से समाकुल पृथ्वी का गहना स्वरूप उठे हुए यौवन वाली, नवीन दोनों कुचों वाली, वर मिलन में अनुरागवती, रत्न रूपिणो कन्या; मदन-जनित दारुण पीड़ा से अत्यन्त ही पीड़ित होरही है, तब उन्हों ने नियमानुसार कन्या के स्वयंवर की रचना करी ॥ २६ ॥ वे सब राजाओं में प्रधान थे, बुढ़ापा आजाने पर भी वे युवा को समान शोभा पाते थे। कामदेव की अपेक्षा उनके अंग मनोहर थे ॥ ३० ॥ (स्वयम्वर की रचना होजाने पर) असंख्य २ राजा सैन्य-सामन्त समेत बड़े आडम्बर तथा आनन्द से स्वयंवर के स्थान में आये। उनके मस्तक में इन्द्र नीलादि मणि-संश्लिष्ट भ्रमर-विशिष्ट की समान उपलक्षित रत्न-मालायें शोभा पा रही हैं ॥ ३१ ॥ रणस्थल में शत्रुकुल जिनके हाथसे नाशको प्राप्त होता है, जो देवसेना के अधीश्वर हैं वे देवराज इन्द्र स्वयं स्वयंवर सभा में आकर उपस्थित हुए। देवताओं की सब सेना भी थक कर विदर्भ नगर में आ पहुंचो। दमयन्ती के प्रति अनुराग का संचार होने पर सब ही देवता उत्साह से उत्साहित होकर शोभा पाने लगे ॥ ३२ ॥

तदनन्तर जाँघों तक लम्बी भुजा वाले राजा नल महामहोत्सव से भरी हुई उस स्वयम्वर सभा में उपस्थित हुए ! सूर्य की किरणों से जिस प्रकार चारों दिशा प्रकाशमान् हो उठती हैं, उसी प्रकार राजा नलकी अति उत्तम देह-कान्ति द्वारा भीम-नगरी ने अत्यन्त ही शोभा धारण करी ॥ ३३ ॥

जो वैरी-कुल के प्रति प्रज्वलित नालीकास्त्र का प्रयोग करते हैं, जिनके वदन की कान्ति पद्म के समान मनोहर है, जो कपट इत्यादि का लेश मात्र भी नहीं जानते, वे सब राजा और देवता नल के देह की कान्ति से लज्जित होगये। विशेषतः क्या देवता-क्या राजा इनमें नलके समान अंग की कांति किसो की भी नहीं थी ॥ ३४ ॥

जो अपनी कीर्त्ति की रक्षा करते हैं, वैरी कुल की कीर्त्ति को लोप कर देते हैं, अपने यश को फैलाते हैं और तलवार की सहायता से शत्रु-कुल का संहार करते हैं, उन चंद्रवदन नल का दर्शन करने पर देवता

लोग कर्त्तव्य विमूढ़ होकर जड़वत् होगये ॥ ३५ ॥ जिनको कोई परास्त नहीं कर सकता, जो वैरियों के लिये अग्नि-स्वरूप हैं, उन नल के अंगों में उस समय कोई गहना नहीं था, तो भी देवता लोग सौन्दर्य श्री द्वारा उनको परास्त नहीं कर सके।

तब देवराज इन्द्र ने नल को सम्बोधन करके कहा। हे नल! आप हमारा दूत-कार्य स्वीकार कीजिये। सर्वांग सुंदरी दमयन्तीके पास जाइये। उससे यह बात कहना—कि 'तुम्हारे लिये अनंग (काम) हमको बड़ा ही क्लेश देरहा है, तुम्हारी गुणावली सुनकर हम महान् श्रम सहन करके यहाँ आये हैं, (हे नल) हम प्रसन्न होकर आपको माया प्रच्छन्नता रूप वर देते हैं। उस वर के प्रभाव से (दमयन्ती के गृह-स्थित) द्वार रक्षकादि सेवक लोग आपको नहीं देख सकेंगे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

देवराज की आज्ञा पाय नल मस्तक में अञ्जलि बन्धन पूर्वक (उनको नमस्कार कर के) दमयन्ती के निकट गये। दूत-रूप में उपस्थित होने से दमयन्ती ने उनको वरण नहीं किया, यह बात उस समय उनके मन में उदय न हुई। सुतरां गमन कालमें उनका चित्त स्थिर था, नल राजा के स्वयम्वर सभामें विद्यमान होकर ऐसी रमणी दिखाई नहीं देती थी कि जो उनको छोड़ कर किसी दूसरे पुरुष को वरण करे ॥ ३८ ॥

तदनन्तर नल ने वैदर्भी के निकट जाकर कहा। हे भीमनन्दिनी! इन्द्रादि पाँच देवताओं ने मुझको दूत-रूप से आपके पास भेजा है। आप की इस महा स्वयम्वरसभा में वे लोग आये हैं। उनके ऐश्वर्य्य की सीमा नहीं हैं और वे सब हो नीति—विशारद हैं। वे आप के साथ विवाह करने की इच्छा किये हुए हैं ॥ ३९ ॥ हे अप्सरांगने दमयन्ति! यह पांच देवता जीव-कुल के ईश्वर हैं; काम-बाण से यह पीड़ित हुए हैं। इस लिये आप सम्मत (राज़ी) होकर उनके गले में वर माला डाल दीजिये। स्वर्ग-धाम में अमृतादि दुर्लभ पदार्थ विद्यमान हैं, उनको वरण करने (पति बनाने) से आप स्वर्ग का सुख भोग सकेंगी—इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥

यद्यपि देवताओं ने कामार्त होकर नल के द्वारा भीम—नन्दिनी के निकट यह प्रबोध—वाक्य कहला भेजे थे, किन्तु हंस जिस प्रकार जल—जात वस्तुमें ही अनुरक्त होता है, मरु-भूमिमें उत्पन्न हुई वस्तुके प्रति उस का अनुराग नहीं होता, उसी प्रकार नलके प्रति पहले से चित्त आसक्त होनेके कारण दमयन्ती देवताओं के प्रति अनुरागिनी नहीं हुई ॥ ४१ ॥

बड़ी बड़ी आँखों वाली दमयन्ती अत्यन्त शोभाशालिनी होकर विराज

ती थी। वह सहसा अपने घर में नल को आया हुआ देखकर काम बाण से जर्जरित हो उठी। उसने नल को सम्बोधन करके कहा। मैं देवताओं की भार्या बनने को राज़ी नहीं हूँ ॥ ४२ ॥

इधर तुरही की ध्वनि होने लगी। तब नलदेव श्रेष्ठ इन्द्र के निकट लौट आये और उनके दोनों चरणों में प्रणाम करके वरण (विवाह) के विषय में दमयन्ती का अभिप्राय निवेदन किया। वे बोले-देव राज ! दमयन्ती आप में से किसी को भी वर-माला अर्पण करना नहीं चाहती। नलने जो यह बात कही-यह उनके निजी पक्ष में आनन्द का कारण है; इसमें सन्देह नहीं ॥ ४३ ॥

इधर निमन्त्रित राजा लोग अति उत्तम संगीत सुनते-सुनते स्वयंवर की सभा में भीम-द्वारा निर्दिष्ट मंचों पर बैठ गये। इस सभा में चारों ओर से सुगन्धि उठने के कारण अलिगण चारों ओर गुंजार रहे थे। इस के पीछे हरिण सरीखी आँखों वाली दमयन्ती सज-धज कर अपने निर्दिष्ट स्थान में उपस्थित हुई ॥ ४४ ॥ स्वयंवर सभा में जो सब राजा और सम्मान करने योग्य देवता उपस्थित थे, सूतवृन्द के उनका वंश, गुण कीर्त्तन पूर्वक परिचय प्रदान करने पर सबने उनको प्रणाम किया ॥ ४५ ॥ (सभा-स्थल में इन्द्रादि पाँचों देवता नल का रूप धारण करके बैठे हुए थे) मोहनाक्षी दमयन्ती स्वयंवर सभा-स्थित अग्नि तुल्य दीप्तिमान् निर-लस नल-तुल्य देहधारी इन्द्रादि का पार्थक्य समझने में समर्थ न हुई। भीम-नन्दिनी नलको वरण करेगी, ऐसा जानकर इन्द्रादि पाँचों देवताओंने नल की समान रूप धारण किया था। उनका अभिप्राय यह था कि दम-यन्ती पार्थक्य न समझ सकने पर इन में से ही किसी एक को वरण कर-लेगी। अतएव कौन व्यक्ति वास्तविक (असली) नल है, यह बात भीम-नन्दिनी दमयन्ती स्थिर नहीं कर सकी ॥ ४६ ॥ तब कर्त्तव्य-विमूढ़ होकर दमयन्ती मन ही मन में कहने लगी। यदि मेरे मुख से कभी मिथ्या बात नहीं निकली हो, यदि मैं सती हूँ, मैं दीन हीन होकर भी यदि सदा न्याय और धर्म संगत मार्ग पर चलती हूँ, मैं यदि दान धर्म का आचरण करती हूँ-तो अश्विनी कुमार की अपेक्षा भी अधिक मोहन कान्ति अर्थात् सुन्दर शरीर वाले नल राज मेरे ज्ञान के विषयी भूत हों अर्थात् उनको मैं पह-चान सकूँ ॥ ४७ ॥ यदि मैं अन्य पुरुष के प्रति अनुराग परित्याग पूर्वक राजा नल के ऊपर ही चित्त का भाव बाँध रही हूँ-तो वसुन्धरा उन की सुर सभा रूप वन्या (बनैले) हाथी के समान शरीर कांति की रक्षा करें ॥ ४८ ॥

इस प्रकार विचार करते करते विशुद्ध चरित्र वाली दमयन्ती को ध्यान आया कि जिनके चरण पृथ्वी को नहीं छूते, वह देवता और जिनके चरण पृथ्वी को स्पर्श करते हैं, वे ही साधु जनों का पालन करने वाले नल हैं ॥ ४९ ॥ तब बाल-स्वभाव सुलभ परिश्रम से पीड़ित दमयन्ती ने देवताओं के प्रार्थना करने पर भी भ्रमर की नाईं चकित दृष्टि से नल के प्रति नेत्र-पात किया और प्रेम से परिपूर्ण हो उनके निकट गमन पूर्वक प्रीति–रस द्वारा सिंचित हो सखियों द्वारा उनके गले में वरमाला डाल दी ॥ ५० ॥ चन्द्रमुखी–पार्वती सरीखी पति-परायणा (पतिव्रता) दमयन्ती के–पृथ्वी में शौर्यादि गुणावली द्वारा अतुलनीय रुद्रोपम नलराज को वर-माला प्रदान करने पर उस सज्जन जनों से घिरी हुई सभा ने परम शोभा धारण की ॥ ५१ ॥ नल राजा दिव्य कांति से सुशोभित–महा प्रभा-सम्पन्न और विपुल ऐश्वर्यशाली हैं, उनका हृदय दंभ शून्य देखकर इन्द्रा-दि देवता उनका वर देकर अपने अपने स्थान को प्रस्थान कर गये ॥ ५२॥ फिर शत्रु की माया का नाश करने वाले–महा गौरवान्वित, क्षमा–शील ऐश्वर्य शाली नल राजा प्रियतमा दमयंती के सहित कमला के निवास स्थान अपनी राजधानी में चले गये ॥ ५३ ॥ उस समय नलकी राजधानी में प्रजा पुंज अत्यंत आनन्द के कारण उन्मत्त हो उठे । वे महा महोत्सव में प्रवृत्त होकर विमल सुरा पान पूर्वक विहार करने लगे । तब इस निषध नगरी में भाँति भाँति के देवयज्ञ और देवपूजा का अनुष्ठान आरंभ हुआ ॥ ५४ ॥

श्री महाकवि कालिदास कृत नलोदय काव्य प्रथम सर्ग समाप्त ।

——o——

दूसरा सर्ग ।

अनन्तर शत्रु कुल का गर्व खर्व करने वाले मनोहर शरीर नल राजा चित्त–विनोदनी रमणी प्रधान दमयंती को पाकर मनोहर गृह के भीतर दिन–रात विहार करने लगे । ॥ १ ॥

उस काल शक्ति के समुद्र नल राजा ने दिव्य शोभा धारण करी। प्रेम-रस से सराबोर होकर कोमल हृदय वाली दमयंती भी परम दीप्ति को प्राप्त हुई । देखते-देखते वसंत ऋतु सारस के कूजन और ऋतु उत्पन्न कुसुमादि से विभूषित होकर आविर्भूत हुई । ॥ २ ॥ जो कमलिनी सूर्य के छिप जाने से लज्जित और चंद्रमा की किरण के स्पर्श से दिशाओं के प्रांत भागमें विलीन होकर अवस्थान–करती थी, अब इस समय सूर्यदेव ने शस्यमंजरी की अग्र भागस्थ शोभा से भी

अधिकतर शोभामय किरणों द्वारा उस कमलिनी को खिला दिया। यह देखकर भौंरों के चित्त में मधुपान करने की इच्छा प्रबल हो उठी ॥ ३ ॥

उस ऋतु में पृथ्वी सारसों के 'काकू' शब्द से शब्दायमान होगई। कुरवक के वृक्ष में अंकुर उग आये और स्वच्छ जल में कमलों ने विकम्पित होकर मनोहर शोभा धारण की विशेषतः वसंत ऋतु का स्वच्छ जल किसके चित्त को प्रसन्न नहीं करता ॥ ४ ॥ उस समय महा प्रतापशाली दिवाकर (सूर्य) का तेज अत्यन्त तीव्र हो उठा और हिमानी (वर्षा को शिला) चारों ओर को फैलकर लुप्त (गायब) होगई। उस काल कामदेव के चारों ओर को सर्पों की समान बान चलाने से अभिमानी नलराजा सूर्य-तेज और काम-बाण से कातर होगये। इस लिये बाहर अवस्थान करने में समर्थ न होकर घर के भीतर ही रहने लगे ॥५॥ उस काल चम्पक-मुकुल मानों अनङ्ग सूची का भाव धारण पूर्वक पृथ्वी-तल में सब किसी को प्रहार की वेदना दिखाने लगा और विरही (वियोगी) दम्पति के प्राण-नाश करने को उद्यत हुआ ॥ ६ ॥ बड़े बड़े पत्ते वाले ढाक के वृक्षों में बहुतायत से फूल उत्पन्न होने लगे। इन सब फूलों को उस समय लालसा वाले कामरूप मांस-भोजी राक्षस लोग भक्षण करने लायक पथिक जनों का स्वादिष्ट मनोरम मांस समझने लगे ॥ ७ ॥ इस प्रकार मनोहर वसंत ऋतु के चारों ओर अपनी शोभा फैला देने से रात्रि रूप गज राजि और चन्द्रमा की कला भार्या हीन मनुष्य के पक्ष में हृदय-विदारक दण्ड रूप से शोभा पाने लगी ॥ ८ ॥ इस वसंत ऋतु में जो विरही अपना कामोत्सव सम्पादन करते हैं, वे वासना रहित होने पर भी चारों ओर अशोक-तरु स्थित भौंरों के गुंजन रूप हुंकार के कारण काम वाण से विद्ध होते हैं। अधिकन्तु इस समय विरही पुरुष काम द्वारा त्वरा (शीघ्रता) को प्राप्त होकर अपनी-अपनी विरहिनी कामनियों का मनोरथ पूर्ण करके कामोत्सव सम्पादन करते हैं ॥ ९ ॥ उस कालचारों ओर सारसों के विचरने से पृथ्वी अतिशय शोभनदर्शना होचली। मानों कामदेव का रण रंग स्थल जान पड़ने लगी। इस प्रकार उस वसन्त काल में सम्यक् प्रतापशाली कामदेव ने क्या सपत्नी-क्या प्रियतमाविरहित सब ही पुरुषों को अपने वशमें कर लिया ॥ १० ॥ इस समय मनुष्य मात्र ही वसन्त के प्रभाव से चंचल-चित्त होकर बिना रमणी के जीवन धारण करने में असमर्थ हो मृत्यु का आश्रय ग्रहण करता है। स्त्रियाँ भी पुरुषों की प्रार्थना में असम्मत न होकर स्वयं सुरापान पूर्वक उनको भी अधरामृत का पान कराती हैं ॥ १२ ॥

इस भाँति वसन्त का उदय होने पर एक एक कोकिला कुपित होकर स्वर तालमिले हुए आलाप (गान) सहित विरहिणी स्त्रियों का मानों तिरस्कार करने लगीं ॥ १२ ॥ उस समय चन्द्रमा ने अतिशय शोभा धारण करी। कोकिलाओं के कूजन से आम के सब वृक्ष आकुल हो उठे। मोर-गण एकत्र होकर केका शब्द और नृत्य करने लगे ॥ १३ ॥ इस प्रकार पुष्प-शोभित वसन्त कालमें कौन पुरुष प्यारी के वियोग का दुःख सह सकता है ? अथवा कौन स्त्री ही छल पूर्वक हुंकार युक्तपद (कलह) को याद करके निश्चिन्त रह सकती है ? (इस समय प्रियतम के सहित कलह होने पर भी स्त्रियाँ उसको भूल जाती हैं और प्यारे को लेकर विहार करनें में प्रवृत्त होती हैं) ॥ १४ ॥ मधुपकुल (भौंरे) इस ऋतु में प्रीति वशतः कुसुम-मधुपान करके आशु उत्कंठित हो उठते हैं और काम की आज्ञा शिरोधार्य करके एक वृक्षसे दूसरे वृक्ष पर जाय कानों को सुख-दायक गुंजार करने में प्रवृत्त होते हैं–सुतरां यह ऋतु मनोहारिणी शोभा धारण करती है ॥ १५ ॥ इस समय विचरणशील घन पटल (बादलों के समूह) वासन्तिक गगनमें उदय होने से गगन मण्डल अतिशय मदोन्मत्त-भ्रमर कुल समाकीर्ण सा जान पड़ता है। अतएव कामी जन उसको देखकर मानोमानस-स्थित अभिमानी बन्धुके समागमको प्राप्त होते हैं १६ इस समय जो मनुष्य दूसरे स्थान में जाने के लिये घरसे बाहर निकलता है, वह बिल्कुल ही विचार शून्य और अज्ञानी है, क्योंकि सुरत क्रीड़ा भलो भाँति समाप्त न होने से उसका हृदय मदन-जनित महा विकार से ग्रसित होजाता है ॥ १७ ॥ इस समय जो रमणी क्रोध के वशीभूत होती हैं–उनमें नीति का कुछ भी ज्ञान नहीं है। क्योंकि वे नये फूलों की माल्य-रचना समाप्त करके प्यारे के निकट सुख से समय नहीं बिता सकतीं। विशेषतः प्रियतम के बिना उनको अनुताप की अग्नि में दग्ध विदग्ध होकर मौन भाव से रहना पड़ता है ॥ १८ ॥ हे पर्वत पर स्थित वृक्ष राज–तुम पुष्प रूपी नयनों से विभूषित और निरोग शरीर से गगन-विवर तक ऊंचे होरहे हो। अतएव मेरे प्रियतम से कहो–मैं इस वसन्त ऋतु में रमा को समान उनके संग विहार करूँगी ॥ १९ ॥ जिसका निज प्रियतम उपस्थित नहीं है–ऐसी कोई प्रधान नायिका इस प्रकार विलाप करके उन्माद और कामपीड़ा से पीड़ित हो गिरि तरुकी शरण गत हुई, किन्तु उस वृक्षराज से कोई उत्तर नहीं मिला। इसलिये वह कामरूप काल-सर्प के विष से जर्जरित होने लगी ॥ २० ॥ इस ऋतुमें भौंरों के झुंड मधुर स्वर से गुन-गुन शब्द करते हैं–जान पड़ता है मानों वह

वसंत की समान अपनपे को तुल्य मदमत्त देखकर कलिकी प्रार्थना करते हैं। इस समय स्त्रियों के हृदय में दारुण कामवाण निरंतर स्थिर रहता है। अतएव वे किस प्रकार उसको सह सकती हैं ॥ २१ ॥

तदनंतर निःशत्रु नलराजा अपनी प्रियतमा के सहित मन्दार तरुराजि सज्जित उद्यान में गये ॥२२॥ तब सौन्दर्य राशि-मंडित दमयन्ती चंद्रोपम मुख कांति नलके पीछे-पीछे नन्दन-वन की समान उपवन में पहुंच कर हर्ष पूर्वक विहार करने लगी ॥ २३ ॥ हे सुन्दरी ! तुम मोहित करने वाले अपने दोनों नेत्र चारों ओर चलाकर इस वनकी शोभा को देखो। प्रियतम के यह वात कहने पर वलय (खँडुआ) विमण्डित-उदर में तीन रेखा धारिणी अन्यान्य कामिनियाँ भी क्रम क्रमसे उस उद्यान में आन कर उपस्थित हुई ॥२४॥ इससे पहले प्रियतम के अपराध करने पर अन्यान्य कितनी ही अभिमानिनी रमणियों ने नये फूलों के वोझ से झुके हुए तरुराजि मण्डित उद्यान में जब जाने की इच्छा नहीं की-तब उनके प्रिय वल्लभों ने स्वयं फूल वीन कर उनके हाथमें दिये। फिर उन सारी नारियों ने प्रसन्न होकर अभिमान छोड़ दिया ॥ २५ ॥

किसी दूती ने नायक द्वारा भेजे जाने पर सखी के पास जाकर कहा। हे प्रशंसनीय रूपवती ! तुम्हारे जरा सा क्रोध दिखाने पर भी तुम्हारे प्रियतम को विषाद होता है, उसका मुख सूख जाता है, वह तुम्हारी स्तुति करने में प्रवृत्त होता है और तुम्हारे चरणों में जीवन समर्पण पूर्वक किसी प्रकार प्राण धारण करता है, नहीं तो काम-वाण से उसकी मृत्यु निश्चित है ॥ २६ ॥ हे सखि ! इस वसंत ऋतुमें वृक्षादि में जो नवीनता दिखाई देती है. इसका क्या ह्रास (कमी) नहीं होगा ? वस्तुतः इसके पीछे फिर उसकी इस प्रकार शोभा नहीं रहेगी, अतएव तुम इस समय प्रियवल्लभ के सहित मिलकर सुरत का सुख भोगने में प्रवृत्त होओ। इस समय तुम्हारा अभिमान में भरकर रहना उचित नहीं है ॥ २७ ॥

कोई युवती सखी की इस प्रकार बातों से मुग्ध (मोहित) होकर प्रियतम के निकट उपस्थित हुई। तब वह कामी पुरुष प्रियतमा के साथ विहार में प्रवृत्त हुआ। विहार के समय गालों पर बाल गिरने से नायिका का मुख श्याम वर्ण होगया ॥ २८ ॥

किसी नायक ने अपनी अभिमानवती प्रियतमा से सम्वोधन करके कहा—सुन्दरी ! देखो-इस शोभा समृद्धि सम्पन्न सरोवर के तट ने कैसी मनोहर सुन्दरता धारण की है। वह फूलों के गुच्छों से मण्डित है, एक

भी बक पक्षी (बगला पक्षी) उसके तट पर दिखाई नहीं देता। इस स्थान में तुम क्यों मान भरी बैठी हो? इस प्रकार वह कामी भाँति भाँति के स्तुतिवाद द्वारा प्यारी को वशीभूत करके हर्ष परिपूरित हो विहार करने में प्रवृत्त हुआ॥ २९ ॥

एक वृक्ष अरुण वर्ण की कुसुम-रेणु से परिपूर्ण था। कोई रमणी उस वृक्ष के निकट जाकर हँसी–तो उसके हँसने की छटा से फूल भी सफेद रंगके होगये। वह फिर लाल रंग के फूल न देखकर अतिशय आश्चर्य से मोहित होगई॥ ३० ॥

कोई सोलह वर्ष की रूपवती स्त्री नई नई कोंपलों से शोभित वृक्ष देखकर उत्सुक चित्त से उन पल्लवों को लाने के लिये ज्योंहो उसके आल वाल पर खड़ी हुई--त्योंही जान पड़ा कि मानों एक लतिका खड़ी होकर शोभा पाय रही है। मानों यह लतिका तरुराजको आश्रय करके खड़ी हुई है॥ ३१ ॥

कोई रमणी एक लताकुंज में सखियों के सहित हँसी के लिए छिप रही थी, भौंरे मद में भरे हुए गुंजारते फिरते थे, उसका कामी प्रियतम यह जान कर ढूंढता ढूंढता उसके पास पहुँचा ॥ ३२ ॥ किसी कामिनी ने वृक्ष का पुष्पराग देखकर ज्यों ही ऊपर को मुख उठाया, कि त्योंही उस पराग द्वारा उसकी दोनों आँखें कलुषित होगईं। तब उसने प्रियतम के निकट पहुंच कर नेत्रों में गया हुआ पराग बाहर करके उनको सुस्थ करदेने को प्रार्थना की, और प्यारे की ओर कटाक्ष सहित मुख बढ़ा कर उसके चित्त को मोहित कर डाला॥ ३३ ॥ किसी कामी ने प्यारी के निकट अपराध करके भाँति भाँति का कपट जाल फैलाय अपने अपराध को शुद्ध किया, तब वह सरला अबला प्राणोपम प्रियवल्लभ के प्रति रोष त्याग विहार करने में प्रवृत्त हुई ॥ ३४ ॥ और कोई कामी भाँति भाँति के पक्षियों से भरे वन के वर्णन द्वारा विस्मय उत्पन्न करके प्रियतमा के निकट निरपराध हुआ॥ ३५॥ किसी स्थान में किसी कामी पुरुष ने प्राण के समान प्रणयिनी का गर्व से किया हुआ–पद प्रहार भी प्रसाद की नाईं मस्तक पर धारण किया ॥ ३६ ॥ जिस स्थान में सुगन्धि शीतल-मलय-पवन वृक्षों को कम्पायमान् करके बहती है, जिस स्थान में तमाल शून्य उद्यान शोभा पाते हैं, उस स्थान-स्थित गृहों को छोड़ कर विलासी पुरुष वन में आय प्रियतमाओं के संग विहार करते हैं॥ ३७ ॥

इस प्रकार कामी जनों से शोभायमान् वन का आश्चर्य करनेवालीं प्रियतमाओं के सहित सम्यक् प्रकार केलि करते करते निकटवर्त्ती खिले हुए कमल--दलों से शोभित सरोवर पर गये ॥ ३८ ॥

तब नल राजा ने प्यारी पत्नी दमयंती से कहा—हे अशेषगुणसुधामयी ! क्या तुम्हारी इच्छा जल-विहार की है ? यह कह कर दंभ रहित राजानल भीमनंदिनी के संग सरोवर पर उपस्थित हुए ॥ ३९ ॥ सरोवर का स्वच्छ अति उत्तम जल देखकर नल का चित्त मोहित होगया। सरोवर में चक्रवाकी--कुररी—हंसी और सारसी इत्यादि पक्षीगण शब्द करते करते जल क्रीड़ा कर रहे थे, यह देखकर नल और दमयंती का हृदय प्रफुल्लित हो उठा ॥ ४० ॥ उस समय अन्यान्य कामनियों के तिमि (जलचर जीव) कुंभीरादि (नाके आदि) रहित इस सरोवर के जल में उपस्थित होने पर धीरे धीरे तरंगें आनकर उनके अंग में आघत करने लगीं। तब उन्होंने मन ही मन यह विचारा कि इस सरोवर के जल में डर को कोई बात नहीं है—इस लिये इस में विहार करने में क्या हानि है ? इस प्रकार विचार करके सब ही वहाँ जल विहार में प्रवृत्त हुए ॥ ४१ ॥ उस समय भौंरे परागपूर्ण कमल दल को, छोड़ कर सौरभ प्राप्ति की इच्छा से अनुराग परिपूरित अंगनाओं के मुख कमल पर बैठने लगे ॥ ४२ ॥

अनंतर कामानल से दग्ध कामनियों के स्नानादि करने में प्रवृत्त होने पर कमलिनी दल कंपित और भ्रमरीगण भीत होगईं। भ्रमरीगण मनोहर गुंजारं से झनकार करके चारों ओर घूमने लगीं ॥ ४३ ॥ उस काल सरोवर में जो शोभा हुई--उसकी सीमा नहीं हैं। कमल दल नृत्य करने अर्थात् कम्पित होने से उस रंग भूमि स्वरूप सरोवर के जल में तरंगें उठने से स्त्रियों ने समझा कि जल में नाके कुलबुला रहे हैं--यह समझ कर वे डर के मारे व्याकुल हो उठीं ॥ ४४ ॥ इस प्रकार बहुत देर तक जल केलि सम्पादित होने पर रमणीगण शब्दायमान् सारसों से परिपूर्ण सागर समाकुल गगन सदृश जलके भीतर से निकल कर फेन समूह से व्याप्त तट पर उपस्थित हुईं ॥ ४५ ॥ तदनंतर वे सब त्रिवली विराजित रमणियाँ अंग की सुगंधि से भौंरों को खेंचकर सरोवर के तट से उदयगिरि स्थित सूर्य प्रभा की समान प्रभा युक्त अपने अपने घरों को चली गईं ॥ ४६ ॥

तब नल राजा ने दमयंती को सम्बोधन करके कहा। मेरा कोमल

शरीर कामबाण से बिगड़ गया है, अत एव मैं इस समय मदन को दमन करने की इच्छा करता हूं। तुम मेरा सुरत विषयक मनोरथ पूर्ण करो। यह कह कर वे दमयंती को चित्रादि युक्त (तसवीर आदि सामान से सजे हुए) कामोद्दीपक एक कक्ष (कमरे) में लेगये। इस कमरे की शोभा पुष्पक विमान को भी पराजित करती थी। ॥ ४७ ॥

इसी अवसर में सूर्य देवने सान्ध्य राग को प्राप्त होकर अरुण वर्ण धारण किया। फिर कमलिनी उनको प्राप्त न हुई। संध्या को आया हुआ देखकर सूर्य देव ने कम लनी के निकट से अपना अंश रूप हाथ खैंच लिया ॥ ४८ ॥ तब जिस जिस स्थान से सूर्य की किरणें हट कर जाने लगीं, वह वह स्थान ही घोर अंधकार से ढक गया। ॥ ४९ ॥ संध्या को आया हुआ देख कर पक्षीगण मीठे स्वरसे शब्द करने लगे। अरुण वर्ण की सूर्य किरणें अंधकार से ढक गईं। बादलों के दल अपने स्थान की ओर जाने लगे, और गगन तल नक्षत्र माला से विराजित हुआ ॥ ५० ॥ क्रमशः चंद्रमा जल के भीतर से निकल कर गगन तल में विराजमान होगया। उस काल चंद्रमा कामराज के गगन कालीन पुरोवर्त्ती रजत कलश की समान शोभा पाने लगे ॥ ५१ ॥ प्रवासी जनों का हृदय विदीर्ण करने वाले कलश पूर्ण–रात्रि कालीन चंद्रमा की ओर देखने को उस समय कोई विरहिनी समर्थ नहीं हुई अर्थात् चंद्रमा को उदय होता देख कर विरहिणी काम बाण से सन्तप्त हो उठी ॥ ५२ ॥ अनंतर चंद्रमा के किरण जाल से सम्पूर्ण जगत् व्याप्त होगया। इन किरणोंसे हिमकी बूँदें टपकने लगीं और उनको प्राप्त होकर कुमुद राजि (बबूले) खिलने लगीं ॥ ५३ ॥ तब जिस जिस पुरुष ने जिस उपाय से प्रियतमा की अनुनय विनय करी, उसी उसी उपाय से वह वह व्यक्ति उनको वशीभूत करने में समर्थ हुआ ॥ ५४ ॥ देव दानव जिस प्रकार अमृत के प्रति आदर दिखाते हैं, कामवतीरमणी भी उसी प्रकार काम दमन में असहिष्णु होकर अंग भङ्ग्यादि भाव सहित सुरा के प्रति अनुरागिणी होकर उसके पीने में प्रवृत्त हुईं ॥ ५५ ॥ उन सब अंगनाओंके मधुपान करने पर उनमें किसीने विनम्र भाव धारण किया और कोई उत्तेजित हो उठी। रमणी यदि अनंग शोभा से सु-शोभित हो तो सुरापान करने पर उसकी शोभा एक प्रकार से और भी बढ़ जाती है ॥ ५६ ॥ भ्रमरों ने जिसको आशु (शीघ्रता से) छोड़ दिया है और जिसके पीने से अपराध भूल जाता है, कामीजनों ने वही सुरा पान करके आशु वितान संयुक्त (चँदोवा लगी) शय्या का आश्रय लिया है ॥ ५७ ॥ ससागरा पृथ्वी तल में जिनके गुण प्रसिद्ध हैं, जो मोहन भाव

द्वारा लीला विलास वाली हैं – वे सब स्त्रियां मदनोत्सव में मत्त होकर परम शोभा और आनंद को प्राप्त हुईं। युवकगण भी उनके संग सुख शोभा के अधिकारी हुए ॥ ५८ ॥ शृंगार रस में नल राजाकी बुद्धि आर्द्र (स्निग्ध वा विमुग्ध) होगई। वे सदा सुख सौभाग्य शालिनी अकपट हृदय वाली दमयंती के संग विहार करते रहे। दमयंती ने रूप और सौभाग्य से कमला को भी पराजित किया था ॥ ५९ ॥ अकपट हृदया पुण्यशीला दमयंती के इस प्रकार से नल का मनोरथ पूर्ण करना आरंभ करने पर अतिशय काम पीड़ित नल भी दमयंती की वासनासे भी अधिक विहार द्वारा उसका मनोभिलाप पूर्ण करने लगे ॥ ६० ॥ भाँति भाँति की कपटता का कारण स्वरूप कलि के द्वारा जब तक विपद् उपस्थित नहीं हुई. तब तक राज्योत्पन्न अर्थात् राज्य से प्राप्त हुए बहुनिधि अर्थ (ऐश्वर्य) के आधार स्वरूप राजा नल इस प्रकार परम सुखसे विहार करने लगे ॥ ६१ ॥ इस भाँति महामति राजा नल स्वयम्वर के बाद से कुवेरकी नाईं धनेश्वर होकर महामहोत्सव सहित वसुंधरा (पृथ्वी) का शासन करते हुए विराजमान रहे ॥ ६२ ॥

महाकवि कालिदास कृत नलोदय काव्य का द्वितीय सर्ग समाप्त ॥

—०—

तीसरा सर्ग।

इधर समुद्भासित स्वयम्वर महोत्सव से जलद्-गंभीर स्वर वाले इन्द्रादि देवता जिस समय सुरधाम को जाने लगे; तब शुभ-कार्य-विमुख कलि को मार्ग में देख कर पूछा--'तुम कहाँ जा रहे हो?' ॥ १ ॥

कलि ने कहा–अतिशय रूपवती–दमयन्ती को पाने की इच्छा से मर्त्यलोक में जा रहा हूं। सुना है–मानों स्वयं कमला उसी हो सौन्दर्य-शालिनी दमयंती के रूप में प्रकट हुई है ॥ २ ॥

कलि के मुख से यह बात सुनकर देवताओं ने कहा–गौरी के समान सौभाग्य शालिनी–अकपट हृदया–अच्छे भाग्य वाली दमयंतीने सुचरित्र वाले नल राजा को पतिरूप में वरा है। अब तुम वहाँ मत जाना ॥ ३ ॥

यज्ञ सर्वस्व इंद्रादि देवताओं के मुख से यह बात सुन कर अपने स्वभाव-दोष से कलि का हृदय क्रोधांध होगया ॥ ४ ॥

तब उसने यह कह कर दारुण शाप दिया कि जिस स्त्री ने अपने दर्प से दर्पित हो प्रबल प्रताप वाले देवताओं को छोड़ हीन शक्ति वाले तुच्छ

मनुष्य से अनुराग किया है, नवीन लतिका जिस प्रकार तरु वर से विच्छिन्न होती है–वह दमयंती भी उसी प्रकार नल से विछोह (वियोग) को प्राप्त होगी, ॥ ५ ॥ महाबलवान् कलि इस प्रकार शाप देकर क्षण भर तक तो सावधान रहा और फिर नल राजा के छिद्र को ढूँढने लगा। वह इस प्रकार वन-मार्ग से जाते जाते नल का छिद्र पाकर उनके शरीर में घुस गया ॥ ६ ॥

पुष्कर नामक नल का एक भाई था। कलि के नल के शरीर में प्रवेश करने पर उस पुष्कर ने द्यूत-क्रीड़ा (जुए) में नल को हरा कर उनका सारा राज्य हड़प लिया। तब नल अत्यन्त मनः क्लेश से अपनी सह-धर्मिणी नितम्बिनी दमयंती के सहित अपनी विशाल राजधानी को छोड़ कर (बाहर) निकले ॥ ७ ॥ तब शत्रु रूपी पुष्कर ने नल राजा को न कहने योग्य तरह तरह के कड़वे वचनों द्वारा अपमानित करके उनकी सारी सम्पत्ति हरली। नलने हार-कुण्डल-के यूरादि गहने त्याग कर भार्या के सहित निराहार वन-वन में विचरना आरंभ किया ॥ ८ ॥

कांटों से भरे हुये वनेले मार्ग में रोते रोते जब वे जाने लगे–तब देखने वाले भी शोक से कातर हो उठे। प्यास के समय पानी अथवा भूँख के समय नल को अन्न देवे ऐसा मनुष्य कोई भी नहीं था ॥ ९ ॥

इस प्रकार नल श्रीहीन और गृहहीन होगये। किसी समय दमयंती ने (कितने ही हंसों को देखकर) नल के निकट क्रीड़ार्थ हंसों को पकड़ देने की प्रार्थना करी, तब नल ने उन पक्षियों के ऊपर अपना वस्त्र (डुपट्टा) फेंका। (कलि की माया से बने) वे हंस वस्त्र समेत उड़कर भाग गये। तब नल राजा ने क्षमा रूप तरणी की सहायता द्वारा अपने क्रोध सागर से पार होकर अभिमान विसर्जन किया ॥ १० ॥ धूप के प्रचण्ड ताप से हमारी वसा (चर्बी) और मेद (ओज) आदि जल जायगा–यह सोच कर उन दोनों ने एक वस्त्र ओढ़ लिया और नवीन श्रृंग समन्वित तरु-राजि विराजित पर्वतों में भ्रमण करने लगे ॥ ११ ॥

इस प्रकार विपत्ति काल में कलि के प्रभाव से नल की बुद्धि विमोहित हो गई [यह ही उत्तम नीति है]' यही काम इस समय करना योग्य है, यह विचारकर वे पहरे हुए वस्त्रमें से आधा वस्त्र फाड़कर दुरादृष्ट भोगिनी निःसहाय सोती हुई दमयंती को वन में छोड़ कर चल दिये ॥१२॥शत्रुओं के घमंड को तोड़ने वाले नल निरंतर थकावट और परिश्रम

से भ्रमण करते करते कलि के प्रभाव से अवसन्न (शिथिल) और दग्ध हृदय होगये । जंमांतर के कर्म फल ने ही उनको दुर्दशा में पहुँचा दिया । क्योंकि पहला किया हुआ कर्म ही सब स्थानों में बलवान् होता है, नहीं तो ऐसे धरणीधर नल राजा राज्य-भ्रष्ट होकर अकेले वन वन में क्यों घूमते? ॥ १३ ॥

अनंतर राजा नल दावाग्नि से प्रज्वलित एक वन में पहुंचे। वहाँ मृगकुल (हरिणगण) अविश्रांत भाव से आर्त्तनाद करता जल के बिना तृषातुर होकर मृत्यु-मुख में गिर रहा है। पक्षिगण ताप से संतप्त और क्रांत होकर प्राण त्याग कर रहे हैं। लम्बी लम्बी शाखा वाले सरस वृक्ष अग्नि के ताप से विदीर्ण होकर शब्द करते हुए पृथ्वी तल पर गिर रहे हैं; इस प्रकार भय दायक गहन वन में राजा नल उपस्थित हुए ॥ १४ ॥

इस भाँति शोक ग्रसित नल राजा उद्भ्रान्त भाव से भ्रमण कर रहे हैं उसी समय उनके कान में यह आर्त्तनाद प्रविष्ट हुआ कि 'हे नल! शीघ्र आओ'। तब नल ने भी उत्तर दिया 'हे अनाथ! तुमको कुछ भी भय नहीं है' ॥ १५ ॥ दयासागर नल राजा ने अत्यंत फुरती से 'तुम कहाँ हो? तुम्हारी विपद् दूर होवे, यह कहते कहते उस आर्त्तनाद करने वाले के उद्देश्य से दावाग्नि में प्रवेश किया ॥ १६ ॥ उन्होंने पास पहुंच कर देखा कि कर्कोट नाग दावाग्नि में पड़ा हुआ मृत प्रायः हो रहा है। अपनी शक्ति के प्रभाव से दावाग्नि से अपना उद्धार करने में समर्थ नहीं होता। वह मरने की अवस्था में पड़ा हुआ है। तब नल राजा ने (उसकी रक्षा करने के लिये) उसको ग्रहण करने की इच्छा करी ॥१७॥ तब नल ने कर्कोटक को पकड़ कर कुछ दूर फैंक दिया। उसी समय हितैषी निर-पराध नलको कर्कोट ने दंशन किया * सर्प के रक्षक उपकारी नल सर्पके विष से विकृत रूप को प्राप्त होगये। तब सर्पने कहा—हे नल! मेरे प्रसाद से आपकी आत्माको विष--जनित वेदनाका कष्ट नहीं होगा ॥ १८ ॥ हे नल!

---

* महाभारत में वर्णित है कि कर्कोट नामक नाग देवर्षि जी के शाप से अचल होकर पड़ा हुआ था। नारद जी ने कहा था, 'जब नलराजा आनकर इस स्थानसे तुमको अन्यत्र ले जायँगे, तब तुम्हारा शाप छूट जायगा। तब तक तुम चलन शक्ति से रहित होकर इस स्थानमें वास करो। अनन्तर जब राजानल उसका आर्त्तनाद सुनकर दावाग्निमें उसके निकट पहुंचे, तब कर्कोट ने कहा-'मुझको यहाँ से अन्यत्र ले चलो। तुम्हारा जिस से उपकार होगा मैं वैसा ही उपदेश दूँगा। यह कह कर उस सर्प ने मुष्टिमात्र आकार धारण किया, तब नल उसको पकड़ कर दावाग्नि से दूर अन्य स्थान में उपस्थित हुए

मैं आपको यह दो वस्त्र देता हूं–इन वस्त्रों से देह को ढकने ही कलि की यन्त्रणा दूर होजायगी और शरीर भी निरोग होगा। पृथ्वीतल में जो आपकी इस कीर्त्ति को गावेंगे, वे गुण सम्पन्न होकर सर्व सिद्धि के अधिकारी हो सकेंगे। अब आप दुःखी मत होना ॥ १६ ॥ हे पाप रहित! अभिमान त्याग कर एकाग्र चित्त से ऋतुपर्ण राजा का आश्रय ग्रहण कीजिये। क्यों कि जो विपद्में पड़ते हैं, सज्जनों का आश्रय ग्रहण करना ही उनका कर्तव्य है॥ २० ॥ आप उसी स्थान में जाकर आदित्य की समान कांति धारण कीजिये। शक्ति लाभार्थ वहाँ जाकर सुखके अधिकारी बनिये। दंभहीन सरल मित्र सज्जन के निकट उपस्थित होकर कहाँ सुख नहीं मिलता? कर्कोट नाग यह कह कर अंतर्ध्यान होगया ॥ २१ ॥

तदनन्तर नल राजा प्रसन्नता सहित उन (नाग दत्त) वस्त्रों को ग्रहण पूर्वक रक्षक विहीन--मांसाशी हिंसक जन्तुओं से पूर्ण उस वन से बाहर निकल कर ऋतुपर्ण राजा के राज्य में उपस्थित हुए ॥ २२ ॥ राजा ऋतुपर्णने पुलकित होकर नलको सारथी के पद में नियुक्त किया। जब नल सारथी के पद में नियुक्त हुए, तब से ऋतुपर्ण के घोड़े हिनहिनाते हुए शून्य मार्ग द्वारा महावेग से गमन करने लगे ॥ २३ ॥

इधर जब नल राजा पत्नी को शोक सागर में छोड़ चले गये, तब उसी समय अपना सुख दमन करने वाली वन में सोती हुई दमयती सहसा जाग उठी ॥ २४ ॥ पहले जो अट्टालिका और राज्योद्यान में रह कर नल के साथ परमानंद से निवास करती थी, वही दमयंती

जब उन्होंने उसको छोड़ा, तब उसने फिर कहा तुम एक एक या दो दो पग करके चलो मैं तुम्हारा उपकार करूँगा। नल भी उसके वचनानुसार एक दो करके गिनती करते हुए चले। ज्यों ही (दश) शब्द उच्चारण किया कि त्यों ही कर्कोटक ने उनको काटा। इसके विष से नल राजा का रूप बिगड़ गया। तब कर्कोट ने कहा-राजन्! आपको कोई पहचान न सके-इसी लिये मैंने आपको काट कर आपका रूप बिगाड़ दिया है। इसके लिये आप दुःखी मत होना। आपके देहमें कलि अवस्थित हैं, मेरे दशन-जनित विष से वह असह्य यातना को प्राप्त होकर आप को छोड़ देगा। अब आप अयोध्या को चले जाइये, वहाँ बाहुक नाम धारण पूर्वक ऋतुपर्ण राजा के सारथी-कार्य में नियुक्त हूजिये। वह राजा आपको अक्ष-विजय विद्या प्रदान पूर्वक आप से अश्व-विद्या ग्रहण करेगा उसी राज्य में आपको कल्याण की प्राप्ति होगी। मैं स्मरणार्थ आपको दो वस्त्र प्रदान करता हूँ-जिस समय आप यह वस्त्र पहरेंगे, तब ही पूर्व रूपको प्राप्त होंगे। यह कह कर कर्कोट चला गया।

उस समय राम—विरहिणी जानकी के समान दुःखी होकर नल को ढूँढने के लिये श्वापद-संकुल भुजङ्गिनी और विहंगिनी गण के आश्रय स्थान वृक्षराजि समाच्छन्न मृग-कुल पूर्ण वन वन में भ्रमण करने लगी ॥ २५ ॥ द्रुतवेग (शीघ्रता) से चलने के कारण उसकी श्यामल करवी स्खलित होगई। वह उसको धारण पूर्वक यह कह कर विलाप करने लगी कि—हे नल ! आपके तलवार पकड़ने पर वैरियों के हाथ से तलवार खस पड़ती है। आप शत्रुकुल निर्मूल करके बान्धवों को रक्षा करते हैं। तब फिर आप मुझको वनमें अकेली छोड़ कर क्यों चले गये ? अथवा अब तक भी लौट कर क्यों नहीं आये ? ॥२६॥ ॥ २७ ॥ हे अनुपम ! मनु-प्रणीत नानाप्रकार धर्म-शास्त्रों का मर्म आप जानते हैं—मुझ आपकी पत्नी ने अब वनवास का आश्रय किया है। अपनी रक्षा करने वाला कोई दिखाई नहीं देता। इस अवस्था में आपने मुझको क्यों छोड़ दिया ? जिस सहधर्मिणी का बिन्दु मात्र भी दोष नहीं है, उस मर्यादा शील भार्या को त्यागने के समय क्या आपके मनमें कुछ भी धर्माधर्म का विचार नहीं हुआ ? ॥ २८ ॥ हे स्वामिन् ! मेरे परित्याग करने का पाप आपका किया नहीं है—बल्कि वह पापात्मा कलि के द्वारा सम्पन्न हुआ है। यह मैंने समझ लिया है। आप मुझको विशेष रूपसे जानते हैं, यह काम आपने नहीं किया—अतएव कलिके अपराध से मैं आपको दोषी नहीं कर सकती ॥ २९ ॥ रे प्राण ! जबतक तुम इस शरीर को न छोड़ोगे, तब तक तुम्हारे नल अग्नि-गत लोहे की समान अत्यन्त सन्तप्त और नितान्त कातर होकर अवस्थान करेंगे—इसलिये तुम शीघ्र देहसे बाहर निकल जाओ—तब ही प्रियवल्लभ का सन्ताप दूर होगा ॥३०॥ हे प्रियतम ! आत्मीय-बन्धुओं ने आपको अधिपति पाकर कल्याण प्राप्त किया है—आप निःशत्रु और भय रहित होकर भी इस गहनवन से कहाँ चले गये ? आप क्या मुझ से हँसी कर रहे हैं ? नहीं—इतना देर तक हँसी करके आप कभी चुप नहीं रह सकते थे; तब आप मुझे दुष्पार दुःख के समुद्र में छोड़ कर कहाँ गये ? इस प्रकार कहकर दमयंती अत्यन्त भीत हो उठी ॥ ३१ ॥

अनंतर भीमकुमारी देवी दमयंती ने मृगकुल को सम्बोधन करके विलाप के स्वर से कहा 'हे मृगगण ! जिनकी कीर्त्ति-राशि के द्वारा बसुन्धरा और स्वर्ग का मध्य स्थल परिपूर्ण होरहा है। जो वैरिकुल की छातियों को फाड़ते हैं, मेरे प्राणप्यारे वे नल क्या इस पर्वत के सानु-प्रदेश में चले गये हैं ?' दमयन्ती यह बात कह कर रोने लगी ॥ ३२ ॥

फिर उसने अशोक वृक्ष के पास जाकर कहा—"हे अशोक! कामिनी गण तुम्हारे प्रति सन्मान दिखाती हुई तुमको दोहद प्रदान करती हैं, मैं तुमको प्रणाम करती हूँ--तुम मुझको अपने नाम के तुल्य करो अर्थात् अशोक (शोक रहित) करो" ॥ ३३ ॥

तत्पश्चात् परम रूपवती मोहन गति दमयन्ती देवदारू के वन में पहुंच कर भी उसी प्रकार विलाप करने लगी। फिर द्रुतवेग से जाते जाते एक मरुभूमि में आन कर उपस्थित हुई ॥ ३४ ॥ भीम नन्दिनी दमयंती काम--व्याधि से पीड़ित होकर विलाप और क्रन्दन करती करती मरुभूमि के मार्ग से होकर जाने लगी॥ ३५ ॥ उस काल उस अश्रु--भारा क्रान्तलोचना उद्वेग समाकुल दमयंती के सामने एक अजगर सर्प उपस्थित हुआ। वह महाभुजंग उसको ग्रास करने के लिये उद्यत हुआ॥ ३६ ॥ सहसा शत्रु--दर्पहारी कठोर स्वभाव एक व्याधा वहाँ आनकर उपस्थित हुआ। उसने अपना प्राण नष्ट होगा--इस बात की कुछ भी चिन्ता न कर दमयंती के प्राण--नाश में उद्यत उस महासर्प के मुख के भीतर अपने खड्ग की नोंक प्रविष्ट करदी और देखते देखते उसको विदीर्ण करके उसका प्राण नाश कर डाला ॥ ३७ ॥ दमयंती को (देखने पर) उस व्याध ने कामबाण से अत्यन्त जर्जरित हो उस निर्जन (सूनसान) वन में असहाय दमयंती से प्रार्थना करके कहा। हे सर्वांग सुन्दरी! तुम मेरी पत्नी बनजाओ; कौन कामार्त्त व्यक्ति जन-शून्य स्थान में (रमणी को देख कर) उसकेप्रति अभिलाषा विना किये रह सकता है?' ॥ ३८ ॥

यह कहकर उस व्याध ने फिर दमयन्ती से सम्बोधन करके कहा,- "हे मानिनी! मैं वनस्थली में वास करता हूं, अजगर सर्प को मार कर मैंने तुम्हारे जीवन की रक्षा की है, अतएव तुम मेरे प्रति प्रसन्न होओ। मेरी भजना करो। जो व्यक्ति दूसरे के जीवन की रक्षा करता है, धरातल में वह किस से सन्मान पाने के योग्य नहीं होता? मैं तुम्हारी शरण में आगया हूं तुम मेरे मनोरथ को पूरा करो ॥ ३९ ॥ 'हे मोहन चन्द्रवदने! तुम मुझ को अपना टहलुआ जानो'। दुरात्मा व्याध की यह बातें सुन कर रोष भर जाने से दमयन्ती की दोनों आँखें चंचल हो उठीं। उस के शाप देते ही उस व्याध का मेदास्थि समन्वित देह भस्मीभूत होगया। उसका भस्मीभूत शरीर पृथ्वीतल में गिर गया ॥ ४० ॥

अनंतर दमयंती इस प्रकार किरात को भस्म करके वृक्ष समाकुल निबिड़ वन-मध्यस्थ एक कन्दरा में उपस्थित हुई ॥ ४१ ॥ क्रमशः पैदल

जाते जाते उत्तम प्रारब्ध वशतः वह एक पर्वतीय (पहाड़ी) वनमें पहुंच गई। वहाँ दावाग्नि का चिह्नमात्र भी नहीं, किन्तु जल का बिलकुल अभाव है। तब वह विलाप करती हुई कहने लगी,-'हे सखे प्राण ! अब तुम शीघ्र मृत्यु का वरण करो। अब यह असीम दुःख नहीं सहा जाता' ॥ ४२ ॥

अनन्तर दमयन्ती उस कन्दरा को छोड़ कर गमन करते-करते एक कुटिल मुख वाले तरक्षु (भेड़िये) के सामने जापहुंची। उसने उस भेड़िये को सम्बोधन करके कहा। हे भेड़िये ! तुम रोष भरे हुए आकर मुझ को खाजाओ। तुम इस स्थान को छोड़कर दूसरी जगह मत जाना। हे वृक ! तुम्हारी प्यारी वृकी तुम्हारे संग (एकत्र रह कर) वास करे तुम मुझ को खाओ। खोटे प्रारब्ध से आक्रान्त प्राणवल्लभ नल के बिना फिर मुझको सुख ही क्या है ? ॥ ४३ ॥

अनन्तर भीमनंदिनी दमयन्ती एक राक्षस के सन्मुख उपस्थित हुई। राक्षस को देखते ही वह कह उठी। हे राक्षस ! तुम्हारा देह मेद से ढका हुआ है, तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी। तुम को इस समय भूंख लग आई है, इस लिये अब निश्चिन्त मत रहो मुझ को खाजाओ। तुम निठुर भाव से मेरे अंगों में दाँत निवेशित करदो। इससे मैं किञ्चिन्मात्र भी क्लेश नहीं मानूंगी। हे राक्षस ! नारी जाति होने से मुझ को अवध्य (मारने के अयोग्य) मत विचारना। मैं स्वयं ही तुम को अपना शरीर देती हूँ ॥४४॥

अनन्तर दमयन्ती ने एकाग्र हृदय से हरि का स्मरण करके स्तुति करते हुए कहा-'हे ब्रह्मन् ! हे हरे ! हे श्री-प्रद ! मैं इस समय मकरालय समुद्र की समान विपद् ग्रसित होगई हूँ,-अर्थात् विपद् सागर में निमग्न होगई हूँ। आप देवताओं का दुःख दूर किया करते हैं. इस महान् दुःख-दायक भय के समय धैर्ययुक्त वचनों द्वारा मुझ को सान्त्वना देकर मेरी रक्षा कीजिये ॥ ४५ ॥

यह कह फिर दमयंती नलके उद्देश्यसे फिर कहने लगी। 'हे निषध-पते ! आप के ऐश्वर्य व श्री (लक्ष्मी) का अंत होगया है। पुष्कर ने उस ऐश्वर्य श्री को प्राप्त करके आनन्द लाभ किया है। आप मुझ समेत इस प्रकार विपद् में पड़े हैं। मुझ को अब आशा नहीं है, कब मेरा भय दूर होगा ? कब मैं फिर पहले के समान हो सुख की अधिकारिणी हूँगी ॥४६॥
हे निषधेश्वर ! आपके वैरियों के नाशकी जरा भी इच्छा करने पर वे सब नीति-भ्रष्ट वैरी भय-कारण दूर से ही भाग जाते हैं। तरुण युवकों का भी गर्व आप के निकट खर्व (हत) होजाता है। तब अब अत्यन्त रोष क्यों

आप नहीं दिखाते है ? ॥ ४७ ॥ हे नीति विशारद ! हे अभिमानिन ! आप जिस राज्य के अधिपति होकर अवस्थान करते हैं, वहाँ जो दुराचारी शत्रुवास करते हैं, उनको नष्ट करते हो। अब आप अपने राज्य में जाइये और शत्रुकुल को निर्मूल कीजिये ॥ ४८ ॥ हे हितकारी ! नीतिरहित शत्रु का हाथी भी आपको नष्ट नहीं कर सकता। जहाँ तुम्हारे हितैषी व्यक्ति हैं, आप अपनी राजधानी में जाइये। राजनन्दिनी दमयन्ती इस प्रकार अनेक विलाप करने लगी ॥ ४९ ॥

अनन्तर विरह से कातर मोहनमूर्ति निर्दोष दमयंती ने (जाते-जाते) देखा-कितने ही सार्थवाह एक स्थान में अपने-अपने रत्नों की (यत्न से) रक्षा करके आडम्बर सहित (गन्तव्य प्रदेश में) जारहे हैं। यह देख कर उसके मन का कष्ट कुछ घट गया॥५०॥जल मिलने से शफरी(मछली) जैसे उद्भ्रान्त होती है, दमयन्ती भी उसी प्रकार प्रतिकूल प्रारब्ध वश विभ्रांत होकर नलान्वेषण-रूप कार्य की सिद्धि के लिये उस सार्थवाह (वणिक गणों) के संग जाने लगी। वणिक गणों के पूछने पर वह अपना परिचय देकर निर्भय उन की अनुगामिनी हुई ॥ ५१ ॥ अत्यन्त क्लेश से पैदल हो चलकर वह सुबाहु के राज्य में पहुंची। उस राज्य में अन्याय का चिह्न मात्र भी दिखाई नहीं देता था। यह राजधानी बहुत धन धान्य से भरी हुई है ॥ ५२ ॥ कदाचित् पीछे कोई पहचान न ले -इस आशंका से दमयंती अंगों में मालिन्यादि धारण करके सुबाहु की माता के पास पहुंची। वहाँ वह निर्विघ्न रहने लगी। सुबाहु की माता उसका भरण पोषण करने लगी। राजमाता के पास रहने से फिर उसको किसी भय की आशंका नहीं रही। वह शोक विदग्ध हृदय से केवलमात्र जीवन धारण के योग्य आहार करके दिन बिताने लगी ॥ ५३ ॥ निडर दमयन्ती इस प्रकार दुःखित हो नीति के अनुसार वर्तती हुई अनाथ की नाईं वन वन में पैदल ही घूम कर अंत में इस भाव से जीवन की रक्षा करने लगी ॥ ५४ ॥

महाकवि कालिदास कृत नलोदय काव्य का तृतीय सर्ग समाप्त ॥

—o—

चौथा सर्ग

इस ओर सामादि चारों उपायों में दक्ष नल राजा के नगरी से निकल कर वन को चले जाने पर यह समाचार राजा भीम को मिला। असंख्य नामाधिपतियों के अधीश्वर सानुचर (नौकरों सहित) भीम यत्न

पूर्वक नल के ढूँढने में प्रवृत्त हुए (कुछ पता न लगा सकने पर) वे अत्यन्त क्लेश से किसी प्रकार चित्त को स्थिर करके अवस्थान करने लगे ॥ १ ॥ वैरी के खड्ग का भो आघात लगना भीम के पक्ष में संभव नहीं था। उन्होंने नल को ढूंढने के लिये कितने ही श्रेष्ठ ब्राह्मणों को नियुक्त किया । वे सब ब्राह्मण अपने प्रधान आचार्य की आज्ञा से शिष्य की समान दिन रात नल की खोज में घूमने लगे। ॥ २ ॥ इन सब ब्राह्मणों में एक का नाम सुदेव था। वह अत्यंत चतुर और नीति विशारद था । वह अनेक देशों में घूमता हुआ एक बहुत से घोड़ों वाली नगरी में आनकर उपस्थित हुआ। वन वन में भ्रमण पूर्वक भयभीत हो सुन्दर आँखों वाली दमयंती उसी नगर में आन कर वास कर रही थी। वह शोभन--चरित्रा दमयंती नीति के अनुसार नल को प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार यत्नपरायण हुई, उसने अपने जीवन की रक्षा में वैसा यत्न व श्रम नहीं किया ॥ ४ ॥

इधर रनवास से भेजा हुआ एक पुरुष नल को खोजने के लिये पर्वतादि नाना स्थानों में विचरता विचरता इस श्लोक को उच्चारण करने लगा, कि-'हे आधे वस्त्र के तस्कर! नल! आप इस समय कहाँ हो? दमयंती के वन गमनादि काम तुम्हारे यश के कारण नहीं हैं । हे प्रिय! आप आत्मीयजनों का पालन करके प्रशंसा प्राप्त कीजिये" इस प्रकार श्लोक के उच्चारण करने का तात्पर्य यह है कि उसको सुन कर जो व्यक्ति उसका उत्तर देगा--वही उत्तर आनकर दमयंती को सुनादिया जायगा। यह भेजा हुआ पुरुष नागरिक वेश त्याग पूर्वक सर्प भक्षक गरुड़ की समान द्रुतवेग द्वारा छद्मवेश से भ्रमण करने लगा ॥ ॥ ५-६ ॥

जो सब आदमी नल की खोज में बाहर निकले थे, उनमें एक वृद्धावस्था वाले मनुष्य ने भीमराज के घर आकर दमयंती से कहा—दमयंती! अब असह्य क्लेश और भयने तुम्हारा पिंड छोड़ा। मैंने नलको पालिया। अब तुम सुस्थभाव से रहो ॥ ७ ॥ हे दमयंति! मैं निज राजधानी अयोध्या-स्थित ऋतुपर्ण राजाके निकट गया था। वहां कभी ऊँचे स्वरसे और कभी धीमे स्वर से मैंने तुम्हारे वस्त्र चुराने-विषयक श्लोक उस राजा के निकट उच्चारण किया। किन्तु श्रीमान् अमात्य गणों के सहित विराजमान राजा के निकट से कोई उत्तर नहीं मिला॥ ८ ॥ फिर जब मैं दुःखित भाव से जाने लगा, तब ऋतुपर्ण के घर रहने वाले सारथीपद में नियुक्त एक ठिंगने पुरुष ने मार्ग में मेरे पास आकर सशंकित भाव द्वारा एकान्त में यत्न पूर्वक (वक्ष्यमाण) बातें कहीं ॥ ९ ॥ (उसने कहा) "मैं

उस समय दीन अवस्था में पड़ा हुआ था। मेरे निकट कुछ भी अर्थ का आगम नहीं था, उस समय नंगा था, यह सब विषय बुद्धि से सूक्ष्म विचार करके दमयंती जिससे क्रोध त्याग देवे। मैंने अनुनय विनय से उसको यह सब जनाया है। क्यों कि धर्मका निर्णय उससे छिपा नहीं है- वस्तुतः दुर्दैव (खोटी प्रारब्ध) वश ही यह सब हुआ है" ॥ १० ॥

यह कह कर भेजे हुए ब्राह्मण ने (फिर) कहा— दमयंति! उस (सारथी रूपी) पुरुष की प्रमाण--संगत सची बातों मे मैं कृतार्थ होकर आपके पास लौटा हूँ"। ब्राह्मण के यह बातें कहने पर दमयंती ने उस (ठिंगने आकार वाले) पुरुष को ही नल स्थिर किया और ब्राह्मण को भक्ति पूर्वक प्रणाम करके अनगिन्त गायें और धन दिया ॥ ११ ॥ अनन्तर एक भक्तादि (एकाहारादि) व्रतधारिणी, नियमवत-गौरी के समान दमयंती सुनीति अवलम्बन करके अयोध्या से ऋतुपर्ण के संग गरुड़--वत् वेगगामी अग्रणी नल को बुलाने के लिये यत्न करने लगी ॥ १२ ॥ सामगुणशालिनी भीमनन्दिनी दमयन्ती ने एक दूसरे असाधारण ब्राह्मण द्वारा ऋतुपर्ण राजा के निकट अपने पुनर्वार स्वयंवर होने की बात जनाई। विशेष कर कहला भेजा कि--मानी व्यक्ति सहसा पाप को स्मरण नहीं करता। दमयन्ती के दूसरी बार स्वयंवर होने की बात सुनकर ऋतुपर्ण सारथी रूपी नलके साथ अवश्य यहाँ आवेंगे, यही दमयन्ती का अभिप्राय है ॥ १३ ॥ जो ब्राह्मण यह समाचार लेकर ऋतुपर्ण के पास गया, उसका नाम सुदेव है। उसके मुखसे दमयन्ती का दूसरी बार स्वयंवर होना सुन कर ऋतुपर्ण राजा ने कवच द्वारा अपने सब अंगों को ढक कर नल से कहा।--" हे सम्मानार्ह! मैं एक दिन में ही दमयंती की पुनः स्वयम्वर--सभा में जाना चाहता हूं। वह भीमनंदिनी मूर्त्तिमती कमला रूपिणी है, वह मुझको पतिरूप में वरण करेगी, इसमें संदेह नहीं ॥ १४ ॥ दमयंती मुझको अपनी गुण रूपी रस्सी में बांध कर खेंच रही है। आप विचार कर देखलो कि महिला के द्वारा सन्मानित होने पर किस व्यक्ति का मन हरण नहीं होता है? आगामि कल वह स्वयंवर महोत्सव सम्पन्न होगा। इधर मार्ग शतयोजन (चार सौ कोस) है, इस लिये आप शीघ्रता से रथको सजाइये ॥ १५ ॥ हे सारथे! रात का पहर बीतते न बीतते यदि आप द्रु वेग से वहाँ मुझको लेकर पहुंच सकेंगे--तब ही मैं तुम्हारे सहित दमयंती के समीप जा सकूँगा, ऐसा होने पर फिर दुष्ट राजाओं में क्रोध संचार होने की संभावना नहीं रहेगी। सहज से ही मैं दमयंती को प्राप्त कर सकूँगा। दमयंती ने जो

छल करके नल को प्राप्त करने के लिये यह झूँठी बात फैलाई है, ऋतुपर्ण उसको न समझ सकने पर ही नल से इस प्रकार कहने लगे ॥ १६ ॥ उन्होंने (फिर) कहा—'हे बाहुक! आपके इस प्रकार घोड़े हाँकने से आगामि तड़के ही दमयंती मेरी भजना करेगी--अर्थात् वह कल सवेरे ही मेरी पत्नी बन जायगी।" पराई स्त्री के प्रति वासनारूप अनुचित आश्वास सेआश्वस्त होकर राजा ऋतुपर्ण इस प्रकार अपनी बुद्धि में विकृत चित्त हो उठे अर्थात् उनका मन बिगड़ गया। इस लिये उनके मुख से इस प्रकार असंभव बातें निकलीं ॥ १७ ॥

अनन्तर नल ने रश्मि (लगाम) ठीक करके चारों ओर से घोड़ों को नियमित किया। रथ के ऊपर अनगिन्त अस्त्र शस्त्र रक्खे गये। नल ने उस बड़े भारी रथ में शत्रुहन्ता ऋतुपर्ण को चढ़ा कर भीम नगरी कुण्डिन की यात्रा करी ॥ १८ ॥ गमन काल में राजा ऋतुपर्ण के कंधे पर दुपट्टा पड़ा हुआ था; रथ के झपाटे से जो वायु उत्थित हुआ—उससे उड़ कर वह दुपट्टा नीचे जा गिरा। तब राजा ने बाहुक सारथी को सम्बोधन करके कहा—सारथे! (कुछ देर के लिये) रथ रोको, दुपट्टा पृथ्वी में गिर गया है। बाहुक ने उत्तर दिया—महाराज! अब तो वह बहुत दूर पीछे रह गया, उसके आने की संभावना नहीं है। यह बात सुनकर रथके वेग का विषय विचारने पर ऋतुपर्ण के हृदय में बड़ा ही आश्चर्य्य उत्पन्न हुआ ॥ १६ ॥ ऋतुपर्ण अक्ष-विद्या में पारदर्शी थे, अतएव उन्होंने उस विद्या के बल से बहेड़े के पेड़के फल गिनकर अश्व चलाने में दक्ष—दक्ष प्रजापति की समान महातपा नल को सन्तुष्ट किया। नल अपने मन ही मन यह विचार कर आनन्दित हुए, कि--जब यह ऋतुपर्ण अंक गणना में पारदर्शी है—तो पाशों के खेल में भी निःसन्देह दक्ष होगा। अतएव मैं इस से उस विद्या को लूँगा और फिर द्यूतक्रीड़ा (जुए) में प्रवृत्त होकर विजयी होऊँगा ॥ २० ॥ जिन दो राजाओं ने बल से देवेन्द्र को भी हराया है, युद्ध क्षेत्र में बैरी लोग जिनको निवारण नहीं कर सकते, उन राजा ऋतुपर्ण और नल ने रथ-वेग और वृक्ष-फल-गणना रूप कौतुक दिखाने के पीछे जल-स्पर्श सहित आचमन करके दोनों ने दोनों के कल्याणार्थ विनिमय किया ॥ २१ ॥

तब कलि ने देखा कि नल राजा में उसको भस्म कर देने की सामर्थ्य उत्पन्न होगई है-इस लिये उसने (डरकर) उनके शरीर को छोड़ कर ऊँचे विभीतक वृक्ष का आश्रय किया। कलि के ऊपर नल

का क्रोध प्रज्वलित हो उठा ॥ २२ ॥

उस समय कलि ने नलसे कहा--' हे नल ! मैंने तुम्हारे हृदय में अवस्थित होकर दमयन्ती के अग्नि-तुल्य क्रोध से दग्ध विदग्ध होकर अत्यन्त कष्ट पाया है; अब अग्नि-समान यातना में ग्रसित होकर आपकी शरण में आया हूं, आप दमयन्ती की क्रोधाग्नि से मेरी रक्षा कीजिये ॥ २३ ॥

कलि के इस प्रकार भाँति भाँति से विनय और स्तुतिवाद (खुशामद) करने पर उदार हृदय वाले नल ने विविध कपटता पूर्ण उस कलि को छोड़ दिया, किसी प्रकार भी दण्ड नहीं दिया । शत्रु के नम्र होने से जिस व्यक्ति का चित्त खिन्न जाता है, वह अतुल कीर्ति धन का अधिकारी होता है । इस प्रकार नल के शाप से कलि को छुटकारा मिला ॥ २४ ॥

नल का शरीर छोड़ कर कलि के चले जाने पर महा प्रताप शाली नलको विश्राम मिला । वे मन ही मन ऋतुपर्ण के विषय में कहने लगे। ' कल दमयन्ती तुम्हारी नहीं होगी ' । यह विचार कर उनका हृदय आनन्द से भर गया । वे रथ चलाते चलाते ऋतुपर्ण को लिये दमयंती के निकट प्रस्थित हुए ॥ २५ ॥ दिन प्रायः बीत चला है—उसी समय कलि-मुक्त पापरहित यतीगणों के सन्मानित राजा नल ऋतुपर्णको लेकर कुण्डिन नगर में उपस्थित हुए । यह नगर अनेक धन समृद्धि से भरा पुरा अनेक मनुष्यों से परिपूर्ण और दमयन्ती के द्वारा अधिष्ठित है ॥ २६ ॥

ऋतुपर्ण को देखकर कुण्डिनाधिपति भीम ने आदर पूर्वक संभाषण द्वारा उनकी पूजा करी और आपके मार्ग की थकावट दूर हो, कह कर विमान की अपेक्षा भी अति उत्कृष्ट अपने घर के भीतर उनको लेगये ऋतुपर्ण ने भी भीम को नमस्कार किया ॥ २७ ॥ भीम के अनुचर गण शान्त प्रकृति वाले थे—उनके द्वारा सम्पादित उत्सव में कुण्डिन नगरी परम शोभामयी है । भीम भी सज्जन पुरुषों से सन्मानित है। राजा ऋतुपर्ण उन शत्रु-कुल निहन्ता भीम की राजधानी का ऐश्वर्य व समृद्धि देखकर अपनी राजधानी अयोध्यापुरी को हीन (तुच्छ) विचारने लगे । अतएव उनके चित्त में ग्लानि उत्पन्न हुई ॥ २८ ॥

तदनंतर नल पवित्र भाव से नाग के दिये हुए वस्त्र पहर कर प्राण सदृशी देह की कांति से पवित्र प्रशंसनीय दमयंती के छलको मन ही मन विचारने लगे, ऋतुपर्ण का आना होने पर ही उनके संग से नल

उपस्थित होंगे, दमयंती के इस छल को सोचते-सोचते उन्होंने एक अतिउत्तम आयत (विस्तृत) मनोहर घरके भीतर प्रवेश किया ॥ २६ ॥ दमयंती ने अपनी विवेचना-सिद्ध नीति के अनुसार स्वयम्बर की घोषणा को थी-उसके पीछे बहुत ही शीघ्र रथ परिचालन पूर्वक नल निकट उपस्थित हुए हैं, यह देखकर भीम नन्दिनी का चित्त अतिशय आनन्द-रस में सराबोर होगया । उसने चित्त रूपी मन्दिर में आनन्द और हृदय देशमें सुख धारण किया ॥ ३० ॥ जो शत्रु कुलके शिर काटते हैं, जिनका मुख कमल अतिशय शोभित है, वे पाप मुक्त नल किस प्रकार से ऋतु-पर्ण के घरमें वास करते थे? इसको जानने की इच्छा से दमयंती ने केशिनी नाम वाली सखी को उनके निकट भेजा ॥ ३१ ॥ दमयती की भेजी हुई केशिनी ने नियमानुसार अनेक परीक्षा करके समझ लिया कि 'यह व्यक्ति नल ही है' तब आत्मीय भाव से भाँति-भाँति के वार्त्तालाप द्वारा उनका सन्मान करके पुनः दमयंती के पास लौट आई ॥ ३२ ॥

नल राजा ने नाग के दिये वस्त्र ज्यों ही पहिने, त्योंही उनके अंगों का ठिंगनापन आदि सब विकार दूर होगया । दमयंती घरके भीतर निश्चल भाव से विश्राम कर रही थी । (पति-पत्नी दोनों का सम्मिलन हुआ)नल कुण्डिनेश्वर के प्रसाद से घरमें स्निग्ध भाव से (सुख पूर्वक) अव-स्थित होकर दमयंती के साथ विहार करने लगे ॥ ३३ ॥

इस प्रकार क्षमाशील शत्रु-हन्ता राजानल ने राज महल के अति उत्तम कमरे में दमयंती के संग समागत होकर रात बिताई । फिर रात्रि प्रभात होने पर श्वसुर भीमराज से उनकी भेंट हुई ॥ ३४ ॥ भीमराज की सभा में नल को देखकर राजा ऋतुपर्ण की बुद्धि जड़ी भूत होगई । तब शत्रु सन्मान दर्शनसे हास्यकारी नलने ऋतु-पर्ण को बहुत सा अर्थ दान ओर सन्मानादि द्वारा सादर पूजा करके विदा किया ॥ ३५ ॥ इस प्रकार नल राजा भीम की नगरी में सुख से रहने लगे । दमयंती उनको प्रबोध देने और उनका सुख सम्पादन करने में प्रवृत्त हुई । अन्तःपुर चारिणी दमयंती का चिरवियोग-जनित क्लेश नल के द्वारा दूर हुआ । चन्द्रवदन नल ने इस प्रकार से दो महीने उस नगर में बिताये ॥ ३६ ॥

अनन्तर वैरियों से अजेय राजा नल असि, गदा और अन्यान्य अस्त्र शस्त्र लेकर महती सेना के सहित परमशोभा धारण पूर्वक अपनी राज-धानी में चले गये । तब पुष्कर के संग उनके युद्ध का उपक्रम हुआ ॥३७॥

नल राजा ने पुष्कर से कहा-हे पुष्कर ! तुमने भाँति २ के कपट जाल

फैलाकर मुझको अत्यन्त क्लेश और दुःख दिया है, अब तुम्हारी क्या इच्छा है? या तो धनुष पर रोदा चढ़ाकर युद्ध करो अथवा दूसरी बार फिर द्यूत क्रीड़ा में प्रवृत्त होओ ॥ ३८ ॥

नल की यह बात सुनकर पुष्कर का प्रमाद दूर होगया। उसने तरह तरह का सोच विचार करके अन्त में द्यूतक्रीड़ा करने का ही निश्चय किया। पुष्कर ने द्यूतक्रीड़ा द्वारा नल को पृथ्वी (राज्य) से वंचित करके वनवास को भेजा और बहुत क्लेश दिया था। इस बार उसने फिर उसी द्यूतक्रीड़ा का अभिप्राय प्रकाशित किया ॥ ३६ ॥

तब असंख्य-धन संपन्न-शुभ सौभाग्यशाली नल के संग पुष्कर प्राण की वाजी लगा कर द्यूतक्रीड़ा में प्रवृत्त हुआ। किन्तु अन्त में उसको ही हारना पड़ा। तब उसके प्राण-भिक्षा की प्रार्थना करने पर नल ने उसको अकपट समझ कर प्राण-भिक्षा दी ॥ ४० ॥

फिर नल ने पुष्कर को सम्बोधन करके कहा।—हे पुष्कर! मैं तुमको जो भू-सम्पत्ति प्रदान करता हूँ—तुम अपने घर रहकर उसकी रक्षा करते रहो और उस स्थान में तुम पुलकित हृदय से वास करते रहो। इसमें तुम में पहले जैसा स्नेह था—अब वह स्नेह और भी बढ़े ॥ ४१ ॥

तब पुष्कर ने इन्द्र—वायु और धर्मराज की समान शक्ति—सम्पन्न नल के पास आकर प्रीति सहित उनको प्रणाम किया और कहा—हे शरणागत वत्सल! आप की परम कीर्ति—माला से दशों दिशा सुशोभित हुई हैं। आपने अपनी वीरता के प्रभाव से शत्रु—कुल को निर्मूल किया है। आपकी बुद्धि सदा ही प्रशंसनीय रहे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ पुष्कर इस प्रकार विनय से नम्र भाव द्वारा प्रफुल्ल बदन -शत्रु के पक्ष में अग्नि तुल्य तृणवत् नमन शील नलके चरणोंमें प्रणाम करके उनका अनुगामी हुआ४४

अनन्तर निषधराज नल कवच उतार कर पुष्कर के संग पुलकित हृदय से रहने लगे। उन्होंने सज्जन पुरुषों के उपदेशानुयायी और विरह—रहित होकर भाँति भाँति की मौक्तिक—माला धारण पूर्वक राज्य शासन करना आरंभ किया ॥ ४५ ॥ नल के जो शत्रु थे, वे हित काल और विपद्—शोक में जड़ित होकर बनवास को चले गये। कमला जिस प्रकार निरन्तर श्री हरि के निकट विराजमान् रहती है राजश्री भी उसी प्रकार कपट रहित नल के समीप वास करने लगी॥४६॥शुभ प्रारब्ध वाले नलकी राजधानी पूर्ववत् विस्तार को प्राप्तहुई। महातेजस्वी नल निरंतर उत्सव मयी राज्यश्री से सुशोभित होकर विराजमान् रहने लगे ॥४७॥

(नलोदय समाप्त)

ॐ हरिः

महाकवि कालिदास कृत।

और

प्रकाशक—

पं० हरिशंकर शिवशंकर शर्मा,
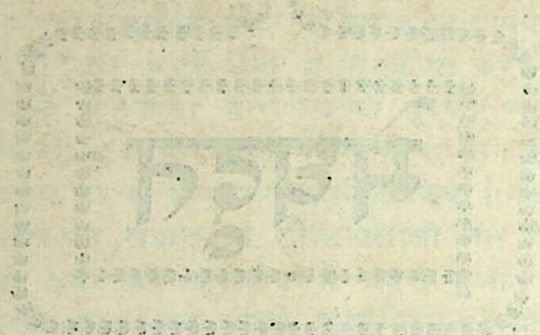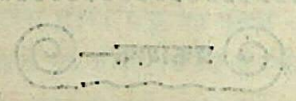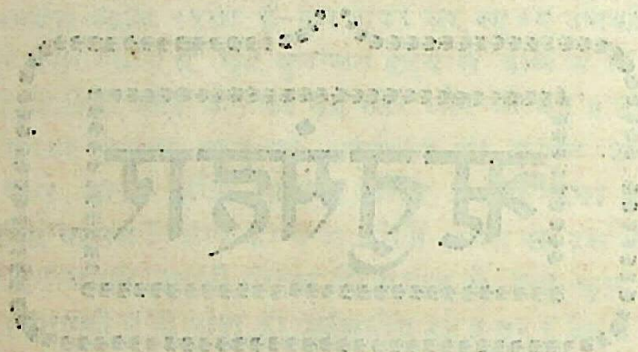
अध्यक्ष—हिमालय डिपो,

तथा—हिमालय-'प्रेस',

मुरादाबाद यू० पी०।
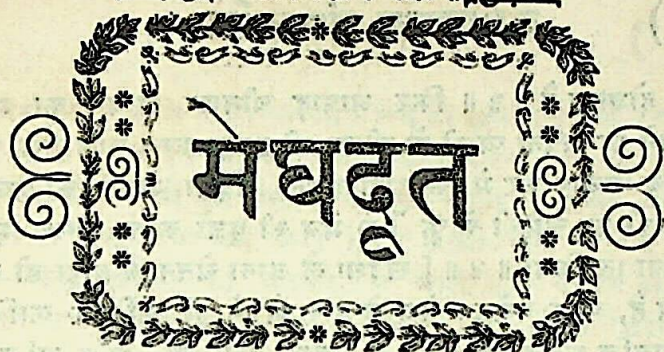
पूर्व मेघः

(भाषानुवाद)

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः ।
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्त्तुः ॥
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु ।
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥ १ ॥

अपने कर्त्तव्य कार्य में सावधान न रहने से अपने स्वामी कुबेर के शाप से निस्तेज हुए एक यक्ष ने स्त्री के वियोग से महा दुःखदायी उस शाप का एक वर्ष तक भोगने के लिये जनक-नन्दिनी श्री जानकी जी के स्नान से पवित्र जल और सुन्दर छाया वाले वृक्षों द्वारा शोभायमान रामगिरि के आश्रम में निवास किया ॥ १ ॥ उस चित्रकूट पहाड़ पर स्त्री के वियोग से खिन्न (दुःखी) तथा जिसके हाथ से दुर्बलता के कारण सुवर्ण-कंकण खिसक पड़ा है, उस काम से आतुर हुए यक्षने कुछ महीने बिताये; फिर उसने आषाढ़ मास के आरम्भ में इच्छानुसार क्रीड़ा करने में निरत और पहाड़ में तिरछे दांतों की टक्कर मारने वाले हाथी की नाईं देखने में सुंदर पहाड की चोटी से चिपटे हुए एक मेघ को देखा ॥ २ ॥ तब वह कुबेर का अनुचर डबडबाई हुई आँखों से काम को जगाने वाले मेघ के सन्मुख किसी भाँति ठहर कर बहुत देर तक सोचता रहा कि जब मेघों के देखने से भोग-सुख युक्त पुरुष का मन भी काम से आतुर होजाया करता है, तब फिर गले से मिलने की इच्छा वाले मुझ सरीखे दूर देशवासी की तो बात ही क्या है ? क्योंकि वह तो वियोग से बहुत

ही दुःखी होजाता है ॥ ३ ॥ फिर आषाढ़ बीतकर सावन का महीना निकट आने पर अपनी प्यारी के जीवन की इच्छा करने वाले उस यक्षने बहुत सोच विचार कर मेघके द्वारा अपना सँदेशा भेजने की इच्छा से नूतन पहाड़ी पर चमेली के फूलों से मेघ की पूजा करके प्रसन्न मन हो उसका स्वागत किया ॥ ४ ॥ [सँदेशा ले जाना चेतन के द्वारा ही संभव हो सकता है, अस्तु अचेतन-मेघ के द्वारा भेजने में कविवर कालिदास यक्ष की प्रवृत्ति का कारण कहते हैं] ज़रा देखो तो—धुँआ-आग जल और वायु के सँयोग से बना यह मेघ कहाँ ? और उधर चतुर मनुष्य के द्वारा भेजने योग्य सँदेशा कहाँ ? यह दोनों बातें आपस में विरुद्ध हैं, किन्तु वियोग की उत्कंठा से यक्षने इसका विचार न करके मेघसे दूत बनने के लिये प्रार्थना की। क्योंकि जो आदमी कामके वशीभूत हो जाता है; उसको स्वभाव से ही उचित अनुचित का ज्ञान नहीं रहता ॥ ५ ॥ यक्षने कहा,—हे मेघ ! तुम पुष्कर और आवर्त्त नामक मेघों के प्रसिद्ध कुलमें उत्पन्न हुए हो; और अपनी इच्छानुसार चाहे जो स्वरूप धारण कर सकते हो; इस पर भी तुम देवराज इन्द्र के प्रधान दूत हो, यह जानकर भाग्य-वश प्यारी से वियोगी मैं तुमसे कुछ याचना करता हूँ। यदि प्रार्थना विफल हो; तो भी कुछ चिन्ता नहीं—क्योंकि अपने से श्रेष्ठ मनुष्य के निकट की गई प्रार्थना का विफल होना भी उत्तम है, पर नीच पुरुष से सफल होना भी अच्छा नहीं ॥ ६ ॥ हे पयोद ! संसार रूपी ताप से तपे हुए पुरुषों के तुम शरण हो, इस लिये कुबेर के क्रोध से वियोगी मेरे सदेशे को तुम प्यारी के पास ले जाओ [अर्थात् हम दोनों के ताप को शान्त करो] तुमको सँदेशा लेकर पहले यक्ष-पतियों की नगरी उस अलकापुरी में जाना पड़ेगा, कि जहाँ पर उद्यानमें बाहर बैठे श्री महादेव जी के मस्तक की चाँदनी से धनशाली पुरुषों के स्थान चमक रहे हैं ॥७॥ जिस समय तुम आकाश-मार्ग में होगे, उस समय विदेशी पुरुषों की नारियाँ अपने प्रियजनों के आने के विश्वास से अपने बिखरे हुए बालों को सुधार कर तुम्हारी ओर निहारेंगी, क्योंकि विदेशी जन वर्षा ऋतु में अपने-अपने घर आया करते हैं। अतएव तुम्हारे आगमन में विरह से दुःखी अपनी प्यारी को वह कैसे भूल जायगा जो कि मेरी नाईं पराधीन नहीं है ॥ ८ ॥ यह देखो-तुमको अनुकूल व मन्द मन्द पवन प्रेरणा कर रहा है और तुम्हारे वाम भाग में बैठा हुआ मस्त चातक पक्षी मीठा-मीठा शब्द कर रहा है, और उस तरफ़ गर्भाधान की लालसा से कतार बाँधे हुए बलाका पक्षी तुमसे मिलने के लिये ही आकाश मार्ग में उड़

रहे हैं; अस्तु-इस भाँति यात्रा के समय सब ही शुभ शकुन हो रहे हैं ॥ ९ ॥ हे मेघ! वियोग के शेष दिनों को गिनने में लगी अथच इसीलिये जीती हुई अपनी सती भौजाई को तुम अवश्य देखोगे—क्योंकि तुम सब स्थानों में जा सकते हो। स्त्रियों का प्रेम भरा हृदय प्रायः फूल की नाईं कोमल होता है—अतः वियोग की अवस्था में आशा रूपी बन्धन ही उसको शीघ्र पतन से बचाये रहता है ॥ १० ॥ तुम्हारा जो गर्जन शिलींध्र पुष्प [ककुरमुत्ता वा कोंल] उत्पन्न करके पृथ्वी को सफल कर सकता है; उसी कर्णसुखकारी गर्जन को सुनकर राजहंस मृणाल के टुकड़े को मार्ग में भोजन करने के लिये मुख में धारण पूर्वक मान सरोवर को जाते हुए कैलास तक आकाश में तुम्हारे साथी रहेंगे ॥ ११ ॥ हे मेघ! अब तुम अपने मित्र तथा मान्यवर श्री रघुनाथजी के चरण कमलों द्वारा पवित्र चित्रकूट से सप्रेम मिल कर जाने की आज्ञा लो। जिस चित्रकूट का समय-समय अर्थात् वर्षाकाल में तुम्हारे संयोग से बहुत दिनों के वियोग वश गरम आँसू निकलने से प्रेम प्रकट होता है। चिरकाल में प्रेमीजनों के समागम द्वारा प्रेमाश्रु गिरा करते हैं ॥ १२ ॥ हे जलद! पहले तुम अपने जाने का ठीक ठीक मार्ग मुझसे सुनलो; तब फिर पीछे से वहाँ जाकर मेरा अनूनतर सँदेशा प्यारी को सुनाना। जिस समय तुम अलका-पुरी जाते हुए अधिक थक जाओ, तो बीच-बीच में पहाड़ों पर विश्राम लेना और कृशदेह अर्थात् क्षीणजल होने पर नदियों का हलका पानी पीते जाना ॥ १३ ॥ क्या चित्रकूट के शिखर को पवन उड़ाये लिये जाता है इस भाँति आश्चर्य से मोहित हुई सिद्धों की नारियाँ तुम्हारे उत्साह को ऊंचा मुख करके निहारेंगी। अतएव अब तुम इस हरे भरे बेत वृक्ष वाले स्थान से आकाश मार्ग में दिग्गजों की मोटी सूंड़ की फटकारों को अपने वेग से हटाते हुए उत्तर दिशा को जाओ ॥ १४ ॥ देखो—यह सानप मेघ के शिखर से पद्मरागादि मणियों की मिली हुई कान्ति के तुल्य दर्शनीय इन्द्र धनुष आगे उदय होता है, इस धनुष के संयोग से तुम्हारा साँवरा देह मोर-पंख धारी गोपाल वेश धारण किये हुए श्री कृष्ण की सुन्दरता को प्राप्त होगा ॥ १५ ॥ कृषि (खेती) का फल तुम्हारे ही अधीन है। क्योंकि अन्न बिना वर्षा हुए उत्पन्न नहीं हो सकता अतएव भ्रुकुटी भंग से अजान किसानों की नारियाँ प्रेम पूर्ण नेत्रों से आदर सहित तुमको निहारेंगी, उस समय तुम उत्कट सुगन्धि वाले माल क्षेत्र में जल की वर्षा करके फिर शीघ्रता से उत्तर दिशा को ही चले जाना ॥ १६ ॥ वहाँ मुसलाधार वृष्टि द्वारा

दावाग्नि को बुझाने वाले तथा मार्गश्रम से थके हुए तुमको आम्रकूट पर्वत मित्र समझ कर सादर मस्तक पर धारण करेगा। क्योंकि निधन भी मित्र के आने पर उसके किये हुए उपकारों को याद करके सत्कार से मुँह नहीं मोड़ता है। तब फिर आम्रकूट सरीखे ऊँचे पुरुष का तो कहना ही क्या है ? ॥ १७ ॥ हे घन ! पके हुए फलों द्वारा सुन्दर जंगली आम के पेड़ों से घिरे, आम्रकूट पहाड़ की चोटी पर कोमल केश-पाश के समान छवि वाले तुम्हारे आरूढ़ होने पर उसका मध्य भाग काला और शेष भाग गोरा होने से भूमि के स्तन की समान दिखाई देने पर उस काल वह क्रीड़ासक्त देवताओं के देखने योग्य होगा ॥ १८ ॥ जिस आम्रकूट पर्वत के कुंजों में वनचरों की नारियाँ विहार किया करती हैं, वहाँ कुछ देर रुक कर तुम जल की वृष्टि करने पर आगे की मार्ग जल्दी से चलने के उपरान्त विन्ध्य पर्वत के पत्थरों में टेढ़े मेढ़े प्रान्त पर्वत पर फैली हुई रेवा नदी को इस प्रकार देखोगे कि मानों हाथी के शरीर में विभूति द्वारा सफेद रेखाएँ की गई हैं ॥ १९ ॥ हे घन ! वहाँ तुम जल की वर्षा करके जामुन के कुंजों से रुकती हुई रेवा नदी के बहने से हाथियों के मद से सुगंधित जल को लेने या पीने जाना—क्योंकि जल से परिपूर्ण तुमको पवन इधर उधर हिला नहीं सकेगा। पेट के खाली सब लोग हलके समझे जाते हैं, केवल परिपूर्ण पुरुष ही गौरव शाली हुआ करते हैं ॥ २० ॥ हे मेघ ! सारँग-पक्षी, हरिण और हाथी अधखिले हरे पीले कदम्ब के फूलों को देख कर तथा जल वाले देशों को देख कर तथा जलवाले देशों में पहले फूली भूकन्दली अर्थात् कोदव को भोजन कर और वृष्टि होने के कारण वनों में पृथ्वी की सुगन्ध को सूंघ कर तुम्हें मार्ग बतलावेंगे। भावार्थ—जिस स्थान में यह सब चिह्न दिखाई देवें—तो, उस स्थान में वर्षा हो चुकने का अनुमान होता है ॥ २१ ॥ हे सखे ! यद्यपि मेरे प्रियकार्य के निमित्त तुम्हारी इच्छा शीघ्र ही जाने की है, किन्तु तो भी देखता हूँ कि खिले कुटज पुष्पों की सुगन्धि वाले यह पर्वत विलंब का कारण होंगे। जिस समय प्रमाश्रु वाले मोर गण आनो वाणीसे स्वागत करके तुम्हें विदा करेंगे, तब तुम किसी प्रकार शीघ्र जाने की चेष्टा कर सकोगे ॥ २२ ॥ हे पयोद ! तुम्हारे दशार्ण देश के समीप पहुँचने पर वहाँ के उपवनों के बड़े खिले केवड़े के फूल से सफेद रंगके होजाँयगे। गाँव के बड़े वृक्ष कौए आदि पक्षियों के घोंसलों से भर जाँयगे। पके जामुन के फलों द्वारा वन शोभा को प्राप्त होंगे, और हंस भी वहाँ कुछ दिनों तक निवास करेंगे ॥ २३ ॥ फिर तुम दशार्ण देश की

विख्यात विदिशा नामक राजधानी में पहुंच कर कामीजनों के सब भोग विलासों को प्राप्त होगे। क्योंकि तुम्हारे तीर प्रदेश में गर्जन करने से सुंदर मधुर और चंचल तरंग वाले वेत्रवती के जल को तुम भ्रुकुटी-भूषित स्त्री मुख के अधर पान के समान पान करोगे ॥ २४ ॥ हे जलंधर ! तुम उस विदिशा में नीच नामक पर्वत पर विश्राम के लिए ठहरना-जो कि कदम्ब के खिले हुए फूलों द्वारा मानों तुम्हारे संसर्ग से ही पुलकित होरहा है और जिसको गुफाएँ विलासवती नारियों के गंध-माल्य आदि वस्तुओं की सुगन्धि व्याप्त होने से नागरिक पुरुषों के उत्कट यौवन मद को प्रकट करता है ॥ २५ ॥ इस भाँति विश्राम लेकर तुम वन-नदियों के तटस्थ बगीचों में उत्पन्न चमेली की कलियों का जल की फुहारों द्वारा सींचते हुए चले जाना, और कपालों के पसीने को पोंछने से जिनके कमल पत्र के कर्ण-भूषण (कर्नफूल) मैले होगये हैं, उन फूल तोड़ने वाली मलीन स्त्रियों को छाया करके क्षणभर के लिये उनसे भी परिचित होते जाना—अर्थात् जान पहचान करते जाना ॥ २६ ॥ हे घन ! उत्तर दिशा को जाते हुए यद्यपि तुमको उज्जयिनी का रास्ता कुछ टेढ़ा पड़ेगा किन्तु तो भी उस नगरी के राजभवन को देखने से तुम विमुख मत होना। क्योंकि उस स्थान में यदि बिजली की चमक से डरी हुई नगर की स्त्रियों के चंचल कटाक्षों द्वारा तुम मोहित न हुए तो ठगे ही गये अर्थात् तुम्हारा जन्म ही वृथा गया ॥ २७ ॥ हे मेघ ! तुम उज्जयनी के मार्ग में जाते हुए जलकी तरंगों द्वारा शब्द करती हंस पंक्ति रूपी काञ्चीमाली-दाम धारण कर चलने (बहने) वाली, और जलावर्त्त अर्थात् भँवर रूपी नाभि को दिखाने वाली निर्विन्ध्या नदी के रस (जल) का अनुभव करना। प्रेमी जनों के निकट हाव-भाव प्रकट करना ही नारियों की संभोग प्रार्थना होती है-वे इस विषय में मुख से कुछ नहीं कहतीं हैं ॥ २८ ॥ जिस निर्विन्ध्या नदी का जल-प्रवाह वियोग की अवस्था में वेणी-केश पाश के स्वरूप को प्राप्त होकर किनारे के पेड़ों के पके पत्तों के गिरने से पीले रंग का होगया है। इतने समय से जो नदी तुम्हारे वियोग में तुम्हारे ही सौभाग्य को प्रकाशित कर रही हैं, उसकी कृशता (दुर्बलता) जिस प्रकार दूर होसके, वही तुम्हारा कर्त्तव्य कार्य है ॥ २९ ॥ फिर अवन्ती देश में जाकर जहाँ गांव के अनुभवी वृद्धलोग वत्सराज की कथा या वासवदत्ता हरण आदि की कथा करते हैं, उस सम्पत्ति शाली विशाला [उज्जयिनी] नगरी को जाना-जिस नगरी का दर्शन करने से विदित होजाता है कि यह मानों स्वर्ग फल भोगियों के अल्प पुण्य रह

जाने से पुनर्वार भूलोक आने पर उनके बचे हुए सुकृत द्वारा पृथ्वी पर लाया हुआ प्रकाशमान स्वर्गलोक का एक टुकड़ा है। सारांश उज्जयिनी नगरी लोकोत्तर सम्पत्ति तथा सुन्दरता का स्थान है ॥ ३० ॥ जिस विशाला नगरी में प्रातः समय सारसों के मीठे शब्दों को बढ़ाता हुआ फूले हुए कमलों की सुगन्धित द्वारा परिपूरित देह को सुखदायक रति प्रार्थना के अवसर पर खुशामदी बातें कहने में प्रिय जनों की नाईं चतुर शिप्रा नदी का पवन नारियों के भोग की थकावट को दूर करता है ॥ ३१ ॥ उज्जयिनी में गवाक्षों से निर्गत नारियों के केश-संस्कार धूप द्वारा पुष्ट देह और बन्धु प्रीति के कारण मोरों से नृत्य रूपी भेंट पाये हुए तुम सुन्दर स्त्रियों के पैरों में लगे महावर के रंग द्वारा चिन्हित तथा फूलों की सुगंध से भरे हुए धनवानों के महलों की सुन्दरता का दर्शन करते हुए, थकावट मिटाना ॥ ३२ ॥ यह क्या प्रभु श्री महादेव जी के कंठ की छवि है ? इस प्रकार श्री महादेवजी के गणों द्वारा सादर देखे जाते हुए तुम तीनों भवन के गुरु चण्डीश्वर महाकाल के भवन को गमन करना । जहां के बगीचे का कमल की गन्ध से युक्त तथा जल-क्रीड़ा में निरत चन्दनादि गन्ध पदार्थों द्वारा सुगन्धित गंधवती नदी के सम्पर्क से सुवासित पवन कम्पायमान कर रहा है ॥३३॥ हे जलद ! यदि तुम महाकाल के स्थान में सन्ध्या समय के अतिरिक्त अन्य समय में पहुँचो, तो वहां सूर्यदेव के छिपने तक ठहरना तथा सन्ध्या काल को मनहरण पूजा के समय नगाड़ा बजाने का काम अपने गर्जन से पूर्ण करके उसको पूरा पूरा सफल करना ॥ ३४ ॥ वहां सायंकाल के नृत्य में काञ्ची अर्थात् करधनी का शब्द करने वाली और हाथों में रत्न जटित कंकणों की प्रभा (चमक) द्वारा चमकदार डंडे वाले छोटे पंखे को चलाने से जिनके हाथ थक गये हैं-ऐसी वे वेश्याएं अपने नखक्षतों को सुख देने वाली वर्षा की पहली बूंदों को तुमसे पाय कर तुम पर भौरों की कतार के तुल्य लम्बे कटाक्षों को करेंगी [कटाक्ष का कृष्ण वर्ग होता है] ॥ ३५ ॥ इस भांति सायंकालीन पूजा समाप्त होने के पीछे तुम जवा फूल की नाईं संध्याकाल के तेज को धारण किये हुए ताण्डव नाच के आरंभ में श्री महादेव जी के ऊँचे भुजवृक्षों के वन को चातर्रा से घेर कर उनकी आर्द्र (गीले) गजचर्म ओढ़ने की अभिलाषा को पूर्ण करोगे। उस काल गज-चर्म देखने का डर दूर होने पर स्थिर नयनों से भवानी (पार्वती) तुम्हारी भक्ति को देखेंगी ॥ ३६ ॥ उस उज्जयिनी नगरी में रात को निबिड़ अंधकार से न दीखने वाले

मार्ग में अपने प्रिय जनों के पास जाती हुई नारियों को कसौटी में सुवर्ण-रेखा की नाई चमकने हारी बिजली के द्वारा तुम मार्ग दिखा देना। पर उस काल न तो गर्जन करना और न जल की वर्षा ही करना-क्योंकि स्त्र नारियां अत्यन्त ही भीरु (डरपोक) होती हैं ॥ ३७ ॥ इधर तुम्हारी बिजली स्वरूपिणी स्त्री अधिक समय तक चमकने से थक जायगी-इस वास्ते तुम किसी घर की खपरैल पर कि जहां पारावत (कबूतर) सोये हों-रात बिता देना। फिर सूर्य का दर्शन करने पर अर्थात् सवेरा होने पर शेष मार्ग चलना। कारण, मित्र के काम को पूर्ण वचन देकर कोई भी देर नहीं करता है ॥ ३८ ॥ सूर्य उदय होने के समय प्रणयियों को खण्डिता* प्यारी के आँसुओं को अवश्य पोंछना चाहिये-अतएव सूर्य के मार्ग को तुरन्त छोड़ देना अर्थात् उनको प्रातः बादल से मत घेरना। क्योंकि नलिनी के मुख कमल से हिम रूपी नेत्रों का जल दूर करने के लिये सूर्य लौट कर आ रहे हैं। यदि तुम उनके हाथ अर्थात् किरण को पकड़ोगे, तो वे तुम पर बड़ा क्रोध करेंगे ॥ ३९ ॥ हे प्यारे! तुम्हारा स्वभाव वश्च न सुन्दर शरीर चित्त के सदृश स्वच्छ गंभीरा नदी के जलमें अवश्य प्रतिबिम्बित होगा, अतएव तुम कुमुद पुष्प की नाई उज्वल (सफरी) मछलियों के शीघ्रता पूर्वक उलट-पलट रूपी नदीके प्रेमावलोकन को रुखाई से विफल मत करना। सारांश,-अनुरक्त नायिकाको धोखा देना अनुचित मालूम होता है ॥४०॥ हे घन! गंभीरानदी का नीला जल रूपी वस्त्र तुम्हारे हरलेने पर किनारे के बेत वृक्षकी शाखा पानीमें झुकी होने से मानों वह तटरूपी नितम्बसे स्खलित अर्थात् खिसके वस्त्रको ही लज्जा वश हो हाथसे पकड़े हुए हैं, इस भाँति गंभीराके ऊपर आक्रमण करने पर वहां से तुम्हारा जाना कठिन हो जायगा। कारण, कि कौन रसिक पुरुष विलासिनी स्त्री को त्याग सकता है ॥ ४१ ॥ हे जलधर! इसके उपरांत देवगिरि पहाड़ पर जाते हुए तुम्हारी जल वृष्टि से आनन्द के श्वास लेती हुई भूमि के गंध द्वारा सुवासित और हाथियों के शब्द करते हुए सूंडों से सूँघा जाकर वनमें गूलर के फलों को पकाने वाली ठंडी पवन शनैः शनैः तुम्हारी सेवा करेगी ॥४२॥ उस देवगिरि पर सब काल निवास करने वाले स्कन्द के ऊपर तुम पुष्प मेघ का रूप धारण कर आकाश गंगा के जल द्वारा भीगे फूलों की वृष्टि करके उनका अभिषेक करना। इन्द्र सेना की रक्षा के लिये सूर्यकी अपेक्षा भी जो अधिक तेज महादेव जी ने अग्नि में होम कर दिया था,

* जिसका भर्ता रात में किसी दूसरी स्त्री से संभोग करने के लिये चला गया हो

इसी एकत्रित तेज को स्कन्द का स्वरूप जानना चाहिये ॥ ४३ ॥ वहाँ पहुँच जाने पर तेज की रेखाओं के मण्डल वाले गिरे हुए जिस मोर के पंख को पुत्र-स्नेह वशतः भवानी पार्वती जी अपने कानों में कमल पत्र के संग धारण किया करती हैं। उस महादेव जी के मस्तक की चाँदनी से श्वेत नेत्र प्रांत वाले स्वामिकार्तिकेय के मोर को तुम पहाड़ की गुफाओं में गूँजने से अपनी भारी गर्जना द्वारा नचाना ॥ ४४ ॥ इस भांति जब तुम शरजन्मा देव की पूजा कर चुकोगे, तब उस समय सिद्धजन नारियों के संग वीणा लेकर षड़ानन (स्वामिकार्तिकेय) की पूजा को आते हुए जल की बूँदें गिरने के डर से* तुम्हारा मार्ग छोड़ देंगे, फिर तुम थोड़ी दूर जाकर गवालंभ यज्ञांतरज्ञ और भूमि पर प्रवाह-रूप से परिणत,-महाराज रन्तिदेव की यश-रूपी चर्मण्यवती नदी का सत्कार करते हुए उस स्थान में उतरना ॥ ४५ ॥ हे पयोद ! शार्ङ्गी भगवान् विष्णु की नाईं प्रभायुक्त तुम्हारे जल-ग्रहण के लिये उतरने पर चर्मण्यवती धारा बड़ी होने पर भी छोटी दीखेगी। उस काल सिद्ध गन्धर्वादि देखेंगे, कि-पृथ्वी के गले में पड़ी हुई, मोतियों की माला के बीच में एक बड़ी इन्द्रनील-मणि सुशोभित हो रही है ॥ ४६ ॥ चर्मण्यवती नदी पार करके, आगे महाराज रन्तिदेव के दशपुर नाम वाले नगर को जाते हुए, तुम उस स्थान में कुन्द-पुष्प के आस-पास घूमते भौंरों की शोभा को हरने वाले पलकों को उठाकर-'जो स्त्रियों के नेत्र विल से हैं,' उन की इच्छाओं का पूर्ण करना ॥ ४७ ॥ इस के उपरांत; तुम ब्रह्मावर्त्त-देश में छाया रूप से प्रवेश करते हुए, कौरव,-पाण्डवों के युद्ध को आज भी सूचित करने वाले कुरु-क्षेत्र को चले जाना। जिस स्थान में गाण्डीव धनुष वाले अर्जुन ने हजारों बाणों से राजाओंके मस्तक इस प्रकार काटे थे, कि-जिस प्रकार तुम जलकी धाराओं से कमलों को काट डालते हो ॥ ४८ ॥ हे सौम्य ! कौरव,-पाण्डवों के स्नेह-वश मध्यस्थ-भाव से युद्ध-'वमुख बलराम जी ने अपनी परम-प्यारी रेवती के नेत्र प्रतिबिम्बित करने वाली (एक-साथ बैठ कर पीने से) मद्य का त्याग कर, जिस सरस्वती नदी का जल सेवन किया था, उसी जल का सेवन करके काले शरीर वाले तुम भी भीतर से शुद्ध हो जाओगे ॥ ४९ ॥ उस कुरुक्षेत्र से चल कर तुम कनखल के पास हिमालय से निकली,-'सगर के सन्तानों को स्वर्ग प्राप्त कराने की सोपान (सीढ़ी) स्वरूप जन्हु की कन्या' गङ्गा पर पहुंचना;—जिस गङ्गा

* बाजे पर पानी गिरने से शब्द ठीक नहीं होता।

ने पार्वती के मुख की टेढ़ी भौंहों को अपने फैनों से मानो हँस कर तरंग-रूपी हाथों से चन्द्रमा के सहारे श्री महादेव जी के जटा जूट का ग्रहण कर लिया है ॥ ५० ॥ हे जलधर ! जैसे कोई दिशा का हाथी आधा शरीर आकाश में और आधा नीचे झुका कर जल पान में प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार तुम यदि स्फटिक-शुभ्र गंगाजल के पीने का कल्पना करोगे, तो तुम्हारी छाया धारा में पड़ने से वह प्रयाग के अतिरिक्त भी गंगा-यमुना के सगम की मनोहर शोभा होगी ॥ ५१ ॥ बैठे हुए कस्तूरी मृगों की नाभि की गंध से जिस की शिलाएँ सुवासित हो रही हैं, गंगा जी के प्रकट-कर्त्ता उस हिम-तुल्य स्फेद हिमालय के शिखर पर विश्राम के लिये बैठने पर श्रीमहादेव जी के श्वेत बैल के सींग पर लगी कीचड़ की समान तुम शोभा को प्राप्त होंगे ॥ ५२ ॥ हे जलद ! यदि हिमालय में पवन चलने पर देवदारु के पेड़ों की रगड़ से दावाग्नि उत्पन्न होकर अपनी चिनगारियों द्वारा सुरा-गऊ के केशों को दग्ध करने लगे, तो तुम उसको अपनी जल-धारा से बुझा देना। क्योंकि-श्रेष्ठ जनों की सम्पत्ति का फल यही है, कि-दुःखी पुरुषों का दुःख छुड़ावें ॥ ५३ ॥ हिमालय पर शरभ नामक आठ पैर वाले मृग तुम्हारी गर्जना को न सह कर क्रोध के वशीभूत हो, अपने अंगों को तोड़ने-मरोड़ने-कूद-फाँद कर तुम्हें उल्लङ्घन करने का यत्न करेंगे, अतएव तुम उस काल उन पर भांति भांति पत्थरों (ओलों) की वर्षा करके उनको इधर-उधर कर देना। क्योंकि-निष्फल कामों में चेष्टा करने वाले समस्त प्राणी ही तिरस्कृत होते हैं; अर्थात् उनका कोई भी आदर मान नहीं करता ॥ ५४ ॥ वहाँ हिमाचल की एक शिला पर-'सिद्ध जनों द्वारा अर्चित' श्री महादेव जी के चरण-चिह्न की तुम भी भक्ति-भाव द्वारा परिक्रमा करना। जिस चरण चिह्न के देखने से श्रद्धा-युक्त मनुष्य पाप रहित होकर शरीर छोड़ने के पीछे श्री महादेव जी का लोक पाने के अधिकारी होते हैं ॥५५॥ हे जलद ! बाँसों को पवन से भरे हुए कीचक मधुर शब्द कर रहे हैं और उसी स्थान में किन्नरों की नारियाँ भी एकत्र संमिलित होकर त्रिपुर-विजय के गान गा रही हैं, यदि उस समय पहाड़ की गुफाओं में गुंजारित तुम्हारी गर्जना-'मृदङ्ग की नाईं' शब्द करे, तो श्री महादेव जी के संगीत का अंग पूर्ण हो जाय ॥ ५६ ॥ हिमाचल के आस पास देखने योग्य स्थानों का दर्शन करके हंसों के मान-सरोवर जाने का मार्ग और भार्गव परशुराम जी का कीर्ति-स्वरूप-जो क्रौंचरन्ध्र है, उस मार्ग द्वारा "दैत्यराज बलि को छलते हुए, भगवान विष्णु के श्याम-चरण के तुल्य

लम्बे (छिद्र में घुसकर आने के लिये) और तिरछे होकर तुम उत्तर दिशा को चले जाना ॥ ५७ ॥ अनन्तर क्रौंच-पर्वत से आगे बढ़कर दशमुख वाले रावण की भुजाओं से हिलाये जाने वाले तथा देवाङ्गनाओं के दर्पण-स्वरूप कैलास-पर्वत पर जाना,--"जो कुमुद की नाईं श्वेत शिखरों द्वारा आकाश में फैल कर प्रतिदिन एकत्रित हुए श्री महादेव जी के अट्टहास की समान मानों अवस्थित हैं' ॥ ५८ ॥ हे पयोद ! तुम चिकने अञ्जन की समान कृष्ण-वर्ण (काले) हो और कैलास तत्काल काटे हुए हाथी के दाँत की नाईं गोरा है,—जिस समय कैलास-पर्वत के शिखर पर तुम पहुंचोगे, तो 'बलराम जी के वस्त्र की नाईं' कैलास की सुन्दरता टकटकी लगाकर देखनेके योग्य होगी ॥ ५६ ॥ तिस क्रीड़ा-पर्वत पर सर्प-कङ्कण निकाले हुए श्रीमहादेवजी का हाथ थामेहुए विचरती हुई, भवानी पार्वतीजी जिस समय विचार करनेके लिये मणि-शिखरों पर जानेको तैयार हों तब तुम अपने जल के प्रवाह को भीतर रोक कर उनके चढने के लिये अपने शरीर को सीढ़ी की नाईं बना देना ॥ ६० ॥ हे सखे ! उस पर्वत पर देवताओं की स्त्रियाँ जब अपने कंकणों की नोकों से तुम्हारे छेद करेंगी तो उस काल पिचकारी के समान धार निकलेगी। तब गर्मी के कारण प्रिय लगने से यदि उन स्त्रियों से नहीं छूट सको, तो अत्यन्त कड़क के साथ गर्जना करके उनको भयभीत करना ॥ ६१ ॥ हे जलद ! तुम सोने के कमल उत्पन्न करने वाले मानसरोवर के जल को ग्रहण करते और ऐरावत हाथी को मुख-वस्त्र का आनन्द देते तथा जिस प्रकार मन्द समीरण महीन वस्त्रों को हिलाता है, उसी प्रकार कल्पवृक्ष के कोमल पत्तों को हिलाते, भाँति भाँति की क्रीड़ा करते हुए कैलास पर्वत पर अच्छी तरह से विहार करना ॥ ६२ ॥ प्रियजनों की गोद में कामिनी स्त्रियाँ जिस प्रकार बैठा करती हैं-उसी प्रकार कैलास के ऊँचे भाग में अवस्थित अथच जिसका गंगा स्वरूप वस्त्र सरक गया है, अर्थात् जिस स्थान से गंगा जी का प्रवाह बह चला है, उस अलकापुरी का दर्शन करके तुम न पहिचानो-यह नहीं है, अवश्य जान जाओगे। जो अलका-पुरी तुम्हारे समय में (वर्षा काल में) जलकी बूँदें टपकाते हुए मेघों को (इस प्रकार धारण करती है कि जैसे कामिनी स्त्रियाँ मोतियों द्वारा गूँथी हुई वेणी को धारण किया करती हैं ॥ ६३ ॥

श्री महाकवि कालिदास विरचित मेघदूत काव्य के
पूर्व-मेघ का भाषानुवाद समाप्त।

उत्तर मेघः ।

प्रारम्भ में तेरह श्लोकों के द्वारा अलकापुरी का वर्णन किया जाता है।

हे घन ! जिस स्थान में सुन्दर नारियाँ रहती हैं, जो शोभायमान चित्रों के द्वारा विभूषित हैं, जहाँ नृत्य और गान के संग मृदंग बजते हैं; जिस स्थान की पृथ्वी रत्नों से जड़ित है, जिसकी चोटी आकाश को छूने वाली है--ऐसी अलकापुरी में देवताओं के मंदिर तुम्हारी बराबरी करने में समर्थ हैं, अर्थात्–तुम्हारे देह के बिजली- इन्द्र धनुष--गर्जना--जल और ऊंचापन आदि विशेष धर्मों का देव मंदिर--सुंदर स्त्री- चित्र विचित्र रंग आदि पदार्थों से समानता रखते हैं ॥ १ ॥ जिस अलकापुरी की नारियां हाथ में नील कमल धारण किये रहती हैं, बालों में कुन्द पुष्पों को खोंचती हैं–जिनके मुखों की शोभा लोध के रज से श्वेतता धारण करती है, और वेणी में कुरवक * कानों में सुन्दर शिरीष पुष्प-सिर पर कदम्ब-पुष्प को धारण करती हैं इस भांति वहां छै ऋतुएं निरन्तर निवास करती हैं ॥ २ ॥ जिस स्थान के पेड़ मतवाले भौंरों से गूंजे हुए निरंतर फूलते हैं, पुष्करिणियों में निरंतर कमल फूलने से उसमें निवास करने वाले हंसों की कतार उसकी मेखला सा ज्ञात होता है। पाले गये मोरों के पुच्छ सदा तेजस्वी रहते हैं और वे सदा ऊँचा सिर करके बातें किया करते हैं, और जिस स्थान में निरंतर चाँदना रहने से रात आनन्द देने वाली होती है ॥ ३ ॥ जिस स्थान में यक्षों की आँखों से आनंद के अतिरिक्त दूसरे कारण से आँसू नहीं निकला करते हैं–प्रियजनों के समागम से शान्त होनेवाले काम ज्वर के अतिरिक्त दूसरा ताप नहीं है। प्रेम कलह के अतिरिक्त वियोग का दुःख नहीं है और जिस स्थान में युवा अवस्था के अतिरिक्त दूसरी अवस्था नहीं है, अर्थात्–बुढ़ापा नहीं है ॥ ४ ॥ जिस अलकापुरी में स्फटिक मय और नक्षत्र के प्रतिबिम्ब रूपी पुष्पों से परिष्कृत सुशोभित भवनों में–काम सुखदायक मद्य जब तुम्हारी ध्वनि के समान ध्वनि पुष्कर अर्थात् बाजे के मुख में धीरे से व्याप्त होता है,

---

* कौरैया का फूल।

तब आनन्द पूर्वक पान करते हैं॥ ५॥ जिस अलकापुरी में मन्दाकिनी के जल द्वारा ठंडी पवन से सेवित तथा कल्पतरु के तले गरमी को शान्त करती हुई सुन्दर यक्ष कन्याएँ तट में सोने की बालू की मुट्ठी में रत्न छिपाकर फिर उसके खोजने की क्रीड़ा को परस्पर कर रही हैं। जिस अलकापुरी में चंचल हाथ वाले कामीजन नारियों के संग भोग विलास में निरत हो कर नीवी बन्धन छूट जाने पर ढीले वस्त्र को प्रेम पूर्वक खैंचते हैं तो नारियां लाज के वशीभूत हो किरणों द्वारा प्रकाशित रत्न स्वरूप दीपकों पर कुंकुम तथा गुलाल आदि की मुट्ठियां (बुझाने के लिये) फेंका करती हैं, पर उनका फेंकना सफल नहीं होता ॥७॥ हे घन! वायुनेता से सतमंजिले स्थानों के भीतर पहुंचाये हुए तुम उस थान के चित्रों को अपनी जल-कणिकाओं द्वारा बिगाड़ कर भय-भीत से झरोखों के मार्ग से धुएँ की नाई स्वरूप करके पृथक् पृथक् होकर निकल जाते हो ॥ ८ ॥ हे पयोद! जिस अलकापुरी में आधीरात के समय विमल चंद्र किरणों के संयोग द्वारा छज्जों में जड़ी हुई चंद्रकांत मणि से पानी टपक-टपक कर प्रियजनों के गाढ़ आलिङ्गन से उत्पन्न नारियों के देह खेद को शांत किया करते हैं ॥ ९ ॥ जिस अलकापुरी में अटूट सम्पदा युक्त अप्सरा स्वरूप वेश्याओं के संग विहार करते हुए कामी पुरुष नित्य मीठे और ऊँचे स्वरों द्वारा कुबेर का यशगान करनेवाले किन्नरों के सहित वैभ्राज नामक बगीचे में विलास किया करते हैं ॥ १० ॥ अलकापुरी में कामिनी नारियों के जल्दी चलने के कारण, बेणियों से गिरे कल्प वृक्ष के फूलों से—कमल वृक्ष के झड़े पत्तों से—कानों से गिरे सुवर्ण-कमलों से—हार से टूट कर गिरे मोतियों से—प्रातःकाल उनका रातमें अपने प्रेमीजनों के समीप जाने का रास्ता मालूम होजाया करता है ॥ ११ ॥ जिस स्थान पर कुबेर के सखा श्री महादेवजी वास किया करते हैं, इस डरसे कामदेव अपने भ्रमरों की प्रत्यंचा वाले धनुष को प्रायः धारण नहीं करता; पर वहाँ कामीजनों पर कामदेव के व्यापार—चतुर ललनाओं के सभ्रूभंग कटाक्षों द्वारा ही सिद्ध होजाते हैं ॥ १२ ॥ जिस अलकापुरी में चित्र विचित्र वस्त्र—आँखोंमें कटाक्ष उत्पन्न करने वाला मद्य, कोमल पत्रों के सहित पुष्प- भाँति-भाँति के गहने--पैरों में लगाने का महावर आदि नारियों को अलंकृत करने वाले समस्त पदार्थ एक मात्र कल्पवृक्ष ही उत्पन्न किया करता है ॥ १३ ॥

[अलकापुरी का इस भाँति वर्णन करके अपने स्थान के चिन्ह बताता है]

इस स्थान में धनपति (कुबेर) के स्थान से उत्तर इन्द्र-धनुष की नाईं शाभायमान बाहिरी द्वार (दरवाजे) वाला मेरा घर है कि जिसके धोरे हाथों से प्राप्त करने योग्य फूलों के गुच्छों से नमा हुआ-मेरी पत्नी से पुत्र के तुल्य पोषण किया हुआ—एक छोटा सा कल्पवृक्ष है ॥ १४ ॥ मेरे घर में एक वापी है-जिसके सोपान (सीढ़ियाँ) नीलमणि द्वारा जड़े हुए हैं तथा चिकने वैदूर्यमणि के लाल दण्डों वाले खिले कमलों द्वारा परिपूर्ण होरहे हैं—उसके पानी में रहनेवाले हंस तुमको देखकर दुःख-हीन होकर निकट ही वर्त्तमान मानसरोवर को याद नहीं करेंगे ॥ १५ ॥ उस वापी के तट पर एक इन्द्र नीलमणि का क्रीड़ा पर्वत विद्यमान है, जो कि चौतर्फा से कनक-कदली लगी रहने के कारण देखने में बहुत ही शोभायमान है। हे सखे! तुम भी उस मेरी प्यारी के प्रिय पर्वत की सदृश ही हो। तुम्हारे समीप बिजली चमकने पर मैं प्रेम से कातर मन होकर तुम को को वह पर्वत ही स्मरण करता हूं। तात्पर्य-क्रीड़ा पर्वत इन्द्र नील मणियों द्वारा जड़ित है, अतएव मेघ की समान है और कनक-कदली बिजली की नाईं है ॥ १६ ॥ तिस क्रीड़ा पर्वत पर कुरबक वृक्षों के बाड़े वाले माधवी कुञ्ज के पास एक लाल अशोक और दूसरा बकुल का पेड़ है-उनमें अशोक मेरे सं। मेरी प्यारी के वाम-पाद ताड़न का इच्छुक है और कुल उसके मदिरा के कुल्ले का अभिलाषी है—इसी उपाय से दोनों फूलते हैं, यह कवि की नाईं है ॥ १७ ॥ उन दोनों पेड़ों के मध्यभाग में नूतन बाँस की समान हरित मरकत मणि की वेदी विद्यमान है-जिस का ऊपरी भाग स्फटिक निर्मित है। उस पर पक्षियों के बैठने की एक स्वर्ण-यष्टि लगरही है। मेरी प्यारी द्वारा कङ्कणों की झनकार से मधुर तालियाँ बजाकर नचाया गया तुम्हारा सखा मोर उस यष्टि पर संध्या समय में बैठता है ॥ १८ ॥ हे साधो! (चतुर) इन कहे हुए चिन्ह (लक्षणों) द्वारा और दरवाजे के दोनों तरफ शङ्ख तथा पद्म नामक निधि के चित्रों को देखकर मेरे विरह से उत्सवादि-हीन प्रभा रहित मेरे घरको पहिचान लेना-कारण, सूर्य छिप जाने के पीछे कमल अपनी पूरी सुन्दरता को धारण नहीं किया करता है ॥ १९ ॥ हे जलधर! मेरे गृह में शीघ्रता से प्रवेश करने के निमित्त तुम हाथी के बालक की नाईं रूप धारकर उपरोक्त क्रीड़ा पर्वत पर अवस्थित होकर जुगनू की सदृश कुछेक चमकीली अपनी बिजली स्वरूप दृष्टि को मेरे घर के भीतर डालना ॥ २० ॥ मेरी स्त्री शरीर से पतली—तीक्ष्ण दाँतों वाली—पके बिम्बाफल के समान होठ वाली—पतली कमर वाली-हिरनों की नाईं चञ्चल आँखों वाली—

गंभीर नाभि (टूँडी) वाली. नितम्ब के बोझ से धीरे२ चलने वाली और स्तनों के बोझ से थोड़ी झुकी हुई है। स्त्रियों की सृष्टि में वह मानों ब्रह्माजी की पहली ही रचना है—सारांश वह लोकोत्तर सुन्दरी है ॥ २१ ॥ उसको वियोग के हेतु अकेली चक्रवाकी के सदृश कम बोलने वाली—मेरे दूसरे प्राण को ही समझना। उत्कट उत्कण्ठा से वह इन वियोग के दिनों को व्यतीत करती हुई। वर्फ के पड़ने से कमलिनी रूपान्तर (किसी दूसरे ही रूप) को प्राप्त होगई होगी ॥ २२ ॥ हे पयोद ! मेरे विरह में रोदन करते-करते आँखें सूज गई हैं—गरम-गरम श्वाँस लेने के कारण होठों का रंग बदल गया है, चिन्ता के वशीभूत हथेली पर रक्खा और बिखरे हुए केश उस पर गिरने से पूरा न दिखाई देता हुआ प्यारी का मुख तुम्हारे घेर लेने पर चन्द्रमा की नाईं मलीन कांति को धारण करता होगा ॥ २३ ॥ हे घन ! मेरी वह प्यारी मेरे शीघ्र मिलने के लिये देवताओं की पूजा में व्यग्र अथवा वियोग से कृश मेरे देह का चित्र अनुमान से लिखती या मीठा बोलने वाली पींजरे में बैठी मैना से पूछती है कि–हे मैना ! क्या तुमको अपने पालने वाले का स्मरण है ? क्योंकि तू उस को प्यारी थी -इस भाँति करती हुई उसको तुम देखोगे ॥ २४ ॥ हे सौम्य ! मैले कपड़े पहरे–गोदी में वीन रखकर मेरे नाम का गाना ऊंचे कंठ से गाने की कामना करती हुई–मेरी याद से आँसुओं द्वारा भीगी वीणा नहीं बजने के कारण उसको हाथसे पोंछती और अपने आपकी हुई मूर्छना * भूल जाती हुई तुम देखोगे ॥ २५ ॥ वा-मेरे विरह के शेष महीनों की गणना करने के वास्ते देहली पर फूलों को गिन-गिन कर रखती किम्वा मेरे संभोग सुख का हृदय में अनुभव करती तुम देखोगे। कारण, प्रियजनों के विरह में अकसर नारियाँ यही सब विनोद (तमाशे) करती रहती हैं ॥ २६ ॥ हे सखे ! तुम्हारी सखी को मेरा विरह [वियोग] जिस प्रकार रात में पीड़ा देता होगा, उस प्रकार दिन में नहीं। क्योंकि दिनके समय मन व्यापारों में संलग्न रहता होगा। अतएव आधी रात में भूमि पर पड़ी अथच जागती हुई मेरे संदेशों के द्वारा पूरा सुख देनेके लिये तुम महल के झरोखे में बैठ कर देखना ॥ २७ ॥ मन के कष्ट से दुबली–विरह–कालोचित सेज पर एक ही करवट से शयन करती हुई–उदयाचल गत चन्द्रमा की कला के समान क्षीण शरीर मेरी प्यारी जो रात मेरे संग इच्छित भोग विलासों द्वारा क्षण मात्र सी बिताती थी–इस समय उसी वियोगसे बड़ी रातको

* स्वर का चढ़ाव उतार।

उष्णाश्रु गिरा कर बिताती हुई तुम देखोगे ॥ २८ ॥ झरोखों द्वारा आती हुई शीतल-चन्द्र किरण पूर्ववत् आनन्द दायक होगी-इस ध्यान से उधर लगाये और फिर वियोग वशात् असह्य होने से हटाये अश्रु पूर्ण नयनों को पलकों द्वारा ढकती हुई मेघाच्छन्न दिनमें जिस प्रकार स्थल कमलिनी अधखिली रहती है-उसी प्रकार तुम प्यारी को देखोगे ॥ २९ ॥ बाल काढ़ने आदि के बिना केवल पवित्र जल द्वारा नहाने के कारण रूखे गालों पर लटकते हुए बालों को-अधर-पल्लव को दुःख दायक श्वासों द्वारा हिलाती हुई स्वप्नमें ही संयोग हो-इस कामना से अश्रु-पूर्ण नेत्रों में नींद को चाहती हुई तुम देखोगे ॥ ३० ॥ विरह के दिन फूलों को दूर करके बाँधी हुई तथा शापान्त के पीछे दुःख-शून्य होकर मेरे द्वारा खोल कर बाँधा जाने वाली रूखी वेणी को बढ़े हुए नाखून वाले हाथों द्वारा गालों पर से बराबर हटाती हुई प्यारी को तुम देखोगे ॥ ३१ ॥ उसका गहनों से सूना अत्यन्त दुःख से सेज पर पड़ा अतीव कोमल देह देख कर तुम अवश्य ही नूतन जलरूपी आसुओं को गिराओगे। कारण कोमल हृदय वाला दयावान् होता है ॥ ३२ ॥ हे जलधर! मैं जानता हूँ कि-तुम्हारी सखा का चित्त मेरे निमित्त प्रेम से भरा हुआ होगा-इस वास्ते पहले विरह में उसकी पूर्वोक्त दशा का मैं तर्क करता हूँ। मेरा भाग्यवान् होना मुझको वाचाल नहीं कर रहा है। हे भाई! मैंने जो कुछ कहा है—वह सब तुम शीघ्र ही देखोगे ॥ ३३ ॥ बालों द्वारा ढका-अंजन नहीं लगाने से रूखा और मद्य त्याग देने से जो भ्रू विलास भूल गई है ऐसी मृगाक्षी की बाईं आँख तुम्हारे समीप में पहुँचने पर फड़कने लगेगी। तब मैं समझता हूँ कि पानी में मछलियों के चलने से काँपते हुए नील कमलों की समान शोभा को पावेगी ॥ ३४ ॥ मेरे नाखून के चिह्नों से शून्य-मोतियों का कटि-भूषण अर्थात् करधनी भाग्य से जिसकी दूर होगई है और संभोग के उपरान्त मेरे हाथों द्वारा दाबने योग्य नये केलेके थंभ की नाईं गौर वर्ण उसकी वाम जंघा तुम्हारे पहुंचने पर फड़कने लगेगी ॥ ३५ ॥ हे जलद! यदि तुम्हारे पहुँचने पर वह नींद के सुख का अनुभव कर रही हो-तो एक पहर तक चुपचाप उसके पीछे की ओर बाट देखना। कारण यदि वह किसी भाँति स्वप्न में समागम को प्राप्त हुई हो, तो उसकी भुजलता द्वारा मेरे गले में बँधी गाँठ नींद टूट जाने पर अकस्मात् छूट न जाय ३६। पानी की बूँदों द्वारा-ठंढी पवन द्वारा-चमेली के फूल की नाईं सुकुमारी प्यारी को जगाकर उसकी झरोखे में तुम्हारी ओर एकाग्र दृष्टि होने पर

बिजली को भीतर रख कर धीरज से अपनी गर्जना रूपी शब्दों द्वारा मानिनी से वार्त्तालाप करने का प्रस्ताव करना ॥ ३७ ॥ हे सौभाग्यवती ! तुम्हारे स्वामी का प्यारा सखा मैं मेघ—उनके संदेशे को हृदय में धारण करके तुम्हारे निकट आया हूँ—यह तुम जानलो। मैं केवल सँदेशा पहुँचाने वाला ही नहीं हूँ—वरन नारियों की वेणी खोलने के निमित्त उत्सुक श्रान्त-पथिक (थके मुसाफिर) जनों को अपने अपने घर जाने के अर्थ गंभीर और प्यारे शब्दों द्वारा शीघ्रता कराने वाला भी हूँ ॥ ३८ ॥ तुम्हारे इस भाँति कहने पर जानकी अपने स्वामी का विश्वासी दूत हनुमान समझ कर उनकी बातें सुनने के लिये जिस तरह उत्सुक हुई थीं—तिसी प्रकार मेरी प्यारी आनंदित मन द्वारा सत्कार पूर्वक तुम्हारी ओर निहार कर सँदेशे को सावधानी से सुनेगी। कारण, मित्र के मुख द्वारा सुना हुआ समाचार नारियों का प्रत्यक्ष से कम सुख दायक नहीं होता। ॥ ३९ ॥ हे आयुष्मान् मेघ ! मेरी विनती मानकर अपने आप का परोपकार द्वारा धन्य (कृतार्थ) करने के लिये तुम जाकर उस से इस भाँति कहना कि-हे अबले ! तुम्हारा विरही प्यारा पति रामगिरि के आश्रम में सुख से है। तुम्हारा कुशल समाचार पूछता है—कारण अचानक आपत्ति में गिर जाने वाले प्राणियों से प्रथम कुशल पूछना ही ठीक होता है ॥ ४० ॥ प्रतिकूल दैवगति से आने में अशक्त—दूर देश में रहने वाला वह तुम्हारा सहचर अपनी अनुभूत दुःखावस्था तुम्हारे विषय में भी वैसा ही मानता है अर्थात विरह के कष्ट से कृश (दुर्बल) कामज्वर द्वारा पीड़ित-आँखें गरम आँसुओं से परिपूर्ण मिलने का उत्कण्ठन और लम्बे लम्बे गरम श्वाँस लेती हुई तुमको जानता है और इस भाँति तुम्हारे देह के संग अपने मनोरथों का कल्पना किया करता है ॥ ४१ ॥ हे अबले ! तुम्हारी सखियों के सम्मुख जो कहने लायक बात भी मुख चुम्बन के लालच से कान में कहने के लिये उत्सुक होता था—उस प्यारे भर्त्ता का वार्त्तालाप दूर होने के कारण तुम्हें सुनने को नहीं मिल सकता और उसको तुम दर्शन भी नहीं कर सकती—अतएव उत्कण्ठ भरे शब्दों से मेरे द्वारा यह वृत्तांत कहना है ॥ ४२ ॥ हे सुन्दर ! प्रियङ्गु लता में तुम्हारा सुकुमार देह चकित हरिणी में देखना—चन्द्र में मुख की कान्ति, मोरों की पूँछ में केशपाश और नदी की छोटी तरंगों में भ्रूविलास की कल्पना किया करता हूं तथापि हे चण्डि ! मुझको किसी वस्तु में भी तुम्हारी पूरी समानता नहीं मिलती ॥ ४३ ॥ हे प्यारी ! प्रणय—कुपित तुम्हारे चित्र को गेरू द्वारा पत्थर की शिला में लिख कर और अपनपे को, तुम्हारे पैरों में

(मनाने को) गिरा हुआ जब लिखने की इच्छा करता हूं, तब आँसुओं के द्वारा मेरी दृष्टि रुकजाती है । हा विधाता की निठुरता ! उसे चित्र में भी हम दोनों का संग नहीं सहन होता ॥ ४४ ॥ किसी भाँति स्वप्न में तुम्हारा साक्षात् (भेंट) होने पर तुम्हारे गाढ़ालिंगन के निमित्त आकाश में हाथ उठाये हुए मुझे देख कर वन के देवता मोती की नाईं आँसुओं की बड़ी बड़ी बूँदे पेड़ों के कोमल पत्तों पर अनेकों बार अवश्य ही गिराते होंगे ॥ ४५ ॥ हे गुणवती ! देवदारु वृक्ष के कोमल पत्तों को तुरन्त तोड़ देने से झरते हुए उसके द्वारा सुगन्धित हिमालय के पवन दक्षिण मार्ग से चल रहे हैं--इन पवनों ने तुम्हारे अंग को अवश्य छुआ होगा--यही समझ कर मैं इनका सेवन करता हूं ॥ ४६ ॥ रात के तीनों पहर (क्षण) समान किस प्रकार हों तथा दिन भी सर्वकाल में ताप-हीन किस भाँति से हो, हे चंचल आँखों वाली ! इस तरह अपने मनोरथों को नहीं प्राप्त होने वाला मेरा मन वियोग की प्रबल वेदना से अनाथ कर दिया गया ॥ ४७ ॥ हे कल्याणि ! अनेक विचार करके मैं अत्यन्त दुःख से अपनपे को स्थिर रखता हूँ—तुम भी बहुत दुःखीमत होना। किसी को भी सर्वदा सुख या दुःख नहीं रहता । पहिये के चक्कर की नाईं सब ही अवस्थायें नीचे ऊपर आया जाया करती हैं ॥ ४८ ॥ देव उठनी एका-दशी अर्थात् कार्त्तिक शुक्ल एकादशी के दिन मेरे शाप का अन्त होगा—इस वास्ते किसी भाँति नेत्र मींच कर इन शेष चार मास को भी व्यतीत करो । तत्पश्चात् वियोग के समय मनमें विचारे हुए समस्त मनोरथों को शरत्काल की चाँदनी रात में इच्छानुसार भोग करेंगे ॥ ४९ ॥ हे प्यारी ! मेरे द्वारा तुम्हारे स्वामी ने फिर भी कहा है कि तुम एक दिन मेरे गले से चिपटी हुई सेज पर सो रही थीं—उस काल किसी कारण अकस्मात् जोर से रोती हुईं जाग उठीं थीं । तब मेरे बारम्बार रोने का कारण पूछने पर तुमने कुछेक हँसकर कहा था कि अरे कपटी ! मैंने तुझको स्वप्न में किसी पर स्त्री से सहवास (भोग) करते हुए देखा है । ॥ ५० ॥ हे नीले कमल की समान आँखों वाली ! इस पहचान के देने से जान लेना कि—मैं कुशल से हूं । लोकापवाद के द्वारा मेरे जीवन में संशय मत करना और यह भी मत समझ बैठना कि बहुत दिन बीत जाने पर प्रेम कम होजाता है, वरन मनमें चाहे विषयों के उपभोग नहीं होने से प्रेम-रस वृद्धि को प्राप्त होकर इकट्ठा राशि लगजाता है ॥ ५१ ॥ इस भाँति प्रथम शोक द्वारा व्याकुल अपनी सखी को आश्वासन करके अर्थात् उसको समझा-बुझा धीरज देकर शीघ्र ही कैलास पर्वत से लौट

कर पहचान के संग भेजे हुए उसके कुशल-समाचार द्वारा प्रातःकालीन कुन्द पुष्प की नाईं दुर्बल मेरे जीवन की भी रक्षा करो ॥ ५२ ॥ हे सौम्य ! तुमने क्या इस बन्धु—कार्य को करने का निश्चय कर लिया है ? इसका उत्तर मिलने पर मैं तुम्हारी गंभीरता नहीं समझता । तुम विना ही गर्जना किये याचना करने पर चातकों को जल प्रदान करते हो । कारण सज्जनों द्वारा प्रार्थित कार्य का साधन ही उत्तर हुआ करता है ॥ ५३ ॥ हे जलधर ! तुम मित्रता द्वारा-वियोग-दुःख द्वारा अथवा मेरे ऊपर दया भाव द्वारा मेरी प्रिय-प्रार्थना को पूर्ण करने के पश्चात् वर्षा काल में शोभा युक्त होकर अपने इच्छित देशों में विचरण करना और विद्युल्लता से क्षण भर के लिये भी तुम्हारा वियोग न हो । अर्थात् मेरे सदृश कभी वियोगी न हो ।

इति श्री महाकवि कालिदास कृत मेघदूत काव्य के
उत्तर मेघ का भाषानुवाद समाप्त ।

* श्री गणेशायनमः *

ऋतु संहार

(ग्रीष्मवर्णनम्)

महाकवि श्री कालिदास जी इच्छित ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के अर्थ शिष्टाचरित वस्तु निर्देशात्मक मंगलाचरण करते हुए किसी नायक नायिका के सम्वाद से प्रारम्भ में ग्रीष्म-काल वर्णन रूप कथा कहते हैं।

यथा;—

प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमाः
सदावगाहक्षत वारिसंचयः।
दिनान्तरम्योऽभ्युपशान्तमन्मथो
निदाघकालोऽयमुपागतःप्रिये ॥ १ ॥

जिस समय सूर्य की तेजी प्रचण्ड (तीक्ष्ण) होती है, मनुष्य चन्द्रमा का प्रकाश पाना चाहते हैं, निरन्तर नहाने से जिस समय ताल तलैयों में जल कम रह जाता है, संध्या काल अत्यन्त मनोहर प्रतीत होता है, और-काम केलि की इच्छा जिस समय शान्ति सी होजाती है; हे प्यारी ! यह वही ग्रीष्मकाल आनकर उपस्थित हुआ है * ॥ १ ॥ इस ग्रीष्मकाल में चन्द्रमयी (उजाली) रात्रि, विचित्र फुव्वारे दार घर, भाँति भाँति की मणि, * और सरस चन्दन-इन पदार्थों के व्यवहार करने से मनुष्य आनन्दित हुआ करते हैं ॥ २ ॥ विलासी जन इस ग्रीष्मकाल की रातों में सुगन्धि पूर्ण अटारियों में प्यारी के मुख-पवन से जो कुछ मधु कम्पायमान होता है, उसी मद और कामोद्दीपक ताल-लयादि युक्त गीतादि का उपभोग किया करते हैं ॥ ३ ॥ इस ग्रीष्म-काल में स्त्रियाँ बारीक कपड़े पहन कर-नितम्बों में तगड़ी पहन, छाती में चन्दन लगाय और उसके ऊपर हार पहन नहाने के समय भाँति भाँति के सुगन्धित-पदार्थों द्वारा केश-सुवासित करके कामीजनों की गरमी शान्त किया करती हैं ॥ ४ ॥ इस ग्रीष्म-काल में अच्छे नितम्ब (जंघा) वाली नारियाँ महावर वाले पैरों में पायजेब पहन कर जब चलती हैं—तब उन पाजेबों में ठीक हंस के

---

* इन श्लोकों में छन्द वंशस्थ है।

* चन्द्रकान्तादि।

शब्द सरीखा शब्द हुआ करता है और उनके एक एक पग पग पर मनुष्यों के मन में विलास का भाव जागरित होजाता है ॥ ५ ॥ चन्दन के लेपन से युक्त सुगन्धित शीतल दोनों पयोधर (स्तन) हार से विभूषित छाती और सोने के चन्द्रहार द्वारा अलंकृत नितम्ब-देश किसके हृदय में उत्कण्ठा का आविर्भाव नहीं करता है ? ॥ ६ ॥ इस ग्रीष्म-काल में अंगों के सब जोड़ों में प्रबल-पसीना निकलने से यौवनवती नारियों ने मोटे कपड़े छोड़कर ऊँची छातियों में बारीक वस्त्र लगा लिये हैं ॥ ७ ॥ इस ग्रीष्म-काल में चन्दन जल के छिड़के हुए पंखे की वायु द्वारा-हारों से अलंकृत स्त्री की छाती छूने से वीणा बाजे के मीठे स्वर के गान से मनुष्यों का निद्रित (शिथिल) विलास-भाव भी जाग जाता है ॥ ८ ॥ इस ग्रीष्मकाल की रात में चन्द्रमा उज्वल अटारियों पर लेटी निद्रा के वशीभूत नारियों के मुख बहुत देर तक देखकर मालूम होता है कि—लाज से विकल हो प्रातः समय सफेद रंग का होगया है ॥ ९ ॥ इस ग्रीष्मकाल में पृथ्वी सूर्य के प्रचण्ड (तीक्ष्ण) ताप से अत्यन्त संतप्त होरही है, असह्य (प्रबल) हवा से धूरि उड़ रही है—प्यारी की वियोगाग्नि में मन चले विदेशी लोग इसकी ओर देखने में भी असमर्थ हैं ॥ १० ॥ हिरणों के झुण्ड तीखी धूप में अतीव तापित और प्यास के मारे शुष्क तालू हो नाले आकाश का सरोवर के धोखे से 'यह वन में पानी है' समझकर इधर उधर को भाग रहे हैं ॥ ११ ॥ विलास भरे मन्द मुसकान के सहित कटाक्ष कर विलास भरी नारियाँ चाँदनीमयी संध्या की रात के समान विदेशियों के मन में शीघ्रता पूर्वक विलास-भाव को उत्तेजित किया करती हैं ॥ १२ ॥ धूप में साँप अतीव संतापित तथा मार्ग की तपती हुई धूरि द्वारा अंग जलायमान-नीचे को फन कर वक्रगति (टेढ़ी चाल) से बार बार श्वाँस लेते हुए मोर के अंक (छाया) में आकर सहारा लिया करते हैं ॥१३॥ बड़ी भारी प्यास के मारे सिंह दुर्बल और विक्रम (पराक्रम) तथा उद्यम हीन होगया है । बार बार श्वाँस लिये जारहा है । मुँह बाये पड़ा हुआ है, जिह्वा लपलपा रही है, केसर के अग्रभाग को कँपा रहा है और हाथियों को पास देख कर भी मारने के लिये नहीं उठता ॥ १४ ॥ एक बूँद भर भी पानी नहीं मिलने पर हाथी सूखे कंठ से धूप द्वारा अतीव तापित और महान् तृषा (प्यास) से विकल होकर पानी की आशा से घूमते हुए फिर रहे हैं—सिंह को देख कर भी नहीं डरते हैं ॥ १५ ॥ आहुति प्रदान करने पर वर्द्धित हुई अनल के सदृश तीक्ष्ण धूप द्वारा मोरों के देह और मन अतीव व्याकुल होरहे हैं।

सर्प ने पास पहुँच कर पूँछ की छाया में मुँह रखलिया है—यह देखकर भी उसका विनाश नहीं करते ॥ १६ ॥ धूप के द्वारा अतीव संतप्त हो वराह (शूकर) अपने मुख की थूथड़ी से उत्तम मोथे से परिपूर्ण सूखी कीचड वाले सरोवर खोद रहे हैं—जिसके द्वारा मालूम होता है कि मानों वे ठंडे होने के निमित्त पाताल में पहुंच कर भी आश्रय ग्रहण करने के अभिलाषी हैं ॥ १७ ॥ अत्यन्त प्रचण्ड सूर्य द्वारा संतापित होकर मैंढक गरम और कीचड़ भरे पानी से कूद ठंडे होने को इच्छा से प्यास से घबराये हुए सर्प के फन रूपी छत्र के नीचे टिकते हैं ॥ १८ ॥ हाथी आपस में एक दूसरे को पं ि त करके सरोवर से निकालने के निमित्त कलह करते करते मृणालों को तोड़ डालते हैं—दुर्दशा में ग्रसितमत्स्य-कुल का संहार करने हैं, भयभोत सारसों को भगाये देते हैं तथा सरोवर की कीचड़ को और भी सुखाये डालते हैं ॥ १६ ॥ सूर्य की किरणों द्वारा साँप के मस्तक की मणि चमकती है। साँप भी अपनी दो जिह्वा से हवा को चाटते हैं, अपने विष के प्रभाव (असर) से सूर्य के ताप द्वारा प्यास से विकल हो मैंढ़कों को नहीं मारते ॥ २० ॥ महिषियों के काँपते हुए मुख के भाग से परिपूर्ण थोड़ी सी लाल रंग वाली जीभ बाहर निकल आई और वह प्यास से विकल होकर ऊपर को मुख उठाय पानी को निहारतो हुई पहाड़ की गुफा से बाहर आती हैं ॥ २१ ॥ प्रज्वलित दावाग्नि से वनके तिनके जलरहे हैं। प्रचण्ड हवा से सूखे पत्ते उड़े जा रहे हैं, समस्त जलाशय (तालाब सरोवर-बावली आदि) सूर्य तापसे सूख रहे हैं, वनकी जिस दिशा पर दृष्टि डालिये, उसी दिशा को देखने से डर लगता है॥ २२ ॥ विहंग कुल (पक्षीगण) पेड़ों के पत्ते अधिक गिर जाने पर भी उन्हीं पेड़ों पर बसेरा कर किसी तरह से जीवन धारण करते हैं। कपिकुल (बन्दरगण) थक कर पहाड़ों की निकुंजों में चले जाते हैं। चमर गाय जल को इच्छा किये इधर उधर को भ्रमती फिरती है। कुटिलताहीन शरभ गण * कूपमें से भी पानी लेता है॥ २३ ॥ नये खिले हुए फूल तथा विमल सिन्दूर की नाईं उज्ज्वल अग्नि प्रचण्ड वायु के तेज द्वारा और भी महा तेजस्वी हो वृक्ष लतादि का अग्रभाग आलिंगन करने के निमित्त विकल हो भूमि को चौतर्फा से भस्म किये डालता है ॥२४॥ दावाग्नि पहाड़ की कन्दराओं में वायु द्वारा बढ़ती हुई जलती है और सूखे हुए बांसी के वन में बड़े

---

* आठ पैर वाले जन्तुओं का समूह।

भारी शब्द से प्रविष्ट होती है, क्षण मात्र में तृणों की राशि (तिनकों के ढेर) में जल उठ कर चौतर्फा को फैल जाती है तथा मृगों के शरीर प्रान्त में लगकर मृगोंको विनाश करती है ॥ २५ ॥ सेमल के वन में अग्निढेर का ढेर हो पेड़ की खखोड़ल में कंचन की समान प्रभा फैला कर जलाती हैं। सूखे पेड़ के मिलते ही उसकी चोटी पर फैल जाती है और वायु के वशीभूत हो वनके चौतर्फा घूम कर जलती फिरती है। दावाग्नि से सन्तापित हो हाथी–गवय * आपस में वन्धु की नाईं एक वार ही वैर को भूल कर अग्नि द्वारा तपे हुए वन से निकल नदी की बड़ी भारी रेती का सहारा लेते हैं ॥ २७ ॥ सरोवर में कमल खिल कर भर गये हैं। गुलाव के फूलकी सुगंधि द्वारा चारों दिशाएँ सुगंधि से भर गई हैं। इस समय नहाना और चन्द्रमा की किरणें ही आदर के योग्य हैं। हे प्रिये ! (आओ) इस समय ग्रीष्म काल में कामनियों के संग इस अटारी में तुम्हारे ललित गीत सुनते सुनते रात व्यतीत करें ॥ २८ ॥

महाकवि श्री कालिदास प्रणीत ऋतुसंहार महाकाव्य का
ग्रीष्मऋतु वर्णन नाम प्रथम सर्ग समाप्त ॥ १ ॥

——०——

[अथ वर्षा वर्णनम्]
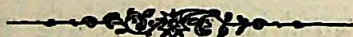
हे प्यारी ! बूंदों समेत नीरद रूपी मतवाले हाथियों वाला बिजली की पताका युक्त वज्र के शब्द को मथित करने वाला–कामी पुरुषों को प्यारा, राजा की नाईं ऊँचे शब्द को करता हुआ यह वर्षा काल उपस्थित हुआ है ॥ १ ॥ बहुत ही नीले रंगवाले-कमल के पत्ते की समान कान्ति वाले–कहीं कहीं अंजन के ढेर की समान प्रकाश वाले एवं गर्भवती स्त्रियों के स्तनों की सदृश सुन्दरता वाले मेघों ने मानों चौतर्फा से ही आकाश को व्याप्त (परिपूर्ण) कर दिया है ॥ २ ॥ तृषा से विकल पपीहे एवं पक्षियों के समूहों में 'प्यारी के चित्त 'जल के भार का सहारा लेने वाले–अत्यन्त वर्षा शाली–कानों को मनोहर शब्द सुनाने वाले यह मेघ धीरे धीरे विचर रहे हैं ॥ ३ ॥ प्रचण्ड (तीक्ष्ण) धाराओं के पतन रूपी अत्यन्त उग्र वाणों को धारण करने वाले–वज्र के शब्द–द्वारा विभूषित

* गौ की समान मृगों की जाति विशेष।

यह मेघ बिजली रूपी प्रत्यंचा वाले इन्द्र के धनुष को धारण करते हुए अपने गर्जन द्वारा परदेशियों के मन को खेद करते हैं ॥ ४ ॥ प्रकाश युक्त वैदूर्य मणियों की नाईं कान्ति वाले नये नये तृणांकुरों द्वारा एवं पुष्ट पुष्ट केले के दलों से युक्त हरे रंग वाली मणियों द्वारा विभूषित हुई वेश्या की समान बीर वधूटियों से भूमि सुशोभित होती है॥५॥ सर्व काल मनोहर बादलों के शब्द की उत्कंठा करने वाला बिसारे हुए केश पाशों की नाईं सुशोभित-संभ्रमत्य से आलिंगन और चुम्बन द्वारा विकल-नृत्य में प्रवृत्त ऐसा मोरों का कुल शाभायमान होरहा है ॥ ६ ॥ यह नदियां चौतर्फा से किनारे में उगे हुए पेड़ों को महान् वेगवान् मलीन जलों से उखड़ती हुई समुद्र में जल्दी जल्दी इस भाँति से चली जा रही हैं--जिस प्रकार कामदेव से पूर्ण विलासिनी नारियाँ जाती हैं ॥ ७ ॥ हिरनियों के मुख से गिरे हुए नीले रंग वाले कोमल कोमल उगे हुए अंकुरों द्वारा तिनकों और नये पत्तों वाले पेड़ों द्वारा अलंकृत यह मनोहर वन चित्त को चुराये लेते हैं ॥ ८ ॥ भयभीत अथच चपल आँखों रूपी कमल सरीखे सुशोभित मुख युक्त मृगों द्वारा चौतर्फा से घेरी हुई किनारों वाली वनस्थली मन में उत्कंठा उदय करती है ॥ ९ ॥ अत्यन्त तीक्ष्ण और ऊँचे शब्द करते हुए मेघों के घने अँधेरे से ढकी रातों में भी बिजली की चमक द्वारा मार्ग की पृथ्वी को देखने वाली अभिसारिका स्त्रियाँ* प्रीति युक्त चित्त से जाती हैं ॥ १० ॥ भयंकर गंभीर शब्द करने वाले शब्दायमान मेघों द्वारा अतीव उद्विग्न मन वाले अपराधी पतियों को भी स्त्रियें शयन में गाढ़ आलिंगन करती हैं ॥ ११ ॥ नयन रूपी कमलों से निर्गत पानी की बूँदों द्वारा जिन के होठ रूपी मनोहर पल्लव घुल गये हैं और जिन्होंने माला, गहने और चन्दनादिक दूर कर दिये हैं-ऐसी परदेशियों की स्त्रियाँ पतियों से निराश होकर बैठी हुई हैं ॥ १२ ॥ सफेद रंग का कीड़ा तथा रज और तिनकों से युक्त सर्प की समान टेढ़ी चाल से बहता हुआ संभ्रम सहित मैंढकों के समूहों से देखा हुआ नया पानी नीचे बहता है ॥ १३ ॥ जिनका शब्द उत्कंठित और श्रवणों का हरने वाला है, अर्थात् कानों द्वारा मनोहर शब्द सुनाकर चित्त को चुराने वाले मूर्ख भौंरे प्रफुल्ल दल वाली कमलिनी को त्याग कर नये कमलों की आशा से नाचते हुए मोरों के पूंछ के चिह्नों द्वारा उड़ उड़ कर गिरते हैं ॥ १४ ॥ निरन्तर शब्द करते हुए मत-वाले नये हाथियों के विमल कमल की समान प्रभा युक्त गण्डस्थल का

*पति की कामना किये जो नारी सांकेतिक स्थानको जाती है--उसी को अभिसारिका कहा जाता है ।

नये मेघों की नाईं शब्दों वाले मोरों के झुंड ने मद के जलों द्वारा आश्रय किया है ॥ १५ ॥ पानी से भरे नम्र हुए बादलों द्वारा जिनके शिखर चुम्बन किये हैं, ऐसे चौतर्फा से बूँदों द्वारा सींचे हुए-नाचते हुए मोरों से व्याप्त पहाड़ उत्कंठा को उत्पन्न करते हैं ॥ १६ ॥ कदम्ब, शाल, अर्जुन, एवं केतकी के पेड़ों को कँपाती हुई और उनके फूलों की सुगन्धि द्वारा मिली पानी की बूँदों से युक्त मेघों के संसर्ग द्वारा शीतलता को प्राप्त हुआ वायु किसको उत्कंठित नहीं करता ? अर्थात् सब को ही करता है ॥ १७ ॥ नितम्बों तक लम्बे फैले हुए मस्तक के बालों द्वारा एकत्रित किये हुए सुगन्धि युक्त फूलों द्वारा हारों समेत स्तनों द्वारा और मद की सुगंधिवाले मुखों से नारियाँ कामी पुरुषों की प्रीति को उत्पन्न किया करती हैं ॥ १८ ॥ विद्युत् रूपी लता के धारण करने वाले तथा इन्द्र के धनुष द्वारा सुशोभित, जल के भार से नम्र हुए अम्बुद और तागड़ी की मणि तथा मेखला द्वारा उज्जल-वर्णवाली नारियाँ यह दोनों एक साथ विदेशियों का मन चुराते हैं ॥ १९ ॥ नारियाँ इस वर्षा काल में मस्तक में कदम्ब के नये केशर और केतकी के फूलों द्वारा बनाई हुई मालाओं को पहरा करती हैं और अर्जुन वृक्ष की मंजरियों के कानों को शोभा दायक कर्ण फूल बनाकर कानों में धारण किया करती हैं ॥ २० ॥ काली अगर और बहुत से चंदन से व्याप्त शरीर वाली और जिन्हों ने फूलों की कलियों द्वारा केश पाश सुगंधित किये हैं, संध्या काल में ऐसी स्त्रियाँ बादलों का गर्जन सुन कर ससुर के घरों में से शीघ्र ही शयन भवन में चली जाती हैं ॥ २१ ॥ कमल-दल की नाईं काले रंग वाले-उन्नत और जल के भार से नम्र हुए एवं कोमल पवन द्वारा कम्पायमान किये हुए धीरे धीरे चलने वाले चन्द्र रूपी धनुष धारी बादलों द्वारा मानो अपने भर्त्ताओं के विदीर्ण हृदय वाली मुसाफिरों की स्त्रियों का मन चुरा ही लिया गया है ॥ २२ ॥ चौतर्फा से निकले हुए फूलों समेत कदम्ब के वृक्षों करके प्रसन्न की सदृश तथा पवन से चलाई शाखा वाले वृक्षों से नृत्य करते हुए की नाईं एवं केतकी की कलियों द्वारा हास्य की समान बनदेश नूतन जल के सींचने से शान्त हुए ताप को धारण करता है ॥२३॥ यह वर्षा ऋतु प्रिय के जैसे मालती से युक्त अशोक के फूल की माला को मस्तक में तथा खिले हुए नये नये फूलों वाली जुही की कलियों द्वारा एवं कचनार और कदम्बों करके कर्ण फूल का विरचन करता है ॥ २४ ॥ ऊंचे ऊँचे कुचाओं के अग्र भागों से मोतियों के हार को तथा बड़े नितम्बोंमेंबारीक और सफेद वस्त्रों को धारण करती हुई तत्क्षण जलसे स्नान

करने के कारण रोमांच को त्रिवली से तीन विभाग वाले मध्य भाग से नारियाँ धारण करती हैं ॥२५॥ नये जल के छिड़कने से अर्थात् छोटी छोटी बूंदों के गिरने से शीतलता को धारण करता हुआ और फूलों के बोझ से नम्र होते हुए पेड़ों का नाशक केतकी की धूल द्वारा उत्पन्न मनोहर आमोद का धारण करने वाला सूर्य विदेशियों के चित्त को क्षोभ उत्पन्न करता है ॥ २६ ॥ यह विन्ध्य पहाड़ मानों ऊँचे जल-भार से नमते हुए हमारा आश्रय है-इसी कारण महा कठोर ग्रीष्म का-लीन अग्नि की शिखाओं से प्राप्त हुए संताप वाले विन्ध्य पर्वत को मानों जल के भार से नम्र होते हुए मेघ जल की बूंदों द्वारा प्रसन्न ही किया करते हैं ॥ २७ ॥ बहुत से गुणों द्वारा रमणीय (मनोहर) स्त्रियों के मन का चुराने वाला-वृक्षादिकों का निर्विकार बंधु तथा प्राणियों के प्राण का कारण यह वर्षा ऋतु प्रायः अधिकता से तुम्हारे वाञ्छित फलों को करे ॥ २८ ॥

महाकवि श्री कालिदास प्रणीत ऋतुसंहार महाकाव्य का
वर्षाऋतु वर्णन नाम द्वितीय सर्ग समाप्त ॥ २ ॥

(अथ शरद्वर्णनम्)

काश के वस्त्र वाली-खिले हुए कमलरूपी मनोहर मुख वाली-मद से उत्पन्न हुए हंसों के शब्दरूपी-पायजेब की ध्वनि द्वारा सुन्दर पके हुए धानों द्वारा कमनीय-क्षीण शरीर रूपी यष्टि वाली मनोहर नवोढ़ा बधू की नाईं यह शरदृऋतु आन कर उपस्थित हुई है ॥१॥ काशके पेड़ों द्वारा भूमि और शीतल किरणों वाले चन्द्र द्वाराआकाश, हंसों द्वारा नदियों का जल, बबूलों द्वारा तालाब और फूलों के भार से नम्र हुए सप्त पर्ण के पेड़ों द्वारा वनों के प्रान्त भाग, मालतियों करके छोटे छोटे बगीचों को सफेद कर दिया गया है ॥ २ ॥ शब्दायमान मनको हरने वाली छोटी मछलियों की करधनी वाली तथा चौतर्फा स्थित हुए श्वेत अंगों से उत्पन्न हुई पंक्तियों के हारों वाली-बड़े विशाल तट रूपी जंघा और नितम्बों वाली नदियाँ आज उन्मत्त नारियों की सदृश धीरे धीरे गमन किया करती हैं ॥ ३ ॥ किसी किसी स्थान में चाँदी शंख और कमल की समान गोरे रँग वाले हलके होजाने से जाते हुए शतशः मेघों द्वारा छोड़ा

हुआ शतशः चामरों से पवन किये हुए राजा की नाईं वायु वेग द्वारा चलते हुए मेघों से शरद् काल उत्प्रेक्षा कर जाता है ॥ ४ ॥ बिखरे हुए अंजन-पुञ्ज की नाईं प्रभा युक्त, मन हरण आकाश एवं कँदूरी के फूलों की रेणु से लाल हुई पृथ्वी पके हुए धानों से ढक रही है । भूमि के वे अंश कि जिनके ऐसे परकोटे पृथ्वी के किस तरुण व्यक्ति का चित्त उत्कण्ठित नहीं करते हैं ? अर्थात् सब ही को करते हैं ॥ ५ ॥ धीमी धीमी वायु द्वारा चलाई हुई पवित्र विशाल शाखा वाली फूलों की कलियों के समूह द्वारा पत्तों के कोमल अग्रभाग वाला तथा मद से मतवाले भौंरों से पान किये हुए मधुके रस वाला कोविदार वृक्ष किस पुरुष के हृदयको विदीर्ण नहीं करता है ? ॥ ६ ॥ तारागण स्वरूप अनेक गहनों को धारती हुई और बादलों द्वारा छोड़े हुए चन्द्र मुख वाली—चन्द्रिका स्वरूप विमल वस्त्रों को धारण करनेवाली मदवाली अबला की नाईं यह रात नित्य प्रति बढ़ती ही जाती है ॥ ७ ॥ जिनकी तरंग रूपी माला चकवी-चकवों के मुख से भिन्न होगई हैं; जिनके किनारे बदक और सारसों के झुण्ड से व्याप्त होरहे हैं: ऐसी और कमलों के रेणु द्वारा नदियें हंसों के शब्दों द्वारा चौतर्फा से मनुष्यों को प्रसन्न करती हैं ॥ ८ ॥ आँखों के लिये उत्सव दायक, मन-हरण रत्न की माला वाला आनन्दकारी हिम की बूँदों के जलकी वर्षा करने वाला चन्द्र पति के वियोग रूपी विष से युक्त बाणों द्वारा घायल हुई स्त्रियों के शरीर को अनु दिन दाह करता है ॥ ९ ॥ फलों के बोझ से नम्र हुए धानों की राशि को कँपाता हुआ फूलों द्वारा नम्र होते हुए कुरबक के पेड़ों को हिलाता हुआ, खिले हुए कमलों के वनों तथा कमलिनियों को कँपायमान करता हुआ, तरुण मनुष्यों के मन को अतीव उन्माद कराता है ॥ १० ॥ मद द्वारा मतवाले हंसों के जोड़ों से सुशोभित विमल अथ च प्रफुल्लित (खिले हुए) कमल पत्रों द्वारा अलंकृत होते हुए धीमी धीमी चाल वाले वायु द्वारा उठाई हुई तरंगों स्वरूप माला वाले सरोवर शीघ्र ही चित्त को उत्कण्ठित करते हैं अर्थात् सरोवर के किनारों पर हंसों के जोड़े को देखकर एवं कमल समेत तरंगों युक्त सरों को देख हृदय (मन) उत्कण्ठा को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ जलद (बादल) के उदर (पेट) में इन्द्रका धनुष नष्ट (लीन) होगया अर्थात् दिखाई नहीं देता। आकाश की ध्वजा स्वरूपिणी बिजली भी आज नहीं चमकती तथा आकाश में बगले भी अपने पँखों की वायु को नहीं धुनते और मोर गण भी ऊँचा मुख करके आकाश की तरफ को नहीं निहारते ॥ १ . . . : प्रयोग रहित मोरों को त्यागकर कामदेव मधुरगीत

वाले हंसों को प्राप्त होता है और पुष्पोद्गम की सुन्दरता कदम्ब, कुब्ज, अर्जुन शाल और नीब वृक्षों के अतिरिक्त सप्तच्छद * के पेड़ों को मिलता है ॥ १३ ॥ सुंदर सुगन्धि युक्त फूलों की सुगन्धि द्वारा मनहरण-स्वच्छ पक्षियों के कलरव द्वारा शब्दायमान [गुञ्जारित] और जिनके प्रान्त में वियोगीजनों के नेत्र रूपी कमल स्थित हैं—ऐसे उद्यान (बगीचे) मनुष्यों के चित्त को उत्कण्ठित करते हैं ॥ १४ ॥ कल्हार—पद्म (कमल) और फूलों को बार बार कम्पाता हुआ तथा उनके साथ से अतीव शीतलता पाकर और वृक्षों के पत्तों के किनारे में लगे हुए ओस के कणों को हरता हुआ वायु प्रातः समय में वनिताओं (स्त्रियों) को उत्कण्ठित करता है। ॥ १५ ॥ एकत्रित धानों द्वारा ढकी पृथ्वी वाले भली भाँति स्थित हुए-अधिक गायों के झुण्ड द्वारा शोभायमान एवं हंस तथा सारसों से गुञ्जारित सीमा के अन्त भाग मनुष्यों को आनन्दित करते हैं ॥ १६ ॥ मानों हंसों ने स्त्रियों की सुन्दर ललित गति को जीत लिया, मानों खिले हुए कमलों ने रमणियां के चन्द्र-वदन की शोभा को परास्त किया और मानों अपनी सूक्ष्म लहरों के द्वारा नदियों ने भौंहों के विलास को जीत लिया एवं नीले कमलों ने मद से चञ्चल नेत्र कमलों को परास्त किया ॥ १७ ॥ फूलों के बोझ से झुकी हुई श्यामलता नारियों के गहने समेत बाहुओं की कान्ति को और कँदूरी के फूल से शोभायमान नव मालती दन्तों की परछाँही द्वारा विमल हास्य की कान्ति वाले मुख की सुन्दरता को हरण करती है ॥ १८ ॥ बहुत ही सघन काले और घुँघराले बालों को स्त्रियाँ नूतन मालतियों द्वारा परिपूर्ण करती हैं तथा चंचल सुवर्ण के कुण्डलों युक्त कानों में विमल स्वच्छ नील कमलों को धारण करती हैं ॥ १९ ॥ आनन्दित मन स्त्रियाँ इस समय चन्दन के रस से युक्त हारों द्वारा कुच मण्डल को और करधनी के समूहों द्वारा अत्यन्त पुष्ट नितम्बों को और सुन्दर नूपुरों (पायजेबों) के घुँघरुओं द्वारा अपने चरण कमलों को सुशोभित करती हैं ॥ २० ॥ विमल बवूलों वाले एवं राजहंसों से आश्रित, मरकत-मणियों की नाईं कांति-सम्पन्न जल के द्वारा विभूषित हुए दीर्घ जलाशयों की शोभा को बादल हीन चन्द्रमा और तारागणों द्वारा युक्त आकाश धारण करता है ॥ २१ ॥ दिनकर सूर्य की किरणों द्वारा प्रातः समय बोधित किया हुआ आकाश श्रेष्ठ नारी के मुखकी नाईं शोभा युक्त आज वह कमल खिलता है । स्वामियों के विदेश सिधार जाने पर बधुओं की हंसी के सदृश चन्द्र मण्डल के अस्त होजाने पर बवूला भी

* वह वृक्ष कि जिसमें सात सात पत्तों का गुच्छा होता है।

मुकलित होजाता है ॥ २२ ॥ पवन शरत्काल में फूलों के संग होने पर ठंडा होकर बहता है। बादलों के हट जाने पर दिशाओं के भाग मनोहर होगये हैं। विमल जल–पके धानों से युक्त पृथ्वी–विमल किरणों युक्त चन्द्रमा तथा तारागणों द्वारा चित्रित आकाश शोभा को प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ इस समय पथिक जन कमलों में अपनी प्रियाकी नीली आँखों को समझ कर मतवाले हंसों के शब्दों के विषय प्रिया की शब्दायमान सोने की कांची (तगड़ी) को समझ तथा प्रिया के अधरों की कान्ति के समान शोभा युक्त दुपहरिया के फूल को समझ कर भ्रान्त मन होकर रोया करते हैं ॥ २४ ॥ स्त्रियों के मुखों में चन्द्रमा की शोभा को तथ शुद्ध वदन के हास्य में कमलों की शोभाको; मनोहर अधरोंके विषय दुपहरिया के फूलों की शोभा को रखकर यह सुन्दर शरतकाल की शोभा जानें कहाँ को चली जाती है ॥ २५ ॥ लाल कमल स्वरूप मुख वाली–खिले हुए नील-कमलरूपी आँखों वाली, फूली हुई नूतनाकाश समूह सुंदरता वाली, कमल स्वरूप मनोहर हास्य वाली मतवाली स्त्री की तरह यह शरदऋतु तुम्हारी प्रसन्नता को अधिक बढ़ावे ॥ २६ ॥

महाकवि श्री कालिदास प्रणीत ऋतुसंहार का
शरद्वर्णन नाम तृतीय सर्ग समाप्त ॥ ३ ॥

—*—

(अथ हेमन्तवर्णनम्)

हे प्यारी ! नये फूलों के उद्गम और फूलों द्वारा रमणीक जिसके आगम से लोध्र प्रफुल्लित होगया है, ऐसा धानों का पकाने वाला–छिपे कमलों वाला–पाले का गिराने वाला–यह हेमन्त काल आन कर उपस्थित हुआ है ॥ १ ॥ मन हरण तथा चन्दन के रँग से गौर होते हुए एवं बरफ और कुन्द–चन्द्रमा की नाईं कान्ति युक्त हारों द्वारा स्तनों वाली नारियों के गोलाकार स्तन सुशोभित नहीं किये जाते सारांश हेमन्त काल में हारों को कोई स्त्री भी नहीं पहरती ॥ २ ॥ विलासिनी नारियों की बाहुओं में बाजूबन्द रूपी वेष्टन नहीं है अर्थात् शीतलता के कारण नितम्बों में न तो नवीन वस्त्र हैं और न पुष्ट कुच मण्डलों में झीना पट है ॥ ३ ॥ नारियाँ अपने नितम्बों को सोने के गहनों द्वारा विभूषित करधनी की जंजीर द्वारा विभूषित नहीं करती हैं और हंसों के शब्द का

अनुकरण करने वाली पायजेबों को भी अलंकृत नहीं करती हैं ॥४॥ काम-केलि के निमित्त नारियाँ अपनी देह को हल्दी द्वारा और पत्र रचना द्वारा मुख कमलों को काली अगर से शिरों को धूपित और अगर से अपने शरीरों को विभूषित करती हैं ॥ ५ ॥ रति के परिश्रम से क्षीण हुए सफेद मुख वाली कामिनी हर्ष के समय को प्राप्त होकर भी रंग वाले अपने अधरों को पतियों के दाँतों से विदीर्ण हुए देखकर अट्टहास नहीं करती हैं ॥ ६ ॥ पुष्ट उरोजों वाले वक्षःस्थल की शोभा को प्राप्त होकर तथा कुचों के पीड़न द्वारा खेद को प्राप्त होता हुआ यह शीत काल गिरते हुए और घास के अग्रभाग में वरफ से मानों आक्रांत ही करता है ॥ ७ ॥ प्रभूत (वहुत से) धानों की वालियों से युक्त तथा हिरनियों के झुण्ड से विभूषित मनोहर क्रौंच पक्षियों के शब्दों से गुंजारित सीमा के अन्त भाग चित्त को उत्कंठित करते हैं ॥ ८ ॥ खिले हुए नीले कमलों द्वारा शोभायमान तथा वदक इत्यादि पक्षियों से फैलाए हुए विमल जल युक्त एवं शिवार वाले सरोवर तरुण पुरुषों का चित्त चुराते हैं ॥ ९ ॥ जल हीन मार्ग को देख कर विदेश जाने से दुःखी पति का ध्यान करती तथा आने की बाट देखती हिरन की नाईं आँखों वाली नारियाँ मानों अभिलाषाओं को जगा रही हैं। वर्फ के संगी शीत से पाक को प्राप्त हुई और लगातार हवा के थपेड़ों से कम्पित की हुई अपने प्यारे से पृथक् होती हुई हे प्यारी ! यह प्रियंगु वियोगिनी नारी की नाईं सफेद रंग को प्राप्त होती है ॥ ११ ॥ फूलों के आसव की गंध सुगंधित श्वाँसों की पवनों से सुगंधित शरीर वाला—काम बाण द्वारा विंधता हुआ कामी व्यक्ति परस्पर शरीर की अत्यन्त संगति के निमित्त सोता है ॥ १२ ॥ दाँतों के काटने के चिह्नों वाले होठों द्वारा और पैर के अग्रभाग से चिह्नित स्तनों वाला—नये यौवनवाला नारियों में निठुर रतिका विलास प्रकट किया जाता है ॥ १३ ॥ हाथ में दर्पण (शीशा) लिये हुए कोई स्त्री प्रातःसमय अपने मुखारविन्द को सुधारती है और अपने प्रिय द्वारा पान किये हुए रस युक्त दाँतों के अग्रभाग द्वारा पान किये हुए रसयुक्त होठों के अग्रभाग द्वारा छिन्न भिन्न हुए होठों को हटा-हटाकर देखनी भी जाती है ॥ १४ ॥ अधिक रति (संभोग) की महनत से शिथिल शरीर वाली—रात में जागने से लाल-लाल नेत्र वाली तथा शय्या की पट्टियों में उलझे और बिखरे हुए बालों वाली—सवेरे की कोमल सूर्य की किरणों द्वारा तृप्त होती हुई और नारियाँ निद्रा ही को प्राप्त होरही हैं ॥ १५ ॥ घने अथच नीले शिरों के बालों वाली पुष्ट ऊँचे कुचों के बोझ से झुके हुए

शरीर वाली कामिनियाँ शिरसे उतार कर माला शून्य सूत्र की मनोहर सुगन्धि को भोगकर वालों का शृंगार करती हैं ॥ १६ ॥ अपने देह को स्त्रियां अपने प्रियों से भोगा हुआ देख-आनन्दित हो-अधर और गण्ड-स्थलकी शोभा बनाती हुई सूक्ष्मअंगवाली मनोहर झलक और तिरछी चित वनवाली वामागण लाल वस्त्र को धारण किया करती हैं ॥ १७ ॥ सुरत-केलिकेश्रम द्वारा बहुत समय तक खेदित-शिथिल होते हुए देह वाली पुष्ट जंघ्य और उरोजों को पीड़ित करने पर दुःखी होती हुई सुन्दर शोभा युक्त स्त्रियें सुगंधित तैलादि द्वारा अपने शरीर को सजाती हैं॥१८॥ भाँति भाँति के मनोहर-स्त्रियों के मन को हरने वाला-पके हुए धानों द्वारा ग्राम की सीमा को व्याप्त करने वाला बर्फ को गिराने वाला क्रौंच पक्षी के शब्द द्वारा गुंजारित हिमसमेत यह समय तुम्हारे मनकी कामना को पूर्ण करे ॥ १६ ॥

श्री महाकवि कालिदास प्रणीत ऋतु संहार काव्य का
हेमन्त ऋतु वर्णन नाम चतुर्थ सर्ग समाप्त ॥ ४ ॥

——०——

(अथ शिशिर वर्णनम्)

हे वरोरु (सुन्दर जंघा वाली !) बढ़ने हुए धान, और गन्नों के ढेरों द्वारा ढके हुए भू प्रदेश वाले, अच्छी तरह स्थित होते हुए क्रौंच पक्षी के शब्द द्वारा गुंजारित अत्यन्त काम युक्त स्त्रियों के प्रिय शिशिर नामक इस समय को तुम सुनो ॥ १ ॥ हे प्रिये ! आजकल झरोके अर्थात् सींकचे बन्द किये हुए महलों के भीतर अग्नि तथा प्रकाशमान् सूर्य की किरणें बड़े बड़े वस्त्र और तरुणी नारियों को मनुष्य सेवन करते हैं अर्थात् उनके संग आनन्द विहार करते हैं ॥ २ ॥ हे प्यारी ! न तो इस समय चन्द्र किरणों की नाईं शीतल चंदन ही और न शरद्-कालीन चन्द्रमा से विमल-महलों की छतें ही और न सघन हिम (पाले) द्वारा शीतल-हवा ही पुरुषों का मन प्रसन्न करती है ॥ ३ ॥ वर्फ पड़ने से शीतल हुई-चन्द्रमा की किरणों द्वारा तथा शीतल होती हुई एवं सफेद तारागण रूपी शोभायमान गहनों वाली रातें मनुष्यों को सेव्य नहीं होती. सारांश ग्रीष्मादि ऋतुओं में जिस भाँति मनुष्य रात में सुख संभोग किया करते थे, वैसा अब नहीं करते ॥ ४ ॥

पान तथा अतर आदि लेपन और माला पहरने वाली-फूलों की महक द्वारा सुगंधित होते हुए कमल सरीखे मुख वाली नारियां उत्कंठा को प्राप्त होती हुई बहुत काली अगर तथा धूप द्वारा सुवासित सोने के कमरे में प्रवेश करती हैं ॥ ५ ॥ मद से उन्मत्त रति-विलास की कामना युक्त नारियें अपराधी अर्थात् पर स्त्री गमन आदि नाना अपराधों के करने वाले और यथा विधि ताड़न किये हुए कम्पायमान और डर से मन्द हृदय वाले अपने स्वामियों का दर्शन करके उनके अपराधों को भूल गईं ॥ ६ ॥ काम-वेग से अत्यन्त पीड़ित तरुण पुरुषों के द्वारा लम्बी लम्बी जाड़ों की रातों में बहुत समय तक निठुरता से भोगी हुई तथा सहवास--काल के श्रम से पीड़ित जंघाओं वाली--नये यौवन वाली नारियां रात बीतने के पीछे धीरे धीरे विचरती हैं ॥ ७ ॥ मनहरण चोलियों द्वारा कसे हुए स्तनों वाली-रँगे हुए रेशमी कपड़े से अलकृत जंघा वाली नारियाँ बीच बीच में फूलों से युक्त अपने बालों द्वारा मानों शिशिर ऋतु को सुशोभित करती हैं ॥ ८ ॥ विलासिनी नारियों के कुंकुम राग द्वारा पिंगल-सुख पूर्वक भोग करने लायक-नूतन योवन के उत्सव रूप उरोजों से पीड़ित चित्तवाले कामीजन शीत काल का तिरस्कार करके शयन किया करते हैं ॥ ६ ॥ सुगन्धित श्वांस तथा प्रतिश्वासों द्वारा कम्पित कमल वाले, मन चुराने वाले, काम प्रीति जनक उन्मादक-श्रेष्ठ जातीय मद्य को नारियां आनंदित होती हुई रातों में कामी पुरुषों के संग पीती हैं॥ १० ॥ प्रातःकाल निर्गत मद के रागवाली-भर्ता के आलिंगन द्वारा मसले हुए कुचा के अग्र भाग वाली कोई एक बाला अपने शरीर को अपने प्यारे से भोगा हुआ देखकर हँसती हँसती शयन गृह से अन्य स्थान को गमन करती है ॥११॥ अगर की गंध तथा धूप द्वारा सुगन्धित-शिथिल फूलों के तिरछे अग्र-भाग वाले बालों को धारण करती हुईं माला युक्त बोझीले नितम्बों वाली-क्षीण मध्या अर्थात पतली कमर वाली-मन्मथ द्वारा शोभायमान स्त्रियाँ प्रातःसमय बिछौनों को छोड़ देती हैं ॥ १२ ॥ तत्क्षण जल द्वारा धौत [illegible] सुशोभित मुखमण्डल द्वारा तथा कानके पास नियुक्त अरुण प्रान्त वाली आँखों द्वारा तथा कन्धे में संलग्न बालों से उपेक्षित नारियाँ इस समय प्रातः काल में घर के बीच लक्ष्मी की नाईं [illegible] होती हैं ॥ १३ ॥ पुष्ट जांघों के बोझ से आर्त्त (दुःखित) होती हुई-कुछेक नम्र मध्य वाला स्तनों के बोझ से उत्पन्न खेद द्वारा धीमी २

चाल से चलती हुई यह बाला रात्रि कालीन मैथुन समय के वेश को शीघ्र त्यागकर दिन के अनुकूल वेश को धारण करती है ॥ १४ ॥ नखक्षत द्वारा भंग किये हुए स्तनान्तों को निहारती हुई दाँतों द्वारा छिन्न हुए अधर पल्लव को स्पर्श करती हुई अभिलाषित संभोग के वेश द्वारा प्रसन्न होती हुई नारियाँ सूर्य के उदय काल में अपने मुख कमलों को अलंकृत किया करती हैं ॥ १५ ॥ प्रचुर (अनेकानेक) गुड़ के विकार * द्वारा स्वादिष्ट धान तथा गन्नों द्वारा रमणीय (मनोहर) प्रबल रति विहार के द्वारा काम के घमण्ड का उत्पन्न कर्त्ता अपने प्रिय तथा वियोगी पुरुषों के मनस्ताप का हेतु यह शिशिर काल तुम्हारे नित्य कल्याण के निमित्त होवे ॥ १६ ॥

महाकवि श्री कालिदास कृत ऋतुसंहार महाकाव्य भाषानुवाद का शिशिर ऋतु वर्णन नाम पञ्चम सर्ग समाप्त ॥ ५ ॥

—o—

(अथ वसंत वर्णनम्)

हे प्यारी ! यह प्रफुल्लित आम के मौल रूपी पैने शरों (बाणों) वाला-भ्रमर पंक्ति द्वारा शोभायमान धनुष के गुण (रौदे) वाला यह बसन्त काल रूपी योधा कामीजनों का मन भेद न करने को प्राप्त हुआ है ॥ १ ॥ फूलों समेत पेड़-कमलों समेत जल-कामना सहित स्त्रियाँ सुगन्धि वाला वायु-सुख दायक संध्या काल मनोहर दिन, हे प्यारी ! यह समस्त ही वसन्त ऋतु में परम सुन्दर होजाते हैं ॥ २ ॥ रमणियाँ इस बसन्त ऋतु में कुछेक हिम युक्त जल कणों से छिड़क कर शीतल अटारी चम्पे के फूलों द्वारा सुन्दर अथच सुगन्धित मस्तक और मनोहर पुष्पों के हारों द्वारा अपने स्तनों को अलंकृत किया करती हैं ॥ ३ ॥ यह बसन्त ऋतु बावली के पानी को तथा मणि मेखला (रत्नों की तगड़ी) को चन्द्र सरीखी प्रभा युक्त नारियों को और फूलों के भार से झुके हुए आम के पेड़ों को सुगन्धित करती है ॥ ४ ॥ सफेद चन्दन द्वारा आर्द्र (गीले) हुए हार स्तनों में और शंख के अंगद (बाजूबन्द) भुजाओं में तथा खडुए, रमणियों के नितम्ब (जाँघों) में किंकिणी निशंक काम के सुख रूप होते हैं ॥ ५ ॥ विलासिनी अंगनाओं के कटि तट तो कुसुम्बी

* खाँड चीनी आदि ।

रँग द्वारा लाल हुए कपड़ों द्वारा तथा स्तन मण्डल कुंकुम के रंग द्वारा गौर हुए झीने वस्त्रों द्वारा सुशोभित किये जाते हैं ॥ ६ ॥ प्रमदाओं के कानों में नई कनेर, कुचाओं में हार, बालों में अशोक, चोटी में चँबेली की माला सुशोभित होती हैं ॥ ७ ॥ विलासिनी नारियों के पत्र रचना वाले कंचन कलश की समान मुखों के विषय रत्नों के बीच में मोतियों के संग से मनोहर स्वेदोद्गम विस्तार को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ जिनके बन्धन ढीले पड़गये हैं—ऐसी काम द्वारा व्याकुल अपने गात्रों को उछालती हुई नारियाँ आजकल प्रीतमजनों के पास होने पर उत्कण्ठित होजाती हैं ॥ ९ ॥ यह मन्मथ स्त्रियों के देहों को कृश (दुबले) तथा सफेद रँग वाले तथा मद से आलस्य युक्त निरन्तर जँभाई लेने में निरत और सौन्दर्य रूप रस से बेगवान् करता है ॥ १० ॥ नारियों की मदिरा द्वारा आलसी आँखों में अचंचलता, गालों में पीलापन, कुचों में सख्ती, कमर में नम्रता, जांघों में पुष्टता आदि अनेकानेक रूपों से कामदेव स्थित है ॥ ११ ॥ नारियों के शरीरों को तो कामदेव निद्रा के आलस्य से विह्वल-वचनों को मदिरा द्वारा कुछेक आलस्य युक्त तथा दृष्टि को भ्रू भंग होनेसे कुटिल करता है। १२। मद द्वारा अलसाती नारियों द्वारा कुचों के अंगराग में अगर-केशर और श्यामा कुंकुम डालकर कस्तूरी मिश्रित चंदन लगाया जाता है॥१३॥ कामीजन काम बाण द्वारा शीघ्रता सेभारी वस्त्रोंको छोड़कर लाखके रङ्ग द्वारा रँगे गये सुगंध और अगर द्वारा धूपित किये गये झीने वस्त्रों को पहरा करते हैं। ॥ १४ ॥ यह मनुष्य कोकिल आम के रस से मत्त होकर अपनी प्रिया के मुख का आदर पूर्वक चुम्बन करता है और कमल में स्थित हुआ भौंरा अव्यक्त शब्द करता हुआ शीघ्र ही अपनी प्यारी का प्रिय कार्य करता है ॥ १५ ॥ लाल लाल मौर के गुच्छों द्वारा नम्रीभूत पुष्पों युक्त पवित्र शाखाओं वाले वायु से कम्पायमान् किये गये यह आम के पेड़ हे रमणी ! नारियों को उत्कण्ठित करते हैं ॥ १६ ॥ जड़ पर्यन्त मूँगोंकी समान लाल पत्तों समेत फूलों के समूह को धारण करते हुए अशोक के पेड़ देखे जाकर नारियों के हृदयों को शोक युक्त किया करते हैं ॥ १७ ॥ मद-युक्त भौंरों द्वारा चुम्बन किये गये कोमल रूप आकृति वाली धीमी धीमी हवा से चलायमान कोमल कलियों वाली नूतन बेलि देखी जाकर कामीजनों के चित्त को तुरन्त ही उत्कंठित करती हैं ॥ १८ ॥ नारियों के मुख की कान्ति को हरने वाली—अल्प काल से ही खिली हुई कुरु-बक की मंजरी की अत्यन्त शोभा देखकर हे प्यारी ! किस पथिक

का मन कामबाणों से व्यथित न होगा ? ॥ १६ ॥ अनल की नाईं प्रदीप्त होते हुए, वायु से कम्पायमान किये हुए-फूलों द्वारा झुके हुए टेसू के वृक्षों से बसन्त काल के प्राप्त होने पर सब ही स्थानों में यह पृथ्वी लाल वस्त्र वाली नई बधू की समान शोभा को प्राप्त होती है ॥ २० ॥ हे श्रेष्ठ मुख वाली ! तोते के मुख की नाईं लाल छवि वाले टेसुओं ने किस को दग्ध नहीं किया ? सभी-मनोहर कनेर के पुष्पों ने क्या हरण नहीं किया ? जो कि यह कोकिला पुनः मीठी-वाणी द्वारा सुन्दर मुख में स्थित हुए पुरुषों के मन-हरण करती है ॥ २१ ॥ प्रसन्नता के करने वाले फूलों के रस से युक्त—मद कारक-धीर वाणियाँ बोलने वाली कोकिलाओं के द्वारा क्षण भर में ही कुल में स्थित भी वधुओं का लज्जा समेत विनीत हृदय व्याकुल किया जाता है ॥ २२ ॥ यह वायु फूलों समेत आम की डालियों को कंपायमान करता हुआ, कोकिलाओं के वचनों को दशों दिशा में विस्तृत करता हुआ, प्रमदाओं के मनका चुराता हुआ, वर्फ गिरने से सुभग यह वायु वसंन्त काल में सविशेष बहता है ॥ २३ ॥ संभ्रम सहित नारियों के जो हास्य वही उज्ज्वल कुन्दों द्वारा उद्दीप्त, मन हरने वाले उपवन मुनियों के भी रागादि रहित चित्त को हरण करते हैं—प्रायः राग से चंचल मनुष्यों का चित्त तो चुराते ही हैं ॥ २४ ॥ लम्बी सोने की तगड़ी वाली कुचाओं के बीच में स्थित हार वाली, कामकी अधिकता से शिथिल होते हुए शरीर रूपी लता वाली नारियाँ चैत्रमास में कोकिला तथा भौंरों के मधुर स्वरों द्वारा पुरुषों के मनको चुराती हैं ॥ २५ ॥ अनेक मनहरण फूल युक्त पेड़ों से शोभायमान अग्रभाग वाले, आनन्दित कोकिला द्वारा व्याप्त निकट स्थान वाले पहाड़ी पेड़ों के झुण्डों से नम्र होते हुए शिलाओं के समूह वाले, पहाड़ों को देखकर समस्त ही प्राणी आनन्दित होते हैं ॥ २६ ॥ कान्ता (स्त्री) के विरह से दुःखित चित्त की वृत्ति वाले मुसाफिर लोग फूले हुए आम के पेड़ों को देखकर आँखें मूँद लेते हैं, रोते हैं और मोहित होते हैं-नासिका को हाथ से बन्द करते हैं और ऊँचे स्वर से शब्द करते हैं ॥२७॥ मत वाले मधुकरों (भौंरों) के तथा कोकिलाओं के शब्दों द्वारा फूले हुए आम के पेड़ों द्वारा तथा मनोहर कनेरों द्वारा मानों तीक्ष्ण बाणों करके काम की वृद्धि करने के लिये कामदेव स्त्रियों का मन व्यथित करता है ॥२८॥ मार्ग में मनोहर कञ्चन की नाईं कान्ति-युक्त फूलों के समूह को छोड़ते हुए फूले हुए तथा वायु द्वारा कंपित आम के पेड़ों को सन्मुख देखकर कृश शरीर वाला विदेशी भी कामबाण

के प्रहारों द्वारा मोहित होता है ॥ २६ ॥ इस समय बसन्त कोकिलाओं के मीठे और आनन्द-दायक शब्दों द्वारा स्त्रियों को, सद्‌ वचनों को कुन्द के फूलों की दीप्तियों से कुछेक हास्य युक्त दाँतों की चमक को एवं मूँगे को समान लाल लाल पत्तों द्वारा हाथ रूपी पत्तों की कान्ति को हास्य करता है ॥ ३० ॥ स्तनों के बोझ से झुकती हुई नारियाँ सुवर्ण कमल की नाईं कान्ति युक्त मुखों द्वारा-उज्वल कपोलों द्वारा-जिनके ऊपर हार लम्बायमान हैं, ऐसे चन्दन द्वारा-गीले स्तनों द्वारा-काम जनित विलासों करके और दृष्टि पातों करके शान्त मनवाले मुनियों को भी कामुक करती हैं ॥ ३१ ॥ नारियों का मद्य से सुगन्धित मुखारविन्द, लोध्र के फूलों की सदृश लाल नयन, नवीन कुरुवक द्वारा पूर्ण मनोहर केश पाश, भारी स्तन और कमर का पिछला भाग यह क्या इस समय काम के अर्थ नहीं होते हैं ? ॥३२॥ प्रफुल्ल आम के आमोद से सुगन्धित हुई वायु द्वारा एवं मदान्ध कोकिला तथा भ्रमर इनके अन्यान्य संघर्षित कानों को प्यारे गीतों द्वारा नारियों के हृदयों को कम्पायमान किया जाता है ॥ ३३ ॥ मनको चुराने वाला तो संध्याकाल, विमल चन्द्र की कान्ति, श्रेष्ठ कोकिला का शब्द, सुगंधित वायु, मतवाले भ्रमरों का शब्द और रात में मद्यपान यह सब (मानों) कामदेव की रसायन हैं ॥३४॥ मनुष्य वृक्षों की छाया चाहते हैं और रात में चन्द्र किरणों की इच्छा करते हैं । सुख सहित शीतल महलों में सोने के लिये जाते हैं । शीतल होने के कारण अंगनाओं को गाढ़ आलिंगन करते हैं ॥ ३५ ॥ मलय पर्वत की पवन द्वारा विद्ध-मुक्त कोकिलाओं के शब्दों द्वारा रमणीक, सुगंधि युक्त मधु के छिड़कने से सुगंधि का बहाने वाला भाँति भाँति के भौंरों द्वारा चौतर्फा से घेरा हुआ यह श्रेष्ठ बसन्तकाल तुम्हारे सुखानन्द के लिये होवे ॥ ३६ ॥ आम की विमल मंजरी जिसके उत्तम बाण हैं, ढाक के उत्तम फूल जिसका उत्तम धनुष है. भौंरे जिसके गुण (प्रत्यंचा) हैं, कलंक रहित चन्द्रमा जिसका सफेद छत्र है, मत्त मातङ्ग जिसके मलयाचल की वायु है और कोकिला जिसके बन्दीजन हैं, ऐसा वह अनंग बसन्त सहित तुम्हारा मंगल करे ॥ ३७ ॥

महाकवि श्री कालिदास प्रणीत ऋतु संहार
महाकाव्य का भाषानुवाद समाप्त।

---

* ॐ हरिः *

शृंगारतिलक

बाहू द्वौ च मृणालमास्यकमलं लावण्यलीलाजलं
श्रोणीतीर्थशिला च नेत्रशफरी धम्मिल्लशैवालकम् ।
कान्तायाः स्तनचक्रवाकयुगलं कंदर्पबाणानलै-
र्दग्धानामवगाहनाय विधिना रम्यं सरो निर्मितम् ॥

[कवि कामनियों को सरोवर रूप में वर्णन करता है । सरोवर में जो सब पदार्थ रहते हैं-स्त्रियों में भी वेही रहते हैं, यही दिखाया जाता है] रमणियों की दोनों बाहु मृणाल स्वरूप, मुख कमल स्वरूप, अंग का लावण्य (नमकीनी) जल स्वरूप, नितम्ब सोपान-स्वरूप, नेत्र सफरी स्वरूप, दोनों स्तन दोनों चक्रवाक् स्वरूप और केश पाश सैवाल स्वरूप हैं । विधाता ने कन्दर्प की बाणाग्नि से दग्ध हुए पुरुषों के स्नानार्थ यह रमणी रूपी रमणीय सरोवर बनाया है ॥ १ ॥

(किसी रमणी का पति बहुत दिनों से परदेश में बास कर रहा है-कितनेक दिन बीत जाने पर भी घर लौट कर नहीं आया । इधर बसन्त ऋतु आ पहुंची यह देख वह रमणी विरह के ताप से दग्ध होकर परि-ताप करती है । यह देखो, मधुर-यामिनी आनकर उपस्थित होगई । इस समय यदि स्वामी घर नहीं आये, तो यह प्राण विरहाग्नि में ही भस्म होजायँगे । यदि पुनः दूसरी वार जन्म लेना पड़े, तो यह प्रार्थना करती हूं कि मैं कोकिलाओं को बन्धन करने के लिये व्याध होकर जन्म लूँ और चन्द्रमा को ग्रास करने के लिये राहु-ग्रह होकर जन्म ग्रहण करूं । जन्मांतर में जिससे महादेव जी के नेत्रों की अग्नि होकर कन्दर्प (कामदेव) को भस्म करसकूँ और मन्मथ के रूप में उत्पन्न होकर जिस से प्राण प्यारे को व्याकुल कर सकूँ ॥ २ ॥

(नवीन युवक के संग रति-सुख भोगने के अनन्तर तड़के के समय किसी रमणी के पलँग से उठने पर उसकी एक सखी उससे कहती है)

सखी ! नवीन वल्लभ का संतोष बढ़ाने के लिये विगत रात में तुमने जो अपने गालों में कस्तूरी का लेप किया था, वह नहीं छूटा। स्तनों पर जो चन्दन लेपन किया था, वह भी नहीं पुछा। आँखों का काजल भी नहीं धुला। तुम्हारे होठोंपर पान खानेसे जो लाली बढ़गई थी, वह भी स्खलित नहीं हुई अर्थात् ज्यों की त्यों है। हे गजेन्द्र गमने ! तो क्या तुम अपने प्राण प्यारेसे कुपित होगई थीं? अथवा तुम्हारे प्रिय पति निरे बालकहैं ?॥३

पूर्व कथित प्रश्न के उत्तर–मिस सखी से नायिका कहती है। सखी! तुमने जो जो पूछा–उसका कारण सुनो। पुनर्वार तुम्हारे निकट सब कहती हूं। केलि–गृह में मैं अपने प्यारे से कुपित नहीं हुई, मेरा प्रिय वल्लभ बालक भी नहीं है (किन्तु मुझको नवयुवती–सचकिता और कन्दर्प का दर्प नाश करने में समर्थ देखकर प्रियतम ने सहसा दैत्य गुरू* को त्याग दिया–सुतरां फिर अनंग प्रसंग होता कैसे ? ॥ ४ ॥

(बहुत दिनों पीछे युवापति के विदेश से घर लौटने पर रात में उस की प्रणयिनी उसके साथ रात विताने के पीछे सवेरे ही पलँग से उठकर सखी के निकट कहती है।) सखि ! बहुत दिनों के पीछे प्राणवल्लभ घर लौटकर आये हैं। अनेक देशों की बहुतसी बातों में आधी रात बीतगई। इसके पीछे मैं प्रणय–कलह करके प्राण प्यारे से कुपित होगई। इसमें भी बहुत समय बीत गया। देखते देखते पूर्व दिशा सौत स्वरूप हो डाह से अरुण वर्ण हो उठी। अतएव मनकी आशा कुछ भी पूरी नहीं होसकी ॥५॥

किसी नायिका को अपने प्रतिकूल चलने वाली देखकर एक नायक कहता है। प्रियतमे ! विधाता ने इन्दीवर (कमल) द्वारा तुम्हारी आँखें, पद्म द्वारा मुख मण्डल, कुन्द पुष्प द्वारा दाँतों की पाँति–नव पल्लव द्वारा होठ–और चम्पक दल के द्वारा अङ्ग बनाये हैं–किन्तु फिर अन्तः करण को पत्थर की समान क्यों गढ़ा है ? ॥ ६ ॥

कोई नवीन रसिक पुरुष एक नवीना युवती को सम्बोधन करके कहता है। नलिनी दल के ऊपर यदि एक मात्र खंजन पक्षी दिखाई देवे, तो चतुरंगिनी सेना का आधिपत्य मिलता है। मैंने आज तुम्हारे मुख-कमल पर दो नेत्र स्वरूप दो खंजन पक्षियों को देखा–नहीं जानता कि इसके द्वारा मुझे क्या मिलेगा॥७॥ कोई नायक एक सुन्दरी की दोनों मनोहर आँखें देखकर कहता है। मुग्धे ! जो किसी समय दैवात् पद्म के ऊपर एक मात्र खंजन पक्षी का दर्शन करते हैं—वे कृतार्थ होकर प्रसिद्ध नरपति पद लाभ करते हैं, किन्तु क्या ही आश्चर्य है–तुम्हारे मुख पद्मपर

* दैत्यगुरु अर्थात् शुक्र शुक्र का पर्याय वाचक वीर्य शब्द है।

जो नयन रूप दो खंजन पक्षी देखता है—उसको मन्मथ शर जाल में बँध कर विकल होना पड़ता है ? ॥ ८ ॥

एक समय चन्द्र—ग्रहण के दिन ग्रहण के कुछ पहले एक परम रूपवती दूती को देखकर कोई रसिक पुरुष कहता है—हे सुन्दरी ! शीघ्र घर में प्रवेश करो। वाहर मत रहना। चन्द्र ग्रहण का समय उपस्थित है। तुम्हारे सुविमल—कान्ति पूर्ण मुखचन्द्र को देखने पर राहु ग्रह (आकाश-स्थित) पूर्ण चन्द्रमा को छोड़ कर उसी को ग्रास कर लेगा। इसमें सन्देह नहीं। ॥ ९ ॥

एक रूपवती बगल में जल भरा कलशा लेकर मंथरगति से गमन करती है। यह देखकर कोई रसिक नायक उसकी वगल में दवे घड़े को उद्देश्य करके कहता है। हे कुंभ श्रेष्ठ (जब कुम्हार पहिले तुम को मृत्तिका द्वारा वनाने में प्रवृत्त हुआ, तब) तुमने जो सूखे काठ के प्रहार सहे थे, वह श्लाघनीय है। प्रचण्ड धूप के ताप से जो सूखे थे, वह भी प्रशंसा की बात है। तुम्हारे शरीर में जो (कुम्हार ने) कीचड़ पोता था, वह भी श्लाघनीय है और अन्त को जो तुम प्रज्वलित अग्नि में दग्ध हुए थे—वह भी श्लाघ्य है क्यों कि इस समय रूपवती कामिनी की छाती से चिपट कर उसके कुच कुंभ और भुज-लता के आन्दोलन जनित लीला का सुख पा रहे हो, अतएव समझा जाता है बिना दुःख के सुख नहीं मिलता [तुमने पहले इस प्रकार के अनेक कष्ट उठाये थे, इसी कारण अब सुख के अधिकारी हुए हो ॥ १० ॥

पति के अंग में परनारी के संग जनित चिह्न (निशान) देखकर ईर्षा के वशीभूत हो एक रमणी कहती है। रे निर्लज्ज ! क्यों मेरे मुख के निकट आकर बल पूर्वक चुम्बन करते हो ? तुम्हारी लज्जा कहाँ गई ?—रे शठ ! वस्त्र का आँचल छोड़। अब शपथ (कसम) का प्रयोजन नहीं है। अरे धूर्त ! अब क्यों अपनी सफाई दिखाते हो ? बीती हुई रात में तुम्हारे आने की बाट देखती हुई, जाग कर मैं क्षीण (अवसन्न) होगई हूं। जिसको प्यार करते हो—उसके पास जाओ। गंध हीन फूलों पर क्या भौरों की आसक्ति होसक्ती है ? ॥ ११ ॥

किसी युवती का पति विदेश में वास कर रहा है। एक समय एक पथिक के संध्या काल में उस पति-वियोगिनी रमणी के घर आकर रात बिताने की अभिलाषा प्रकट करने पर

युवती संकेत से मन का भाव प्रकाश करती है। गृह-स्वामी बहुत दिन हुए व्यापार के लिये परदेश को गया है। अब तक उस की कुछ खबर नहीं सुनी। आज सवेरे उसकी माता (मेरी सास) कन्या के पुत्र जन्म का समाचार पाकर (धेवते को देखने के लिये) जँवाई के घर गई है; मैं बालिका नव युवती हूँ—अतएव मेरे घर में रात के समय कैसे रहोगे? अब संध्या भी हो आई है—इस कारण हे पथिक! अन्य स्थान में चले जाओ। (इसका तात्पर्य यह है कि—अपने घर के बीच मैं अकेली रहती हूं—दूसरा व्यक्ति नहीं है—इस पर भी मैं नव युवती—पति वियोग से दुःखी हूं, अतएव तुम निर्विघ्न (बे खटके) यहां सुख पूर्वक रात में निवास कर सकते हो)॥ १२॥

किसी घर में एक पथिक आकर रात को टिका है। गृह-स्वामी और उसकी रसिका युवती पत्नी के सिवाय और कोई नहीं है। पति सारे दिन अपने काम में परिश्रम करने से थक कर सो गया है, तब उसकी रसिका पत्नी संकेत (इशारे) से पथिक को सम्बोधन करके अपने मन का अभिप्राय प्रकाशित करती है। यह देखो घोरतर यामिनी है, गहरे (घने) बादलों से चारों दिशा भीषण अंधकार से ढक रही हैं, मेरा पति अपने काम में परिश्रम करके कष्ट बोध होने से गहरी नींद में सोगया है; मैं बालिका हूं कंदर्प (काम) के डर से थर थर कांपती हूं, ग्राम में भी चोरों का बड़ा ही उपद्रव है, अतएव हे पथिक! नींद को त्याग दो॥ १३॥

किसी समय दो बन्धु एकत्र घूम रहे थे, सहसा एक सुंदरी युवती स्त्री पर उनकी दृष्टि पड़ी। तब एक जना दूसरे बंधु को सम्बोधन करके कहता है, मित्र! देखो यह रमणी व्याधे के समान है—इसकी दोनों भौंए धनुष की समान आयत (फैली हुई) हैं, कटाक्ष बाण स्वरूप हैं और मेरा मन हरिण की समान है, अर्थात् यह व्याध रूपिणी बाला भृकुटि रूप शरासन द्वारा कटाक्ष रूपी बाण चला कर मेरे मनरूपी मृग को विद्ध करती है॥ १४॥
एक व्यक्ति मार्ग में अपने एक मित्र को देखकर, पूछता है। सखे! इस समय कहाँ जारहे हो? मित्रने उत्तर दिया—"चिकित्सक (डाक्टर) के घर जारहा हूँ।" प्रश्न कर्त्ता ने पूछा 'वहाँ क्या प्रयोजन है?' मित्र ने उत्तर दिया, "रोग-शान्ति के लिये अर्थात् मुझको पीड़ा हुई है—उसकी चिकित्साके लिये जाता हूं।" बंधु ने फिर कहा सखे! जो सब तरह के

रोगों को शांत करदेती है, क्या ऐसी प्रियतमा तुम्हारे घर में नहीं है? यदि देह में वायु का प्रकोप हुआ हो,तो घर में जो प्रियतमा के कुचों को मर्दन करने पर ही आराम मिल जायगा। यदि पित्त बढ़गया हो, तो प्यारी के मुख सुधा का पान करो, आराग्य हो जाओगे और यदि देहमें कफ की प्रवलना हो–तो सुरत–कार्य में (सहवास कार्य में) प्रवृत्त होओ, केलि के श्रम से श्रांत होते ही श्लेष्मा (कफ) का प्रकोप शांत (नष्ट) होजायगा ॥ १५ ॥

एक मृगाक्षी सुंदरी को देख कर नायक कहता है–हे, हरिणयत-लोचने! पुनर्वार दृष्टि प्रदान कर अर्थात् मेरी ओर कटाक्ष पात कर, क्यों कि पूर्वकाल से जगत् में सुनता आता हूं कि विष ही विषकी महौषधि है। (तुम्हारे केवल एक वार मात्र कटाक्ष पात करने से ही मेरा शरीर जर जर होगया है–अब फिर कटाक्ष शर सन्धान न करने से मेरी रक्षा नहीं है)॥ १६ ॥

किसी व्यक्ति के काम–बाण से जर्जरित होने पर दूसरा एक व्यक्ति उसका ताप शान्त करने को उसके बदन में चन्दन लेपन करता है। यह देखकर एक रसिक पुरुष कहता है। अन्तः करण (हृदय) में कामाग्नि की जो लपटें प्रज्ज्वलित हो रही हैं, बाहर चन्दन लेपन करनेसे वह ज्वाला कैसे बुझेगी? कुंभकार (कुम्हार) अबे के ऊपर जो कींचड़ लहेसता है, वह उसको शांत करनेके लिये नहीं–बल्कि उससे तापकी वृद्धिही होतीहै१७

जिन सब बङ्ग वाराङ्गनाओं के नेत्रों की शोभा देखकर परमकृती कृष्णसारों ने देश त्याग दिया है अर्थात् वनवास किया है, उन सब बङ्ग-युवतियों के कुच–कुम्भ द्वारा पराजित होकर भी सब हाथी मद से मतवाले होरहे हैं [वस्तुतः यह विचित्र नहीं है] पराजित होने पर भी मूर्ख को प्रायः अभिमान छोड़ते नहीं देखा जाता ॥ १८ ॥

किसी युवती के वदन कमल में मनोहर बड़े बड़े नेत्र देख कर पुल-कित हो एक रसिक पुरुष कहता है। पुष्प के ऊपर पुष्प की उत्पत्ति होती है, यद्यपि यह बात सुनी जाती है; किन्तु प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देती। परन्तु हे बाले! तुम्हारे मुख कमल पर दो कमलों की उत्पत्ति कैसे हुई? १९

यौवन—अवस्था में ही किसी सुन्दरी के दोनों कुचा लम्बित होगये अर्थात् लटक पड़े हैं—यह देखकर एक युवक पूछता है। सुन्दरी! तुम्हारे यह दोनों स्तन (इस थोड़ी अवस्था से ही) क्यों लटक पड़े हैं? युवती ने उत्तर दिया। अरे मूर्ख! यदि (निरन्तर) निचला भाग खोदा जाय तो पहाड़ भी गिर जाते हैं ॥ २० ॥

एक रूपवती स्त्री को देखकर कामबाण द्वारा जर्जरित किसी पुरुष से उसका मित्र कहता है—रमणियों के स्तन मण्डल में अपूर्व अग्नि दिखाई देतीहै,किंतु इस अग्नि का कैसा आश्चर्य जनक गुण है, देखो ! दूर से शरीर को जलाती है और हृदय में संलग्न होने से शीतल मालूम होती है अर्थात् प्राणों में ठंडक पहुंचाती है ॥ २१ ॥

दोनों स्थानों के ढलक पड़ने से किसी रमणी को दुःखी भाव से रहता देख कर एक रसिक पुरुष उसको प्रबोध देता अर्थात् समझाता बुझाता है । हे पद्म पलाश लोचने ! दोनों स्तनों को ढरका हुआ देखकर वृथा खेद क्यों करती हो ? क्योंकि सर्व जन सन्तापहारी सहस्र किरणों वाले सूर्यदेव को भी ढरकना (गिरना) पड़ता है। बहुत ऊँचा उठने पर उसका गिरना अवश्य होने वाली बात है, तब फिर इस में विचित्रता क्या है ? ॥ २२ ॥

कुपित प्रणयिनी का मान भंग न कर सकने पर नायक कहता है—हे कमलनयने!यदि मेरे ऊपर तुम क्रोध करती हो और वही यदि तुमको प्रिय हो तो यही सही—इस विषय में और क्या कहूँ ? तथापि इतना अनुरोध करता हूँ कि इससे पहले जो मैंने तुमको गाढ़-आलिंगन और गाढ़तर चुम्बन किया था, मेरा वह गाढ़ आलिंगन और चुम्बन लौटा दो ॥ २३ ॥

किसी रसिक पुरुष को दूर से देख कर एक युवती द्रुत गति से जाती है । यह देख कर वह रसिक पुरुष कहता है—हे मन्मथ-चूत मंजरी ! हे पद्म पलाश लोचने ! मेरा मन हर कर कहाँ जाती हो ? यह क्या बिना राजा का राज्य है ? ॥ २४ ॥

कोई पति वियोग से दुःखी बाला अपनी विरह—यंत्रणा जनाने के लिये संकेत में प्रियतम को पत्र लिखती है—हे प्राण सुहृद् ! आपके निकट मेरा यह निवेदन है कि—आप जिस स्थान में हैं, उसी स्थान में और कुछ दिनों तक निवास कीजिये । क्योंकि इस समय (हमारा) यह देश रहने के योग्य नहीं है—यहां चन्द्रमा की किरणों से भी बदन जलने लगता है २५

उपरोक्त पत्र का उत्तर स्वामी लिखता है । हे कल्याणी ! तुम चन्दन के रस से अंगों को लिप्त करके और दो तीन दिन किसी प्रकार बिताओ। फिर मैं तुम्हारे निकट उपस्थित हो, बाहु-पाश द्वारा आलिंगन करके शीतरश्मि चन्द्रमा से भी अधिक तर शीतलता भोग कराऊंगा ॥ २६ ॥

॥ श्रृङ्गारतिलक समाप्त ॥

* ॐ हरिः *

पुष्पबाणविलास.

श्रीमद्गोपवधु स्वयं ग्रहणरिष्वङ्गेषु तुङ्गस्तन ।
व्यामर्दाद्गलितेऽपि चन्दन रजस्याङ्ग बहन सौरभम् ॥
कश्चित् जागर जात राग नयन द्वन्द्वः प्रभाते श्रियस् ।
विभ्रते काम्पि वेणुनाद रसिको जाराग्रणीः पातु वः ॥१॥

सर्वांग सुन्दरी नव युवती गोप रमणियों के कण्ठाश्लेष सहित गाढ़ालिंगन करने पर उनके पीनोन्नत पयोधरों की रगड़ से अंग का चन्दन छुट जाने पर भी जिनके देह में सुगन्धि प्रकट होती थी. रात में जागने के कारण जिनकी दोनों आँखें रक्तवर्ण इसी भाव से प्रातःकाल में जो अनुपम अंग श्रीसे सम्पन्न होकर वेणु बजाने में प्रवृत्त हैं, वे गोपिका जीवित वल्लभ जार चूड़ामणि वासुदेव आपका कल्याण करें ॥ १ ॥

जिनका विचित्र चरित्र जगत् में प्रसिद्ध है, जो सहस्र २ युवतियां के संग लीला करते हैं, उनकी उन्हीं सब लीलाओं के सहारे मैंने इस आदि रसात्मक काव्य के रचने की अभिलाषा की है। सत् कार्य की अधिष्ठात्री वाग्देवी मेरे प्रति प्रसन्न होवें ॥ २ ॥

दोनों मनोहर भौंओं से युक्त हरिनी की समान आँखों वाली रमणियों के प्राणवल्लभ जिस समय लोचन-पथ के पथिक हुए, तब उन नितम्बनियों को दोनों आँखें अत्यन्त खिल उठीं । प्राण प्यारे जब एकान्त में उपस्थित हुए, तब उस प्रमदा का अंग पुलक से कंटकित होगया । जब प्रियतम पीनोन्नत दोनों कुचा पकड़ने को उद्यत हुए, तो उसका सारा अग काँप गया । जिस समय कंठालिंगन में उद्यत हुए,तब उस सुमध्यमा के कमर में दृढ़ रीति से बँधा हुआ नीविबंधन [अधोवस्त्र] अपने आप ही खुल पडा ॥ ३ ॥

कुछेक खिले हुए कमल की समान मोहनमुखी हरिण नयना प्रियतमा ने ज्यों हो दूर से मुझे देखा-कि त्यों ही उसके पीन पयोधर से उत्तरीय

(दुपट्टा) खस पड़ा । तब वह समीपवर्त्ती धूर्त्त को अपना मनोभाव जानने में वंचित करके नयन समीपस्थ कपोल पर हथेली रक्खे हुए साग्रह भोग विलास सहित मुझको देखने लगी ॥ ४ ॥

हे अवले ! इस माधवीलता के मण्डपान्तर्गत निकुञ्जवाटिका को देखो ! लता जाल घन सन्निविष्ट भाव से निवद्ध होने से उसमें छिद्र का लेश मात्र भी नहीं है, फूलों के समूह ने स्वयं गिर कर इसके मध्य स्थल को घेर लिया है। इसके भीतरी भाग में जो विलासिनी रमणियाँ अव स्थित रहती हैं-उनके कानों को सुख दायक कल कण्ठ से वह समाकीर्ण होगा, अतएव प्रियतमे ! यह जन-शून्य निकुंज ही हमारे विहारका उपयुक्त स्थान है। सुतराँ-अब आप प्रसन्न हूजिये ॥ ५ ॥

पति के सहित एकत्र रमणी की सहचरी! रति चिह्नादि का संकेत करके सावधान करने के लिये कहा-सखि ! तुम्हारे होठों का अग्रभाग विम्बाफल को समान लाल वर्ण है, उसको देखकर तोतेनें अप ी चोंचसे उसका विद्ध किया। उसको पकड़ने के लिये तुम ज्योंही दौड़ीं कि त्योंहीं तुम्हारे वाल खुल गये। श्रम जनित पसीना निकलने से तिलक विसन गया है। देह यष्टि कंटक द्वारा क्षत विक्षत हुई है; अब क्यों वृथा श्रुति कठोर कंकण की झनकार करके हाथ कम्पायमान करती हो ! दुर्जय आरण्य शुक पक्षी पकड़ने के लिये वन वन में इस प्रकार विचरण करके कष्ट पाने का ही क्या प्रयोजन है ? और तुम जो फूल वीनने के लिये उद्यान में आई थीं-सो यह देखो-तुम्हारी ननदी आनकर वह फूल लिये जाती है ॥ ६ ॥

कोई रमणी प्राणप्यारे के साथ केलि करके गृह से वाहर निकलती है, इसी वीचमें एक रसिक पुरुष उसको देखकर कहता है। यह कामिनी एक हाथ से खुले हुए वाल पकड़ रही है और दूसरे हाथ द्वारा पयोधर मण्डल के ऊपर से खिसका हुआ वस्त्र सँभ लती है। ताम्बूल राग से इ के होठ अनुरञ्जित होरहे हैं अंग में चन्दन चर्चने की अल्प मात्रा शेष है-वाकी सब ही विसन गई है-यह मानों कामदेव की मूर्त्तिमान् जय श्री के समान प्रिय वल्लभ के मन्दिर से वाहर हो रही है ॥ ७ ॥

हे सखि ! इस समय प्राण वल्लभ दूर देश (प्रवास) में जाने के लिये उद्यत होरहे हैं, किन्तु मेरा चित्त चिन्ता से व्याकुल होगया है। यह देखो चंद्रमा सब लोगों को सुखी करता है किन्तु मेरे प्रति उसका अत्यंत शत्रुभाव सूचित होता है। इन कोकिलाओं के कल कंठ का कूजन

भी मेरे परिताप का कारणहै और इधर सखियाँ मृदु-मंद भावसे प्रवाहित होकर मेरे प्राण-हरने को उद्यत हुई हैं ।८

विरहिणी को विलाप करता देख कर प्रिय सहचरी कहती है, कोमलांगी के ताप को शमन (नष्ट) करने के लिये जो शय्या प्रस्तुत की गई थी, हस्त कमलों के संघर्षण से वह मैली होगई है। उसके देह ने भी कामाग्नि में दग्ध-विदग्ध होकर अंगारे की समानता धारण की है। अहो ! इस परिताप के विषयको वर्णन करे-ऐसी किसकी सामर्थ्य है?।९।

एक व्यक्ति दूर देश में यात्रा करने का संकल्प करके भी विलम्ब करता है, यह देखकर उसके एक बन्धु ने विलम्ब का कारण पूछा-तो उसने कहा-मेरे यात्रा काल में स्निग्ध रश्मि आकाश से उतर कर कमल पर शयन करती हैं, दोनों कुवलय से निर्मल मौक्तिक की माला च्युत होती हैं, कांचन-लतिका ने श्वेत वर्ण धारण किया है और दोनों पद्म-कोरक के स्पर्श से नवीन कुसुम-माला मलीन हुई जाती है। सखे ! इन सब उत्पातों के देखने पर आगे को अनिष्ट की आशंका से अब मैं विदेश जाने की इच्छा नहीं करता (विदेश में चले जाने से प्रणयिनीको कष्ट होता है, इस विचार से रसिक पुरुषने वह इच्छा त्याग कर बन्धु को चतुरता से उत्तर दिया, इसका तात्पर्य यह है कि मुझ को विदेश जाने में उद्यत देख कर प्रणयिनी की चिन्ता असीम होगई। वह हथेली पर गाल रखकर नीचा मुख किये बैठी है। उसके दोनों नेत्रों से आँसू की बूँदें टपकती हैं। मनस्ताप से सब अंगों ने पीला रंग धारण किया है। विरह-संतप्त दोनों पयोधरों के स्पर्श से कुसुम-माला मलीन होगई है-इस अवस्था में प्रियतमा को छोड़ कर विदेश चले जाने से निश्चय ही उसकी मृत्यु होजायगी। बस इसीलिये उस वासना को त्याग दिया है। प्रियतमा की इस प्रकार अवस्था देखकर मैं विदेश को एक पग भी नहीं रखना चाहता ॥ १० ॥

भेजी हुई दूती से अपने प्यारे का मिलन होगया है-यह जानकर नायिका उस दूती से कहती है। दूती ! तेरी पद्म-पलाश की समान दोनों आँखें अत्यन्त मलीन होगई हैं, तेरे माथे पर पसीने की बूँद जम कर मोती की समान विराजित हैं और तेरा श्वाँस-प्रश्वाँस भी जल्दी-जल्दी आता जाता है। हे कोमलाङ्गी मेरा काम सिद्ध करने के लिये इन शशाँक किरणों में जाने आने से तुमको बहुत थकावट मालूम होरही है ॥ ११ ॥

चपल मुखी हरिनी की समान चंचल आँखों वाली कोमलांगी नायिका दुरन्त बसन्त ऋतु में चक्रवाकी के समान वियोग की पीड़ा सहने में असमर्थ होकर कोमल पल्लव-निर्मित शय्या पर सोई हुई मृत्यु की आकांक्षा करती है। शय्या उसके निकट पुंजीभूत जलते हुए अँगारे की समान क्लेश दायक मालूम होती है ॥ १२ ॥

प्राणप्यारे के आने का समय बीत गया, तब दूती नायक के पास जाकर कहती है–कल कंठ कोकिलाओं के कल कूजन को निष्ठुरता-पूर्ण शशधर की तीक्ष्णता और दक्षिणी वायु का अदाक्षिण्य-(प्रतिकूलता) इन सबने एकत्र मिल कर देह-मात्र अवशिष्ट उस अबला को चरम (मृत्यु) दशामें पहुँचाने के लिये यत्न किया है। इस समय उसके अंगों को देखकर पहिचान सकना भी असंभव है। बड़े कष्ट से पहली आकृति को याद करना पड़ता है। तृणादि के खड़ खड़ाने से भी यही समझती है-कि प्राणनाथ आरहे हैं। सोचते ही उसके मनमें लुप्त आशा जाग उठती है। अतएव अब भी आप उसके पास जाने में बिलम्ब क्यों कर रहे हैं? ॥ १३ ॥

कोई प्रमदा अनेक प्रकार के गहनों से सम्यक् प्रकार अपने अंगों को विभूषित करके प्राण वल्लभ के आने की बाट देखती है। किन्तु किसी कारण से नायक के आने में विलम्ब हुआ, तब दुर्निवार कामानल से उस प्रमदा के अत्यन्त कातर होने पर उसकी चतुर सखी कहने लगी। हे कोमलांगी! अब आँसू मत टपकाओ। तुम्हारे आँखों का अंजन धुला जाता है। और लम्बे-लम्बे तीव्र श्वाँस मत छोड़ो! इस निश्वाँस के लगने से तुम्हारे कंठ में पड़ी नवीन माला मलीन हुई जाती है। शय्या पर भी अब मत लोटो। क्योंकि इस लोटने से तुम्हारा सब अंगराग छुटा जाता है। तुम्हारे प्यारे के आने का समय अब भी कुछ बीत नहीं गया है। वे निसन्देह आवेंगे। तुम मनमें दुविधा मत करना ॥ १४ ॥

किसी अबला के पास एक नायक ने दूती को भेजा है। संकेत समय के जानने का ही प्रयोजन है। इधर नायका जिस स्थान में अब स्थान (वास) करती है वहाँ अन्या य अनेक रमणियाँ उपस्थित हैं, सुतरां-कौशल से दूती को संकेत का समय समझाती है। उस चंचल नेत्रा चन्द्र-मुखी रमणी ने सखियों में सब को उत्पादन पूर्वक भौंहों के इशारे से जार की भेजी दूती को इस प्रकार संकेत जनाया। अपनी आँखों का अंजन पीकेस दोनों पयोधरों में स्थापन पूर्वक इन दोनों कुचाओं पर लम्बायमान रत्नों की माला को कपड़े के आँचल से ढक लिया।

इससे समझाया कि–सायं कालीन शशाँक–किरणों के लुप्त होजाने पर जिस समय घोर तिमिर राशि (अंधकार) का आविर्भाव होगा–उसी समय मैं संकेत स्थान में जाऊंगी ॥ १५ ॥

एक नव युवती को देखकर किसी पुरुष के मनमें भोग–वासना का संचार होने से वह पुरुष अपने एक सखा से कहता है—सखे ! कौन आदमी इस प्रकटित यौवना रमणी की सेवा नहीं करता है ? देखो ! शशाँक राशि ने इस सुलोचना के बदन को आघ्राण किया है। कोक नद-श्री सादर इसका हाथ पकड़ कर क्रीड़ा करती है, पल्लव की कान्ति भी इसके दानों चरणों की सेवा करती है ॥ १६ ॥

किसी प्रौढा नायिका ने प्रियतमा के निकट जिस दूती को भेजा था, वह दूती विश्वास घातिनी होकर उस नायक के साथ संगत हुई है। उसको रति से थका देखकर प्रौढा नायका स्तुति के बहाने से उसकी निन्दा करती है। हे दूती ! मैंने जो-जो कह दिया था, तुमने वह सब ही सम्पन्न किया है। तुम्हारी समान परम हितू दूसरी दिखाई नहीं देती। हे कोमलांगी ! मेरे लिये तुमको बड़ा परिश्रम पड़ा है। जो हो तुम्हारा यह परिश्रम भी सफल हो। क्योंकि विना परिश्रम के शुभ कार्य सम्पन्न नहीं होता ॥ १७ ॥

किसी धीरा नायिका के ईर्षा और अभिमान युक्त मौन भाव से रहने पर उसका प्रियतम एक सखी से कहता है--सखि ! अब देखता हूं, कि प्रियतमा केश पाश में बारंबार माला नहीं खेंचती, अब बारंबार मृग-नाभि (कस्तूरी) का तिलक नहीं लगाया जाता, संग अब खेल तमाशे भी नहीं करती, अधिक क्या–कौनसी अप्रिय घटना हुई है–इसको पूछने पर भी उत्तर नहीं मिला। यह तो विषम मान दिखाई देता है ॥ १८ ॥

किसी नायक की प्रणयिनी अब दूसरे आदमी से फँसगई है और उससे बात तक भी नहीं करती। अकस्मात् उस को एकान्त में पाकर उस नायक ने कहा–अबले ! तुम बालोचित मुग्धता के कारण भीत होकर पहले गुह्य आलिंगन, गाल चुम्बन–और स्तन–स्पर्शादि सब बातों को क्या भूल गई ? जो तुम्हारे संग अब बात तक करना कठिन है ? जो हो इसके लिये भी मैं कष्ट अनुभव नहीं करता। किन्तु अब जो तुम्हारा दर्शन तक मिलना दुर्लभ हो रहा है--बस यही मुझको अत्यन्त दुःख है ॥ १९ ॥

जिस चित्त चुराने वाली रमणी का प्रफुल्ल मुख मंडल देख कर कलंकी चन्द्रमा भी लजाता है, जिसके वाक्य गृह--स्थित सिखाये हुए

तोते के वाक्य को भी परास्त करते है, जिसके निश्वास द्वारा पद्म गंध पूर्ण वायु भी तिरस्कृत होता है, वही अबला आपके विरह में इस समय अत्यन्त दुर्दशा को प्राप्त हुई है । २० ॥ उस कल कंठा के श्रुति-कठोर शब्द करने पर भी वीणा की झनकार के समान शब्द होता है। यदि मधुर हास्य करती है तो शशांक किरण भी मलीन बोध होती है। उस की आँखों के निकट नवीन कमल भी मलीन जान पड़ता है और उसकी सौन्दर्य कान्ति के निकट विद्युल्लता का रँग भी फीका पड़ जाता है ॥ २१ ॥

कोई प्रियवल्लभ अन्यरमणी के घर रात विता कर प्रातः समय आया-तो उसकी नायिका स्तुति और निन्दा के मिस कहती है । आप जो कहते हैं–तुम्हारे ऊपर हो मेरा महान् अनुराग (प्रेम) है, सो बात सच्ची है। क्यों कि आप मुझे देखने के लिये सवेरे ही मेरे घर आये हैं । आपने हृदय के भीतर कुंकुम–पत्र लिखने की समान रक्तिम राग धारण किया हैं । रात को जागने के कारण राग और माथे पर लाक्षारस राग दिखाई दे रहा है ॥ २२ ॥ कोई प्रणयिनी प्राणप्यारे से कहती है,–प्राणनाथ! यह बसंत काल उपस्थित है । इस समय में आप विदेश जानेका कष्ट उठा रहे हैं,किन्तु तो भी मैं इससे नहीं डरती हूं । और भी देखिये । रात्रि-कालमें फूलोंकी सुगन्धिसे सुगन्धित सरोवर-वायुके सहित निर्मल चंद्रमा की छटा चारों ओर फैल रही है--इस से भी मैं नहीं घबराती । मन का अभिप्राय यह है कि आप इच्छा करने पर विदेश जा सकते हैं, किन्तु मुझको भावी संताप अवश्य ही होगा, जीवन धारण करना मुझको कठिन होजायगा–यदि मेरे प्राण रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझते हो, तो आप विदेश की यात्रा मत कीजिये ॥ २३ ॥

तव प्राणवल्लभ ने कहा–हे मानमयी ! अब तुम शीघ्र सखी के दोषसे उत्पन्न हुआ अभूत पूर्व क्रोध छोड़ कर अपने चंद्र बदन का मुझको दर्शन दो । मेरे नेत्रों की जड़ता दूर हो । प्रियतमे ! तुम अमृत धारा की समान श्रुति-मधुरवाणी उद्गीरण (उच्चारण) करो । मेरे दोनों कान तृप्त होवें और मेरे प्रति स्निग्ध कटाक्ष पात करो । मेरा समस्त सन्ताप दूर होवे ॥ २४ ॥

प्रणय--कलह करके कोई प्रियतम क्रुद्ध होगया है, उसका दर्शन नहीं मिलने से कोई नायिका परिताप की अग्नि द्वारा दग्ध होती है । यह देख कर उसकी एक सखी दूसरी एक रमणी के निकट कहती है । प्राण-वल्लभ के सन्मुख उपस्थित होने पर भी हमारी प्रिय सखी उसके प्रति

किंचित् भी दृष्टि पात नहीं करती और फिर प्राणप्यारे के चले जाने पर सन्तुष्ट होती है और यदि आत्मीय जन प्रियतम को लाते हैं--तो सखी मौन भाव धारण करती है अर्थात् कुछ बोलती नहीं, और फिर जब प्राण-नाथ जाने की इच्छा करते हैं--तब सखी के प्राण गमनेच्छु होकर कंठ में आजाते हैं ॥ २५ ॥

एक कामी पुरुष अपने किसी समान अवस्था वाले मित्र के निकट चित्त को चंचल करने वाली एक युवती का विषय वर्णन करता है।

उस रूपवती के वचन सुनने पर कोकिल का कुञ्जन भी कानों को कठोर मालूम होता है। जब तक उसके वदन को सुंदरता दृष्टि गोचर नहीं हुई थी, तब तक ही चंद्र कान्ति के प्रति सबकी रुचि थी। जब तक उसके कमल सरीखे नेत्र दिखाई नहीं दिये थे, तब तक ही हरिण का नयन निमीलन उत्कृष्ट बोध होता था; और जब तक वह युवती नेत्रों की पथिक नहीं हुई थी--तब तक ही काँचन लतिका सुन्दर मालूम होती थी ॥ २६ ॥

इति श्री महाकवि कालिदास कृत पुष्पबाण
विलास काव्य का भाषानुवाद समाप्त।

॥ ॐ हरिः ॥

महाकवि कालिदास कृत ।

विक्रमोर्वशी

(नाटक-भाषानुवाद)

प्रकाशक—

पं० हरिशंकर शिवशंकर शर्मा,
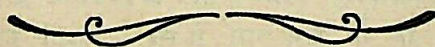
अध्यक्ष—हिमालय डिपो,

तथा—हिमालय-'प्रेस'

मुरादाबाद यू० पी०
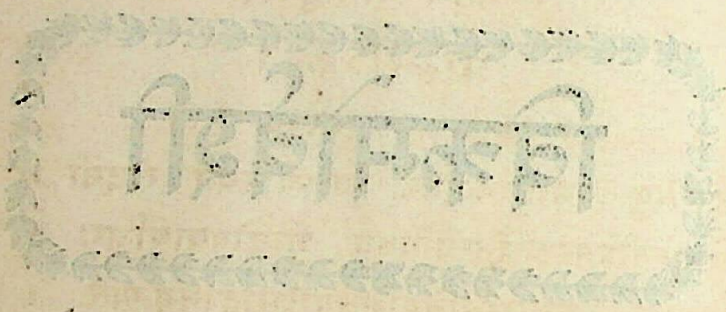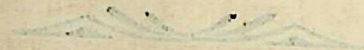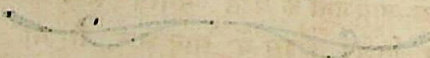
श्रीगणेशाय नमः ।

विक्रमोर्वशी

(नाटक–भाषानुवाद)

प्रथमोऽङ्कः ।

वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्यस्थितं रोदसी ।
यस्मिन्नीश्वरइत्यनन्यविषयः शब्दोयथार्थाक्षरः ॥
अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते ।
स स्थाणु स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसा यास्तुवः ॥

वेदान्त में जो अद्वितीय पुरुष (ब्रह्म) कहे गये हैं; जो स्वर्ग-मर्त्य को व्याप्त करके विराजित हैं; जिनमें अनन्य गामी ईश्वर शब्द प्रयुक्त होने से यह शब्द वास्तविक अक्षर हुआ है, मुमुक्षु गण प्राणयानादि वायु को संयम करके हृदय के भीतर जिनको खोजते हैं; और अटल भक्ति योग के द्वारा जिनको सहज में ही प्राप्त किया जाता है, वे महेश्वर आप को कल्याण प्रदान करें ।

(नान्दी के पीछे सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्र—अब बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है ।(नैपथ्य की ओर देखकर) मारिष * इस सभा के सभासदों ने प्राचीन कवियों के समस्त प्रबंध अभिनय देखे हैं । मैं अब कालिदास–विरचित नूतन त्रोटक नाटक + का

---

* नट के कथन में आर्यजनों के प्रति 'मारिष' सम्बोधन प्रयुक्त होता है ।

× × त्रोटक--नाट्य विशेष । इस में सात आठ नौ वा पांच अङ्क रहते हैं सुर, नर इन दोनों का सम्बन्ध इस में विद्यमान है और प्रत्येक में विदूषक की विद्यमानता दिखाई देती है, लक्षण यथा--

"संसप्ताष्ट नव पञ्चाङ्क दिव्य मानुष संश्रयम् । त्रोटकं नाम तत् प्राहुः प्रत्येकं सविदूषकम् "

अभिनय करूंगा । अतएव मुख्य २ पात्रों से अपने स्थान में अवस्थान करने को कहो ।

(नटी का प्रवेश)

नटी-आपकी जो आज्ञा हो।

सूत्र--तो मैं सत्कुलोत्पन्नचौंसठ कलाओं के ज्ञाता समस्त सभ्य मण्डल को मस्तक झुकाकर प्रणाम पूर्वक विज्ञप्तिकरता हूं कि--हे महोदय गण ! प्रणयी जनों के प्रति दया वशतः अथवा श्रेष्ठ वस्तु के प्रति सन्मान दिखाने के लिये आप सावधानी से कालिदास-रचित प्रवन्ध को सुनें।

(नेपथ्य में) आर्यगण ! रक्षा करो ! रक्षा करो !

सूत्र-अहो ! सहसा आकाश मार्ग में विमान चारियों के रोने के सी ध्वनि सुन पड़ती है । (सोचकर) ओः ! समझ लिया । वही होगा । नर-सखा नारायण ऋषि ऊरू देश से उत्पन्न सुर—वाला उर्वशीकैलासनाथ कुवेर के पास गई थी; लौटने के समय उसको आधे मार्ग में देवताओं ने वन्दी कर लिया है । इसी कारण उसकी संगिनी अप्सरायें शरण मिलने के लिये आर्त्तनाद करती हैं ।

(सूत्रधार और नट का प्रस्थान)

(इति प्रस्तावना)

(विना ही जवनिका गिरे अप्सराओं का प्रवेश)

अप्सरा ।-हे आर्यगण ! रक्षा करो ! रक्षा करो !

जो देवताओं के पक्षपाती अथवा जो गगन तल में विचरण करते हैं, वे हमारी रक्षा करें।

(विना ही यवनिका पतन राजा और सारथी का प्रवेश)

राजा--अब रोने का प्रयोजन नहीं हैं । मैं पुरूरवा केवल सूर्योपस्थान (प्रातःकाल की सूर्य-पूजा) सम्पन्न करके आता हूं । बताओ किस व्यक्ति से तुम्हारी रक्षा करनी होगी ?

रंभा—असुरों के उपद्रव से ।

राजा—क्या असुर लोग तुम्हारे ऊपर अत्याचार करके अपराधी हुए हैं !

रंभा—महाराज ! सुनिये देवराज इन्द्र ने किसी व्यक्ति की तपस्या से डर कर जिसको अपना सुकुमार बाण स्वरूप किया है, जिसकी सुंदरता देखकर रूप गर्विता पार्वती को भी लज्जा बोध होती है, जो अमर पुरी की अलंकार रूपिणी हमारी प्रिय सखी है; वह उर्वशी कुबेर पुरी से चित्रलेखा के संग लौट रही थी, मार्ग के बीच एक असुर उसको लेकर चला गया ।

राजा—वह निठुर असुर किस ओर को गया है ? जानती हो ?

अप्सरा—ईशान कोन की ओर को गया है ।

राजा—तो शोक छोड़ दो । मैं तुम्हारी सखी को लौटा लाने का यत्न करूंगा ।

अप्सरा—(हर्ष से) चन्द्रवंश में उत्पन्न आपके लिये यही कार्य उपयुक्त है ।

राजा—तुम किस स्थान में मेरी बाट देखोगी ?

अप्सरा—इसी हेम कूट पर्वत के शिखर पर रहूँगी ।

राजा-सारथे ! ईशान कोण की ओर शीघ्र गति से घोड़ों को चलाओ ।

सूत-आयुष्मन् ! आपकी जो आज्ञा ! (उसी प्रकार वेग से घोड़ों को चलाना)

राजा-(रथ के वेग को वर्णन करके) साधु ! साधु ! इस रथ की चाल से तो पूर्व प्रस्थित गरुड़ के समीप भी पहुंचा जा सकता है । रथ के पुरोवर्त्ती मेघ मण्डल चक्र द्वारा चूर्णीकृत होकर पृथ्वी की रेणु के समान हुए जाते हैं । वेग की अधिकता से सब अरों में मानों दूसरी अर श्रेणी विन्यस्त होती है । घोड़ों के स्थित विशाल चामर चित्र लिखे की समान जान पड़ते हैं और रथ पर स्थित ध्वजाओं की कतार वायु वेग से दोनों पार्श्व में जाने पर भी वायु वेग से जान पड़ता है—मानों बीच में ही अवस्थित हैं ।

[सारथी समेत राजा का जाना]

सहजन्या—सखी ! राजर्षि चले गये; अतएव आओ—हम भी निर्दिष्ट स्थान में जाँय

मेनका—सखी ! ठीक है चलो ।

[यह कहकर हेमकूट के शिखर पर आरोहण]

रंभा—वे राजर्षि क्या हमारे हृदय में चुभे हुए काँटे को निकालेंगे ? [सखी उर्वशी के विरह से हमारे हृदय में जो शोक रूपी काँटा विद्ध हो

रहा है, प्रिय सखी का उद्धार करके महाराज क्या हमारे हृदय से उस काँटे को निकाल फेंकेगे ?]

मेनका—सखी ! इस विषय में सन्देह नहीं।

रंभा—दानवगण अत्यन्त दुर्द्धर्ष हैं।

मेनका—जब युद्ध हुआ था, तब देवेन्द्र ने मध्यलोक (पृथ्वी) से अत्यन्त सन्मान पूर्वक इन राजर्षि को ले जाकर देवताओं की विजय के लिये सेना के आगे कर दिया था।

रंभा—वे सर्वथा विजयी होवें।

मेनका—[कुछ काल चुप रहकर] सखी ! तुम विश्वास रक्खो। यह देखो—गगन मार्ग में विराजित हरिण केतन सोमदत्त नामक उनका मनोहर रथ दिखाई दे रहा है। मुझको जान पड़ता है कि—महाराज विकल होकर नहीं लौटे हैं।

[इकटक नेत्रों से सब का रथ को देखना]

[रथारूढ़ राजा-सारथी और चित्रलेखा का दाहिना हाथ पकड़े तथा भय से]

[नेत्र बन्द किये हुए उर्वशी का प्रवेश]

चित्र—सखी ! सावधान हो ! सावधान हो !

राजा—सुन्दरी ! सावधान हो ! सावधान हो !

हे भयशीले ! दानवों का डर दूर हो चुका है। वज्रधारी इन्द्र की महिमा ही त्रिभुवन की रक्षा करती है, रात्रि के अन्त में नलिनी जिस प्रकार अपने पद्म नेत्र खोलती है, तुम भी उसी प्रकार अपने अपाङ्ग विस्तृत नेत्र खोलो।

चित्र—हाय ! कुछेक निःश्वास प्रश्वास चलने से ही सखी जीवित जान पड़ती है, अब तक भी इसको होश नहीं हुआ है।

राजा—तुम्हारी सखी बहुत ही डर गई है। क्योंकि इसके पीनोन्नत दोनों कुचाओं में जो मन्दार कुसुम की माला विराजित है—उसके बार बार उच्छ्वसित (ऊँचे स्वांस) होने से इसका गुरुतर हृत्कंप सूचित होता है।

चित्र—[कातरता के सहित] सखी उर्वशी ! धीरज के साथ अपनपे को स्थिर करो ! धीरज गँवा देने पर तुम अप्सरा के अनुपयुक्त होकर हँसी का पात्र बन जाओगी।

राजा—भय से उत्पन्न हुई कप-कपी अब भी इसके कुसुम सरीखे

कोमल हृदय को नहीं छोड़ती । क्योंकि दोनों कुचाओं के बीच-स्थित वक्षाञ्चल धीरे उच्छ्वसित (ऊँचे स्वांस) होने से हो भय का लक्षण प्रकाशित होता है ।

[उर्वशी का चैतन्य होना]

राजा—सौभाग्य की बात है कि-तुम्हारी प्रिय सखी ने चेतना प्राप्त करी । देखो-चन्द्रोदय होने पर रात्रि जिस प्रकार धीरे धीरे अंधकार-रूपी घूंघट से छूट जाती है, रात्रि का लीन अग्नि शिखा जिस प्रकार धूम पुञ्ज से मुक्त होकर समुज्वल हो उठती है, तुम्हारी शोभनाङ्गी प्रिय सखी उसी प्रकार अन्तर्गत मोह से क्रमशः मुक्त होकर तट सम्पात में कलुषित गंगा को नाईं चित्त की प्रसन्नता को प्राप्त हुई है ।

चित्र-सखी उर्वशी ! सावधान हो । दुःखी के प्रति दयाशील महाराज के द्वारा परास्त होकर देव-शत्रु दानवगण निराश होगये हैं ।

उर्वशी—(दोनों आँखें खोलकर) मुझको क्या संग्राम के पारदर्शी महेन्द्र ने अनुग्रहीत किया हैं ? (क्या देवराज ने कृपा करके मुझ को दैत्यके हाथ से छुड़ाया है ?)

चित्र०—नहीं, महेन्द्र ने नहीं-बल्कि महेन्द्र का समान प्रतापशाली राजर्षि पुरूरवा ने तुमको अनुग्रहीत किया है ।

उर्वशी—(राजा की ओर देखकर स्वगत) दैत्यराज के कौर (ग्रास) से रक्षा करके इन्होंने मुझ को उपकृत किया है ।

राजा-(उर्वशी की ओर देखकर स्वगत) अप्सरा नारायण ऋषि को लुभाने के लिये जाकर इस ऊरु संभव उर्वशी को देखकर जो लज्जित हुई थीं-यह युक्ति संगत ही है । मेरे विचार में यह तपस्वी से उत्पन्न विदित नहीं होती । क्योंकि-इसके सृष्टि-विषय में कान्ति प्रदाताचन्द्र ही प्रजापति (स्रष्टा) हुए हैं । शृंगार रस प्रधान मदनदेव अथवा चैत्रमास ही इसके सृष्टि कर्त्ता होंगे; नहीं तो जो वेदाभ्यास में सवदा प्रायः जड़ होगये हैं; स्रक् चन्दनादि विषयों के भोगमें जिनका कौतुहल नहीं है-वे प्राचीन ऋषि किस प्रकार इस मनोहर रूपको उत्पन्न करने में समर्थ होते?

उर्वशी-हे चित्रलेखे ! सखियें इस समय कहाँ हैं ।

चित्र०—अभयदाता महाराज जानते हैं ।

राजा-(उर्वशी की ओर देखकर) तुम्हारी सखियाँ इस समय महा-विषाद में अभिभूत (ग्रसित) होरहो हैं । देखो सुन्दरी ! अपनी इच्छा वशात् एक बार मात्र नयनों के समक्ष उपस्थित होने पर भी जिसके

दोनों नेत्र सार्थक होते हैं, वह पुरुष भी जब तुम्हारे न देखने से उत्कण्ठित हो उठता है, तब जिनसे संग सौहार्द चिर बद्ध मूल है, वे सखी गण जो तुम्हारे न देखने से उत्कण्ठित होंगी-इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

उर्वशी—(स्वगत) महाराज ! आपकी बातें अमृत से सनी हुई हैं। अथवा चन्द्रमा में ही अमृत विद्यमान रहता है। इसमें अचंभा क्या ? (प्रकाश भाव से) इस कारण ही (सखियों को देखने के लिये) मेरा मन उत्कंठित हुआ है।

राजा—(हाथ के संकेत से दिखाकर) हे श्रेष्ठ अंगवाली ! मनुष्य जिस प्रकार ग्रहण मुक्त चन्द्रमा को उत्सुक नेत्रों से देखा करते हैं, (यह देखो) तुम्हारी सखियाँ भी उसी प्रकार हेमकूट के शिखर में अवस्थित होकर तुम्हारे मुखचन्द्र की ओर देख रही हैं।

(उर्वशी का सतृष्ण नेत्रों से सखियों को देखना)

चित्र०—हे सखी ! क्या देखती हो ?

उर्वशी—जो सुख दुःख में समान सुखी दुःखी हैं, उन्हीं को दोनों नेत्रों से पान करती हूँ।

चित्र०—(मधुर हँसी से) वे कौन हैं ?

उर्वशी—प्रणयिजन।

रम्भा—(आनन्द से देखकर) यह तो विशाखा के सहित सोमदेव की समान राजर्षि पुरूरवा चित्रलेखा समेत प्यारी सखी उर्वशी को लेकर उपस्थित हुए हैं।

मेनका—(विशेष भाव से देखकर) दो प्रिय वस्तु उपस्थित हैं, एक तो (शत्रु के हाथ से) फिर छीनी हुई सखी-और दूसरी अक्षत देह राजर्षि।

सहजन्या—सखी ! तुम तो कहती थीं कि दानव अत्यन्त दुर्जय हैं ?

राजा—सारथे ! यह उसी हेमकूट पर्वत का शिखर है-रथ अवतारण करो अर्थात् रथको उतारो।

सारथी—आयुष्मान् की जो आज्ञा (सारथी का रथको उतारना)

(उर्वशी का रथ उतारने के समय वेग को अधिकता के कारण डर कर राजा को पकड़ना)

राजा—(आप ही आप) अहो ! मेरा विषय भोगके कारण मनुष्य देह धारण करना सार्थक हुआ। क्योंकि इस बड़ी बड़ी आँखों वाली

उर्वशी के रथ संक्षोभ-हेतु मेरे अंगमें अंग छुआने से मानों कामदेव कर्त्तृक मेरे अंग रोमाञ्चित और अंकुरित होगये।

उर्वशी—(लज्जा से) सखी ! कुछेक दूसरी ओर को हटजाओ।

चित्र०—नहीं-नहीं-मैं हट नहीं सकती।

रंभा—ऐसे हितकारी राजर्षि का (प्रत्युद्गमनादि द्वारा) सन्मान करेंगी।

अप्सरागण—यही करना उचित है।

(सब का प्रत्युद्गमन)

राजा—सारथे ! रथ खड़ा करो । ऋतु सम्बन्धिनी श्री जिस प्रकार लतिकाओं के साल मिलती है, उसी प्रकार यह उत्कण्ठिता सुभ्रू-उर्वशी इस समय सखियों से मिलेगी।

सूत—जो आज्ञा (रथ को रोकना)

अप्सरागण—सौभाग्य से महाराज विजयी हुए हैं।

राजा—सखी के संग मिलने से तुमने भी विजय प्राप्त की है ।

उर्वशी—(चित्रलेखा का हाथ पकड़ कर रथ से अवतरण पूर्वक) अरी ! मुझको गाढ आलिंगन करो । फिर जो सखियों से भेंट होगी, मुझको यह आशा नहीं थी ।

(सखियों का उर्वशी को आलिंगन करना)

मेनका—महाराज सर्वथा पृथ्वी का पालन करें।

सूत—आयुष्मन् ! वृहत् रथ ध्वज दिखाई देता है । जान पड़ता है—तपे हुए कांचन वर्ण के अंगद (बाजूबंद) धारण किये कोई पुरुष तड़िन्माला मण्डित मेघ की समान आकाश मार्ग से पर्वत के शिखर पर उतर रहा है।

अप्सरागण-अहो ! (गन्धर्व राज) चित्ररथ आरहे हैं ।

(चित्ररथ का प्रवेश)

चित्र—(राजा के निकट उपस्थित होकर) भाग्य वश आप अपने महा विक्रम के प्रभाव से सुरराज (इन्द्र) का परमोपकार साधन करके सन्मानित हुए हैं।

राजा-यह क्या गंधर्वपति उपस्थित हैं ? (रथ से उतर कर प्रियसखा का मंगल तो है ? (आपस में एक दूसरे के हाथ को स्पर्श करना)

चित्ररथ—वत्स! केशि नामक के द्वारा उर्वशी के हरण होने का समाचार सुन कर देवराज ने उसको छुड़ाने के लिये गंधर्व सेना को आज्ञा दी थी फिर मैं विमानचारियों के मुख से आप की कीर्त्ति को सुन कर आपके निकट उपस्थित हुआ हूं। अब आप इस उर्वशी को संग लेकर देवराज के संग भेंट कीजिये। आपने उनका बड़ा हित साधन किया है। देखिये, पूर्व काल में नारायण ऋषि ने इस उर्वशी को उत्पन्न करके देवेन्द्र को देदिया है; प्रिय सखा! अब आप इसे असुर के हाथ से छुड़ा कर उन्हीं को समर्पण कर दीजिये।

राजा सखे! नहीं—ऐसा नहीं हैं। यदि देवराज की सहायता करने वाले शत्रु को विजय करें तो वे देवेन्द्र की महिमा जानेंगे। क्योंकि सिंह की गिरि गुहा व्यापी प्रतिध्वनि भी हाथियों का संहार करती है।

चित्र-यह बात युक्ति संगत है। किन्तु अपनी बड़ाई सुनकर निरुत्साह भाव सोना वीर पुरुषों का भूषण स्वरूप है।

राजा सखे! इस समय देवराज से भेंट करने का अवसर नहीं है। आपही उर्वशी को लेजाकरसुरपति को समर्पण कर दीजिये।

चित्र०। आपका जो अभिप्राय हो। तुम इधर आओ। इधर आओ।

सब का प्रस्थान।

उर्वशी। (एकान्त में) सखि चित्र लेखे! मैं उपकारी राजर्षि के संग बात चीत नहीं कर सकी सुतरां तुम ही मेरा मुख स्वरूप हो जाओ।

चित्र०। [राजा के पास जाकर] महाराज! उर्वशी आप को, विदित कराती हैं कि महाराज के आज्ञा देने पर मैं आप की प्रिया के समान महती कीर्ति देवलोक में लेजाने को बासना करती हूँ। राजा पुनर्दर्शनार्थ गमन करें।

[गन्धर्व के सहित अप्सराओं का गमन]

मार्ग में प्रस्थान।

उर्वशी [उत्पतन भंग अभिनय पूर्वक] अहो! लता जाल में मेरी वैजयन्तिका नामक एकावली मोतियों की माला उलझ गई है। सखि चित्र लेखे! माला लता से खोल दो।

चित्र ले०-[देख कर हँसती हुई] ओः यह तो बड़े ही दृढ़ रूप से उलझो है। मुझ में खोलने की सामर्थ्य नहीं है।

उर्वशी हँसी की आवश्यक्ता नहीं है। तुम खोलदो !

चित्र—(इसका छुड़ाना मेरे पक्ष में कष्ट कर जान पड़ता है--तो भी छुड़ाये देती हूं।

उर्वशी—(मधुर हास्य करके) अपनी बात को तो जरा याद कर ?

राजा—(स्वगत) हे लतिके ! तुमने उर्वशी के जाने में क्षण काल बाधा देकर मेरा प्रिय कार्य किया है। क्योंकि इस वक्र नयना के पुनर्वार मुखचन्द्र फेरने से मुझे फिर उसका मुख देखने को मिला।

(चित्रलेखा कर्त्तृक एकावली का बन्धन मोचन और उर्वशी का लम्बे लम्बे श्वाँस छोड़ते हुए राजा और सखियों की ओर देखना)।

सूत— आयुष्मन् ! देवराज का जिन दैत्यों ने अपराध किया था, आपका वायवास्त्र को अधोभाग के लवण समुद्र में फैंक कर महासर्प के विवर--प्रवेश की समान फिर तरकश में प्रविष्ट हुआ है।

राजा—तो तुम रथको रोको मैं उतर पड़ूं।

(सारथी का वैसा ही करना और राजा का उतरना)

उर्वशी—(सतृष्ण नेत्रों से राजा की ओर देख कर) अहो ! फिर उपकारी राजर्षि का दर्शन पाया।

गंधर्व और सखियों समेत उर्वशी गई।

राजा—(उर्वशीके गमन मार्ग की ओर उन्मुख होकर) अहो ! मदन देवने उर्वशी रूप अलभ्य वस्तुको प्राप्त करने की अभिलाषा की है। अहो ! राजहंसी जिस प्रकार खण्डिताग्र मृणाल से सूत्र डोरा निकालती है, उसी प्रकार यह सुराङ्गना मेरे शरीर से मनको बल पूर्वक खेंचकर गगन मार्ग में लिये जाती है।

(सब का जाना)

पहला अंक समाप्त।

——०——

दूसरा अंक।

(विदूषक का प्रवेश)

विदू० ।-क्या आश्चर्य है ! क्या आश्चर्य है ! निमन्त्रित मनुष्य जिस प्रकार परमान्न (उत्तमोत्तम) भोज्य-पदार्थ देखकर जिह्वा को नहीं रोक सकता-इस मनुष्यों से परिपूर्ण स्थान में मैं भी उसी प्रकार राज--रहस्य को बिना प्रकाशित किये जीभ के रोकने को समर्थ नहीं हूं । अतएव जब तक राजा धर्मासन पर विराजमान् नहो, तब तक मैं देवच्छंद नामक निर्जन (सूने) प्रासाद में से जाकर वहां अवस्थान करूं ।

(परिक्रमण और उपवेशन पूर्वक दोनों हाथों से मुख ढककर अवस्थान। निपुणिका नाम्नी चेटी का प्रवेश)

चेटी —(स्वगत) देवी काशिराज दुहिता ने मुझको आज्ञा दी है '—कि 'निपुणिके ! जब से महाराज सूर्य देव की उपासना करके लौटे हैं--तब वे शून्य हृदय की समान दिखाई देते हैं, अतएव तुम आर्यमाणवक के निकट जाकर महाराज की इस उत्कण्ठा का कारण जान आओ, अतएव किस प्रकार इस समय उस ब्राह्मणाधम के निकट से यह बात मालूम करूं ? अथवा तृणलग्न नीहार जल जिस प्रकार बहुत देर तक तृण पर संलग्न नहीं रहता-मेरे विचार में राज-रहस्य (राजा का गुह्य भेद) भी उसी प्रकार उस ब्राह्मण के हृदय में अधिक देर तक नहीं ठहरेगा । (मैं सहज में ही उसके हृदय से बात बाहर निकाल सकूंगी) अब उसको ढूंढ़ना चाहिये। (परिक्रमण और विदूषक को देखकर) अहो ! यह चित्र--लिखित वंदर की समान आर्य माणवक किस बात की चिंता करते हुए इस शून्य स्थान में बैठे हैं ? अब इनके पास पहुंचूं (पास जाकर) आर्य ! प्रणाम करती हूं।

विदू०—तुम्हारा कल्याण हो ! (स्वगत) इस दुष्ट चेटी को देखकर तो राजा की गुप्त बातें मानों मेरा हृदय चोर कर बाहर निकली पड़ती हैं (कुछेक मुख उठाकर प्रकाश भाव से) हे निपुणके ! संगीत कार्य को छोड़कर किस काम में प्रवृत्त हुई हो ?

चेटी—देवी की आज्ञानुसार आपसे भेंट करने के लिये आई हूं।

विदू०—माननीया देवी ने क्या आज्ञा दी है ?

चेटी—देवी ने कहा है 'मेरे प्रति आर्यमाणवक का जैसा अनुग्रह है, उससे वे कभी भी मुझको व्यथित और दुःखित देखने की इच्छा न करेंगे।

विदू०—निपुणिके ! प्रिय सखियों ने क्या देवी के प्रति किसी प्रकार का विरुद्धाचरण किया है ?

चेटी—जिस रमणी के लिये महाराज अत्यन्त उत्कण्ठित हैं. उसका नाम लेकर ही उन्हों ने देवी (महारानी) को सम्बोधन किया है (उत्कण्ठा वश) राजा को इस प्रकार चित्त वैकल्य और भ्रम उत्पन्न हुआ है, कि उन्हों ने देवी को सम्बोधन करने जाकर भूल से उसी रमणी का नाम उच्चारण कर डाला।

विदू०—(स्वगत) अहो ! माननीय सखा ने अपने आप ही अपना रहस्य (गुप्तभेद) खोल दिया। मैं ब्राह्मण जाति हूँ, अब मैं किस प्रकार अपनी जीभ को रोक कर रक्खू। (प्रकट) ओः ! वह उर्वशी देवयोनि अप्सरा है, उस को देखकर ही महाराज उन्मत्त प्रायः हो उठे हैं। वे केवल देवी को ही कष्ट नहीं देते हैं—बल्कि मुझ को भी निराहार (भूँखा) रखकर दारुण क्लेश दे रहे हैं।

चेटी—महाराज का सारा गुह्य भेद खुल गया। अब चलूं—देवी से यह वृत्तान्त कहूं।

विदू०—निपुणिके ! मेरे कथनानुसार देवी काशिराज की कन्या से कहना कि मैं इस मृग-तृष्णा से प्रिय सखा को निवृत्त करने की अनेक चेष्टा करके थक गया हूँ। यदि महाराज देवी के मुख कमल का दर्शन करेंगे--तो निवृत्त होने की संभावना है।

चेटी—आर्य की जैसी अनुमति हो।

(चेटी चली गई)

नैपथ्य में वैतालिक। महाराज की जय हो ! जय हो महाराज ! आप और भगवान् सूर्यदेव--इन दोनों का उद्योग और अधिकार समान है। क्योंकि भास्कर देव ने प्रकाश प्रदान करके जिस प्रकार भुवनान्त तक अंधकार के समूह को दूर किया है; आप भी उसी प्रकार दर्शन मात्र से ज्ञानोपदेशादि द्वारा प्रजा पुञ्ज का अज्ञानरूपी अंधकार दूर करते रहते हैं और ग्रह नक्षत्रादि ज्योतिष्क मण्डल के अधीश्वर भगवान् दिनमणि जिस प्रकार मध्याह्न--समय गगन--तल के मध्य देश में विश्राम लेते हैं,

आप भी उसी प्रकार दिन के छटे भाग के समय विश्राम लिया करते हैं।

विदू०—(उसी ओर को कान लगा कर) यह तो प्रियसखा धर्मासन से उठकर इसी ओर को आ रहे हैं—अतएव अबमैं इनके पास पहुँच जाऊँ।

(विदूषक गया)

(इति प्रवेशक)

(उत्कण्ठित राजा और विदूषक का प्रवेश)

राजा—दर्शन मात्र से ही कामदेव ने अपने अमोघ बाणों के आघात से मेरे हृदय को मार्ग बना दिया है, सुतरां—सुरलोक सुन्दरी उर्वशी उसी मार्ग से मेरे हृदय में प्रवेश हुई है।

विदू०—माननीया देवी काशिराज--दुहिता को अत्यन्त ही मर्म--पीड़ा हुई है।

राजा (विदूषककी ओर देखकर)तुमने तो वे गुप्त बातें छिपा रक्खी हैं न ?

विदू० (स्वगत) दासी कन्या निपुणिका ने मुझ को ठग लिया है; नहीं तो महाराज यह बात क्यों पूछते ?

राजा—तुम चुप चाप क्यों हो ?

विदू०—सखा मैंने जीभ को इतना संयत (काबू में) कर लिया है कि मुझ में आपके प्रश्न का उत्तर तक देने की शक्ति नहीं है।

राजा--यह उचित ही है। जो हो--अब किस प्रकार से आत्म विनोदन करूं ? अर्थात् अपना जी बहलाऊँ ?

विदू०—महाराज ! पाकशाला में जांय- चलिये !

राजा—वहां क्या है ?

विदू०—वहाँ पांच प्रकार का उत्तम अन्न खाने को मिलेगा। मोदक-शर्करा और पर्पट (पापड़) द्वारा उत्कंठा निवारण कीजिये।

राजा—अभिलाषित रसों का स्वाद लेकर तुमतो वहां अपने आत्मा को आनन्दित कर सकोगे, किन्तु मेरी वाञ्छित वस्तु वहां दुर्लभ है, मैं किस प्रकार चित्त को विनोदित (आनन्दित) करूंगा ?

विदू०—आप भी निःसन्देह माननीया उर्वशी के दर्शन मार्ग में उपस्थित होंगे।

राजा—किस प्रकार से ?

विदू०—मेरे विचार से उर्वशी आपके लिये दुर्लभ नहीं रहेगी।

राजा—उसकी मनोहरता और सुन्दरता अलौकिक है।

विदू०—इस विषय में मुझको भी कौतूहल उत्पन्न हुआ है, उस माननीया उर्वशी के रूपकी क्या आवश्यकता है, मैं ही अद्वितीय रूप में विद्यमान हूं।

राजा—मैंने उसके हरेक अङ्ग की सुन्दरता का वर्णन नहीं किया है, तुम संक्षेप से सुनो।

विदू०—मैं सावधान हूँ।

राजा-सखे! उसका देह अलंकारों का भी अलंकार है। प्रसाधन संस्कार का भी प्रसाधन विशेष है। हे सखे! उसका देह उपमान का भी उपमान विशेष है।

विदू०-सखे! आप मृग-तृष्णा रसाभिलाषी चन्द्र की समान मनोहर सौन्दर्य की ही वासना करते हैं।

राजा—[नलिनीदलादि] विविध शीतल पदार्थों के सेवन को छोड़कर मुझको सन्ताप निवारण का दूसरा उपाय दिखाई नहीं देता। अतएव तुम मुझको प्रमद वन का मार्ग दिखादो।

विदू० [स्वगत] इसके अतिरिक्त और गति हो क्या है? [प्रकट] इधर आईये, इधर आईये-[यह कहकर परिक्रमण पूर्वक] इस प्रमोद्यान का प्रांत भाग-किसी के न बताने पर भी बहते हुए दक्षिण वायु द्वारा समझ में आजाता है।

राजा-[दक्षिण वायु कहने से] वायु का विशेषण युक्त संगत हुआ है। देखो! यह वसँत-वायु वसंत-लक्ष्मी को पुष्पोत्पादन में समर्थ और कुंद-लता को नचाकर स्नेह-दयावशतः मेरे निकट मानो कामार्त्त की समान जान पड़ता है।

विदू०—इसी प्रकार अभिनिवेश हो। [परिक्रमण पूर्वक] यही तो प्रमोद वन है-आप इस वनमें प्रवेश कीजिये।

राजा—सखे! तुम पहिले प्रवेश करो।

(दोनों का प्रवेशभिनय)

राजा—[डर दिखा कर] सखे! मैंने समझा था कि इस प्रमदोद्यान में प्रवेश करनेसे मेरा विषाद दूर होजायगा, किन्तु बात उसके विपरीत हुई। धार में बहता हुआ व्यक्ति धार की विपरीत ओर तरने से जिस प्रकार उसको शांति नहीं मिलती; इस उद्यान में प्रवेश करके मुझको भी उसी प्रकार शांति नहीं मिलती।

विदू०-कैसे?

राजा—मेरे चित्त ने असुलभ (दुर्लभ) वस्तु की अभिलाषा की है, चित्त को उससे निवृत्त नहीं कर सकता हूँ। प्रथम तो कामदेव ने मुझको अत्यंत ही कातर कर डाला है, इस पर भी फिर मलयानिल द्वारा जिस के पीले रंग वाले सब पत्ते टूट गये हैं, इस प्रमद-वन-स्थित उन सब आम्रवृक्षों ने पुष्पांकुर दिखाने आरम्भ किये हैं,सुतरां मेरा चित्त स्थिर न होकर उत्तरोत्तर और भी व्याकुल हुआ जाता है।

विदू०-आपको अनुताप करने की आवश्यकता नहीं है। अभीष्ट सम्पादक अनंग देव शीघ्रही आपके प्रति अनुकूल होंगे।

राजा—ब्राह्मण का वचन शिर माथे।

[यह कह कर परिक्रमण]

विदू०—महाराज देखिये ! देखिये ! वसंत का आविर्भाव होने से प्रमद वन की कैसी मनोहर शोभा हुई है।

राजा—मैं उसको प्रतिपद में ही देख रहा हूं। कुरुवक के फूलोंका अग्र भाग (नौंक) नारियों के नखों की समान पाटल वर्ण है, दोनों पार्श्व में श्यामवर्ण-परम कोमल-मनोहर लाल रंग के अशोक-पुष्प खिलने को हैं, नई आमकी मंजरी में पराग उत्पन्न होने से उसके अग्र भाग ने कपिलवर्ण धारण किया है।

अतएव हे सखे ! इस समय वसन्त मुग्ध-दशा और यौवन-दशा-इन दोनों के बीच में विराजमान है।

विदू०—महाराज ! यह देखिये-काले रंग की मणिशिला में शोभित माधवीलता का मण्डप है;भ्रमर-गण पद-समूह द्वारा उसके पुष्प समूह विघटित करने से जान पड़ता है, मानों माधवीलता का मण्डप पुष्प-राजिद्वारा आपकी अर्चना कर रहा है। अतएव आप बैठ कर उसको अनुग्रहीत कीजिये।

राजा—तुम्हारी जो इच्छा (दोनों का बैठना)

विदू —तो अब आप इस स्थान में बैठकर मनोहर लताओं की शोभा देखते हुए उर्वशी की चिन्ता से उत्पन्न हुई उत्कण्ठा को दूर कीजिये।

राजा—(लम्बा श्वाँस छोड़ कर) सखे ! यद्यपि यह उद्यान-लतिका बहुत से पुष्प और मनोहर-शाखाओं से सुशोभित है, किन्तु तो भी उर्वशी को देखने के लिये उत्सुक मेरे नेत्र इसको देखकर धैर्य-धारण नहीं कर सकते।

विदू--(हँसकर) अहिल्या-कामुक इन्द्र का जिस प्रकार वज्र सहायक है, मैं भी उसी प्रकार उर्वशी की उत्कण्ठा से आकुल आपका सहायक हूँ। दोनों जने ही उन्मत्त हैं।

राजा--सखे ! तुम क्या इस विषय में कुछ भी चिन्ता नहीं करते ?

विदू०--(चिन्ता मग्न) यह लो मैं चिन्ता करता हूं। आप विलाप करके अब मेरी समाधि को भंग न करें। मैं कार्य का देखने वाला हूँ; (जिससे आपको उर्वशी मिल जाय, इसका ही उपाय देखता हूं)

राजा--उस पूर्ण चन्द्रमुखी का सहज में मिलना कठिन है। मुझ में मदन का विकार भी अनिर्वचनीय है, किन्तु अभीष्ट की सिद्धि फलोन्मुखी होने से ही मेरे मनको एक बार धीरज मिलेगा।

(यह कह कर कामार्त भाव से अवस्थान)

(आकाश मार्ग में उर्वशी और चित्रलेखा का प्रवेश)

चित्र०--सखि उर्वशी-अनिर्दिष्ट कारण से कहां जा रही हो ?

उर्वशी--(काम वेदना का अभिनय दिखाकर लज्जित भाव से) सखि ! हेमकूट के शिखर पर जबलता-जाल में मेरी एकावली उलझी-तब मैंने कहा था 'सखि ! खोलदो' तुमने हँस कर कहा था-'दृढ़ रूप से है-छुटा नहीं सकती' तो अब मुझसे क्यों पूछती हो कि-अनिर्दिष्ट कारण से कहाँ जाती हो ?

चित्र०—तो क्या उन राजर्षि पुरूरवा के निकट जाती हो ?

उर्व०--इसी इच्छा से लज्जा को मारा है।

चित्र०--वहाँ क्या तुमने पहले ही किसी को भेज दिया है ?

उर्वशी--अपने हृदय को भेज दिया है।

चित्र०--तो भी मनको स्थिर करो।

उर्वशी--मदन ने मुझ को इस कार्य में नियुक्त किया है-तो स्थिर होगा कैसे ?

चित्र०—तो फिर मेरा इस विषय में कोई उत्तर नहीं है।

उर्वशी--तो प्रिय सखी ! जिससे आकाश में कोई विघ्न उपस्थित न हो, उसी प्रकार से मुझे मार्ग दिखाओ।

चित्र०--सखि ! विश्वास रक्खो ! भगवान् देव गुरू ने हम दोनों को जिस अपराजिता नाम्नी शिखा बन्धनी विद्या का उपदेश दिया है, उससे हम दोनों ही देव-शत्रुओं से अधर्षणीय होगई हैं अर्थात् वे देव-शत्रु हमको मर्दन नहीं कर सकते।

उर्वशी—उस विद्या का प्रयोग क्या तुम को याद है ?

चित्र—मेरा हृदय सब ही जानता है (मुझको याद है)

उर्वशी—हृदय सब जानता है सो तो ठीक है, किंतु अत्यंत डर के कारण मेरे हृदय में स्थिर विश्वास उत्पन्न नहीं होता।

(यह कह कर परिक्रमण)

चित्र—सखि ! देखो-देखो ! हम प्रतिष्ठान नगर के शिखालंकार स्वरूप राजर्षि के भवन में पहुंच गईं। यहां भगवती जाह्नवी (गंगा) यमुना के साथ मिल कर पवित्र और पुण्य-जनक निर्मल जल द्वारा मानों तुम्हारा दर्शन कर रही हैं।

उर्वशी—(सतृष्ण नेत्रोंसे देखकर) (स्थानान्तरस्थ स्वर्गमें आगई) यही बात तुमको कहनी उचित है। अरी ! दुःखी के ऊपर दया करने वाले राजर्षि इस समय कहां हैं ?

चित्र०—नन्दन वन के एकांश की समान (मनोहर) इस प्रमद वन में उतर कर जाना जायगा (यह कह कर दोनों का उतरना)

चित्र०—(राजा को देखकर हर्ष से) सखी ! यह देखो-प्रथम उदय हुए भगवान् चन्द्रमा जिस प्रकार ज्योत्स्ना की प्रतीक्षा करते हैं, उसी प्रकार राजर्षि भी तुम्हारी बाट देख रहे हैं।

उर्वशी—(देख कर) अरी ! मैंने राजर्षि को जब पहले देखा था, अब यह उससे भी अधिक प्रिय दर्शन जान पड़ते हैं।

चित्र—यह बात ठीक है। तो आओ पास चलें ?

उर्वशी—इस समय पास नहीं चलूंगी। तिरस्कारिणी विद्या द्वारा गुप्त रीति से पास जाकर सुनूंगी कि समीप रहने वाले सखा से महाराज एकान्त में क्या कथोपकथन (बातचीत) करते हैं ?

चित्र०—तुम्हारी जैसी रुचि (दोनों का उसी भाव से अवस्थान)

विदू०—महाराज ! दुर्लभ प्रणयी जनों के समागम का उपाय मैंने सोच लिया है।

राजा—(मौन भाव से अवस्थान)

उर्वशी—कौन वैसी धन्य रमणी है-जिस की खोज करके महाराज आत्म विनोदन कर रहे हैं।

चित्र०—सखी ! ध्यान में अब विलम्ब क्यों है ? (अभी ध्यान योग के द्वारा सब तथ्य जान लो)

उर्वशी—सहसा ध्यान योग के द्वारा सब विषय जान लेने में डर लगता है (क्यों कि ध्यान योग से यदि ज्ञात हो कि महाराज किसी

दूसरा रमणी में आसक्त हैं, तो फिर मेरे क्लेश की सीमा न रहेगी। इसी लिये डर लगता है)

विदू॰—महाराज! मैं यह बात कर रहा हूं कि दु र्लभ प्रणयीजनों के समागम का उपाय मैंने सोच लिया है।

राजा—सखे! क्या उपाय है? कहो!

विदू॰—आप स्वप्न समागम कारिणी निद्राका सेवन कीजिये अथवा चित्र पट में उर्वशी की मूर्त्ति अंकित करके दर्शन कीजिये, तो आत्मा को आनन्दित कर सकोगे।

उर्वशी—हृदय! आश्वस्त हो [धैर्यधर]

राजा—यह दोनों (बातें) ही युक्ति के विरुद्ध हैं। देखो—मेरा हृदय कामवाण से मानों शल्य विद्ध होरहा है। सुतरां—किस प्रकार से मैं स्वप्न-समागम कारिणी निद्रा का सेवन करूं? और उस चंद्रमुखी को चित्र पट में अंकित करके देखने में आसूँ उमड़ आनेके कारण उसको नहीं देख सकूंगा। सुतरां सखे! यह दोनों उपायही मेरे पक्षमें विफलहैं।

चित्र—सखी! महाराज की बात सुना?

उर्वशी—सुनी। किंतु इससे भी मेरा हृदय तृप्त नहीं होता।

विदू—मेरी बुद्धि की शक्ति (पहुंच) यहीं तक है।

राजा—(श्वांस लेकर) जो व्यक्ति मेरे अत्यन्त दारुण मानसिक कष्ट को नहीं जानता है अथवा अपनी शक्ति के बल से मेरा अनुराग जान कर भी मुझको अपमानित करता है (मुझको प्रणय के अयोग्य विचारता है) पंचवाण उस उर्वशी रूप व्यक्ति में मेरा निष्फल समागम रूप मनोरथ स्थापन करके कुशली हो (उर्वशी को न पाने से मेरी मृत्यु निश्चय है और ऐसा होने पर ही परम शत्रु पंचवाण की मनो कामना सिद्ध होगी)

उर्वशी—(सखी की ओर देखकर हा धिक्! हा धिक्! महाराज मुझको ऐसी निठुर हृदय वाली विचारते हैं। मैं सामने जाकर अपनपे को दिखा भी नहीं सकती। अतएव अपनी शक्ति के बलसे भोज पत्र उत्पादन पूर्वक उसपर पत्रिका लिखकर इनके निकट फेंकना चाहती हूँ।

चित्र॰—मेरी भी यही सम्मति है।

[उर्वशी का पत्र लिखकर फेंकना]

विदू॰—अहो! अहो! यह क्या? साँपकी केंचूली क्या हमको ग्रास करने के लिये गिरी है?

राजा (देखकर) यह साँपकी केंचुली नहीं (वरन) भोजपत्र पर लिखी हुई पत्रिका है।

विदू०-अहो ! निस्सन्देह सौभाग्य-वश आपका अनुताप सुन उर्वशीने भोजपत्र पर अनुराग सूचक पत्रिका लिखकर फेंकी है।

राजा—दैव के लिये असाध्य कुछ नहीं है।

[पत्र ग्रहण पूर्वक पाठ करके हर्षसे]

सखे ! तुम्हारा अनुमान ही ठीक है।

विदू०—उसमें क्या लिखा है-सुनना चाहता हूँ।

उर्वशी-आर्य ! साधु ! साधु ! सत्यही आप एक नागर है।

रंभा—सुनो ! (पत्र-पाठ) 'प्रभो ! हे सुभग ! आपने जिस प्रकार मुझको निठुर हृदय वाली और अपनेमानसिक क्लेशसे अनभिज्ञ (अजान) विचारा है, मैं भी उसी प्रकार आपको अनभिज्ञ विचारती हूं। अधिकन्तु आपके वियोग से मुझको सुकुमार (कोमल) पारिजात की शय्यापर भी सुख मालूम नहीं होता। नन्दनवन का पवन मेरे शरीर में लगने से वह अग्निके समान जान पड़ता है।'

उर्वशी—महाराज क्या कहते हैं ? देखना है।

चित्र—मलीन कमल-नाल के समान अंग द्वारा क्या उन्होंने वह बात नहीं कही ? (महाराज का शरीर मलीन कमल नाल के समान दुबला होगया है, तुम्हारे विरह में जो उनकी यह दशा है, इसका सहज में ही अनुमान होजाता है)

विदू०—मुझको भूख लगी है इस अवस्था में जो आपको आश्वास का कारण मिला है-यही मेरे पक्ष में स्वस्ति वाचन की समान हुआ है।

राजा—आश्वास का कारण क्या है--कहता हूं ? देखो--इस पत्र में जो सब बातें सन्निवेशित हुई हैं, वे मनोहर अर्थ युक्त ललित रचना शक्ति और प्रिया की समान अनुराग प्रकाशक हैं, सुतरां--तुम विचार कर देखो--मैं जिस समय ऊपर की ओर को देखता हूं--तो जान पड़ता है कि मानो मदिरेक्षणा प्रियतमा के मुखसे मेरा मुख मिलरहाहै।

उर्वशी—आप दोनों का ही विचार एकसा है।

राजा—सखे ! अंगुली के पसीने से सब अक्षर लुप्त होगये हैं, अतएव प्रियतमा का फेंका हुआ पदार्थ तुम अपने हाथ में धारण करो।

विदू०—तो क्या अब यह माननीया उर्वशी आपके मनोरथ रूपी वृक्ष का फूल दिखा कर फल के सम्बन्ध में अन्यथा करती है ?

उर्वशी—सखी ! मैं इस समय महाराज के निकट स्वयं उपस्थित होने में असमर्थ हूं-अतएव मैं जब तक आत्मा को स्थिर (शान्त) न कर सकूं-तब तक तुम स्वयं उनके पास जाकर मेरे अभिप्रायानुसार सब बातें निवेदन करो ।

चित्र०—यही हो (यह कह कर तिरस्कारिणी विद्या दूर कर राजा के निकट गमन पूर्वक) महाराज की जय हो ! जय हो !

राजा (संभ्रम और सादर) तुम कुशल से तो आईं ? (पार्श्व भाग में दृष्टि डाल कर) भद्रे ! पूर्व में जाह्नवी के संग यमुना का संगम देख आनन्द प्राप्त किया था, अब तुमको प्रिय सखी से रहित देख कर वसा आनन्द मालूम नहीं होता)

चित्र०—पहले बादलों की कतार दीखती है । पीछे विद्युल्लता (बिजली) का आविर्भाव होता है ।

विदू०—(सरक कर) यह क्या उर्वशी नहीं है ? तो उर्वशी की सहचरी होगी ?

राजा—यह आसन है-बैठो ।

चित्र०—(बैठ कर) उर्वशी ने मस्तक झुका कर प्रणाम पूर्वक महाराज से निवेदन किया है ।

राजा—क्या अनुमति (आज्ञा) की है ?

चित्र०—हमारी इस दैत्य जनित पीड़ा में राजर्षि ही आश्रय-स्थान थे, दुर्जय असुर के हाथ से छूटा कर अब मैं आप के दर्शन-जनित काम बाण से कष्ट पारही हूं; महाराज के लिये मेरा मन व्याकुल हो उठा है-पुनर्वार आपकी दया का पात्र बनना चाहती हूं ।

राजा—सखी ! तुल क्या कहती हो कि वह प्रिय दर्शना उर्वशी मेरे लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हुई है ? किन्तु उसके लिये इस पुरूरवा के अंतर में जो यातना हो रही है, उसको क्या वह देख रही है ? वस्तुतः सखि ! हमारी यह प्रणय समान भाव से ही उत्पन्न हुई है । अतएव अब जिस से तपे हुए लाहे--के साथ तप्तलोह--खण्ड का मिलन हो, वही करने का यत्न करो ।

चित्र०—(उर्वशी के पास जाकर) सखी ! इस ओर को आओ (तुम्हारे प्राण प्यारे की भयंकर निगूढ़ काम-वेदना देखकर मैं उनकी दूती बनने को विवश हुई हूं ।

उर्वशी (डर से कांप कर) हे अनवहिते ! तुम सहज ही मुझको छोड़कर दूसरे की हुई जाती हो !

चित्र—(मधुर हास्य से) कौन किसको छोड़ता है—यह मुहूर्त्त मात्र में ही जान लिया जायगा। तुम शोक त्याग कर स्थिर हाओ।

उर्वशी—(डरती हुई राजा के पास जाकर लज्जित भाव से) महाराज की जय हो! जय हो!

राजा—[सहर्ष] सुन्दरी! जब तुम मेरी जय उच्चारण करती हो—तो मेरी जय ही हुई है। जय शब्द पहले केवल इन्द्र में ही निवद्धथा, अब वह पुरुषांतर में (मुझमें) भी उपस्थित हुआ है [उर्वशी का हाथ पकड़ कर आसन पर बैठाला]

[मधुर हास्य से उर्वशीकर्तृक प्रणाम]

विद्०—आपका मंगल हो।

नैपथ्य में देवदूत! चित्रलेखे! उर्वशी से शीघ्रता करनेको कहो। भरत मुनिने श्रृंगारादि आठ रसात्मक लक्ष्मी स्वयम्बर नामक जिस रूपक को रचकर तुम्हारी शिक्षा के लिये प्रदान किया था, इस समय देवेंद्र ने लोक पालों के सहित मिलकर उस सुललित अभिनय के देखने की इच्छा की है।

[सबका सुनना-उर्वशी का विषाद प्रकाश]

चित्र०-सखि! देवदूत की बात सुनी? अब महाराज की आज्ञा लेकर चलो।

उर्वशी-(श्वांस लेकर) मुझ में अब बात कहने की शक्ति नहीं है।

चित्र०-महाराज़ उर्वशी निवेदन करती है। 'यह व्यक्ति (मैं) पराधीन है महाराज को अनुमति चाहती है, ज़िससे देवराज इन्द्र के निकट अपराधी न हो, वही कीजिये।

राजा-(अत्यन्त कष्ट से वाक्य स्थापन पूर्वक) मैं तुमसे देवेन्द्र की आज्ञा उल्लंघन करने को नहीं कह सकता। किन्तु इस व्यक्ति की (मेरी) याद रहे।

[विरह-दुख का अभिनय पूर्वक राजा की ओर देखते देखते सखी के सहित उर्वशी गई]

राजा-[श्वांस छोड़कर] मेरे नेत्र अब विफल होगये। [जब कि उर्वशी आंख ओट होगई, तब नेत्रों का रहना ही वृथा है]

विदू०-[राजा को पत्र दिखाने को इच्छा करके]।

अहो! भोज (आधा शब्द कहकर स्वगत] क्या आश्चर्य है, उर्वशी को देखकर विस्मय होने से मेरे हाथ से वह भोज पत्र कहां गिर गया, यह नहीं जान सका!

राजा—तुम क्या कहना चाहते थे ?

विदू०—सखे! मैं यह कहना चाहता था कि आप विरह के दुःख से देह-त्याग न करें। आपमें उर्वशी का अनुराग दृढ़ रीति से वंध गया है। वह यहाँ से जाकर इस प्रेम बन्धन को कभी ढीला न करेगी।

राजा—मैं भी अपने मनमें यही विचारता हूँ। वह जब जाने लगी, तव उसने अपना शरीर पराधीन (देवेन्द्राधीन) होने पर भी स्तन कम्पन और श्वाँस त्याग के सहित स्वाधीन हृदय मुझ में ही संलग्न कर दिया है।

विदू०—(स्वगत) मेरा हृदय काँपता है-कदाचित् किसी समय माननीय प्रिय सखा भोज पत्र की वात छेड़ बैठें?

राजा—सखे! इस समय किस उपाय से उत्कण्ठित चित्त को बह-लाऊँ? (याद करके) हाँ-वह भोजपत्र तो दो?

विदू०—(चारों ओर को देखकर विषाद से) हाय! वह क्यों दिखाई नहीं देता? महाराज! वह दिव्य भोज पत्र, जिस-जिस मार्ग को उर्वशी गई है-निश्चय उसी मार्ग को चला गया है।

राजा—(असूया से) मूर्ख आदमी के सभी कामों में असावधानी रहती है।

विदू०—अब खोज की जायगी (उठकर) यहाँहै -या वहाँ है (इस प्रकार ढूँढते ढूँढते नृत्य)

(यथा संभव परिजनों सहित औशीनरी देवी और चेटी का प्रवेश)

देवी—हे निपुणिके! क्या आर्य माणवक के संग आर्य पुत्र को लता-मण्डप में प्रवेश करते तैंने सत्य सत्य ही देखा है?

चेटी—मैंने क्या इससे पहले कभी भी स्वामिनी के निकट मिथ्या-बात कही है?

देवी—तो अब लता बिटप की ओटमें होकर उनकी विश्वस्त बात चीत सुनूं; तब तुमने जो कहा है-वह सत्य है या नहीं, यह देख लिया जायगा।

चेटी—देवी! जो रुचि हो।

देवी—(घूम कर सामने को देख) निपुणिके! नये वस्त्र के टुकड़े को समान एक पत्र दक्षिणी पवन से उड़ आया है; यह क्या है?

चेटी—(चिन्ता करके) स्वामिनी ! यह निःसन्देह भोज पत्र है-वायु वेग से उलट-पलट होने के कारण दिखाई देता है कि इसमें अक्षर लिखे गये हैं। अहो ! उड़ते-उड़ते आनकर देवी की पायजेब में ही हिलगा। (उठाकर) आप इसको पढ़िये।

देवी—पहले देखलो ! यदि विरुद्ध न हुआ, तो सुनूँगी।

चेटी—(वैसा ही करके) स्वामिनी ! इस भोज पत्र पर वह लोकापवाद ही प्रकाशित होरहा है। मुझको मालूम होता है कि महाराज को लक्ष्य करके उर्वशी ने ही इस काव्य की रचना की है। आर्य माणवक की असावधानी से ही यह हमारे हाथ लग गया है।

देवी—अब इसका अर्थ ग्रहण करो। (पढ़ो)

(चेटी का पत्र पढ़ना)

देवी—यह उपहार लेकर ही उस अप्सरा-कामुक राजा को देखूंगी।

चेटी—देवी की जो अनुमति।

राजा—हे भगवन् ! वसन्त सखे मलयानिल! तुम अपनपे को सुरभित करने के लिये लतिकाओं की सुगन्धि पूर्ण पुष्प-रेणु हरण करते हो; किन्तु प्रियतमा उर्वशी ने प्रेम पूर्ण मुझको अपने हाथ का लिखा जो भोज पत्र दिया था, उसके हरण करने से तुमको क्या लाभ हुआ ? तुम जानते हो कि कामार्त्त पुरुष इस प्रकारके पत्र और चित्रपटादि शत-शत विनोद-पदार्थों के द्वारा ही जीवन धारण किया करते हैं, अतएव पुनः प्राप्ति की आशा में जो कामार्त्त व्यक्ति इस भाव से रहता है तो जगत् के प्राण स्वरूप होकर आपको उसका प्राणनाश नहीं करना चाहिये।

चेटी—देवि ! देखिये-देखिये-इस भोज पत्र को ही ढूँढ़ भाल होरहा हैं।

देवी—तुम चुपचाप रहो। देखूं (कहाँ तक क्या होता है ?)

विदू०—सखे ! यह क्या ? मैं प्रस्फुटित नील-पद्म-कान्ति मयूर पुच्छ से वञ्चित हुआ।

राजा—मैं मन्द भागी हूँ-सर्वथा नष्ट ही हुआ अर्थात् सब प्रकार से मारा पड़ा।

देवी—(सहसा सामने आकर) आर्यपुत्र ! आवेग का प्रयोजन नहीं। (देखो) यह वही भोज पत्र हैं।

राजा—(संभ्रम से स्वयम्) यह क्या? देवी (लज्जित भाव से प्रकट) देवी का आना कुशल से तो हुआ ?

देवी—इस समय मेरा आना दुरागत है (उपवन विहारी आपके प्रतिकूल है)

राजा—(एकान्त में) सखे ! अब प्रति विधान का क्या उपाय है ?

विदू०—(एकान्त में) चोरी गई चीज के साथ चोर पकड़ा गया है, अब दूसरी बात के द्वारा इसके प्रतिविधान का उपाय नहीं है ।

राजा—(अपवारित होकर) मूर्ख ! यह हंसी करने का समय नहीं है। (प्रकट) मैं इस पत्र को नहीं ढूंढता था बल्कि कंठ में धारण किये कवच को ढूंढरहा हूँ।

देवी—अपने सौभाग्य को छिपाना ही युक्ति संगत है।

विदू०—देवि ! शीघ्र महाराज के लिये भोज्य पदार्थ ले आइये--क्योंकि पित्त के शमन होने पर ही यह सुस्थ होंगे ।

देवी—निपुणिके ! इस प्रिय सखा ब्राह्मण ने विलक्षण आश्वासन दिया। अब क्या प्रियतम केवल अन्न की चिंता में ही निमग्न होकर अनुताप करते हैं ?

विदू०—देखो--सब ही विचित्र (भाँति भाँति के) भोजन से सुस्थ होते हैं।

राजा—मूर्ख ! बल पूर्वक मुझको अपराधी करता है ?

देवी—प्रभुता शाली पुरुषों का (कुछ भी) अपराध नहीं है; मैं हीं इस समय अपराधिनी हूं--क्योंकि विरुद्धाचरण करके आपके सामने आई हूं। निपुणिके ! इस ओर आओ !

(सरोष देवी का प्रस्थानोद्योग)

राजा—निसन्देह ही मैं अपराधी हूं। हे रंभोरू ! प्रसन्न हो जाओ। रोष त्याग दो। सेवा करने योग्य व्यक्ति के कुपित होने पर किंकर कैसे निरपराध होगा ?

(यह कह कर चरण-तल में गिरना)

देवी—हे शठ ! मेरा हृदय निश्चय ही छोटा है, मैं अनुनय (विनय) ग्रहण नहीं करती, तुम दक्षिण नायक हो--तुम को जो पीछे अनुताप करना पड़ेगा, इसी लिये डर रही हूं ।

चेटी—देवी इधर आइए !

राजा को छोड़ कर परिजनों के संग देवी का जाना ।

विदू०—माननीय देवी वर्षा कालीन नदी के समान अप्रसन्न होकर चली गईं । अतएव महाराज अब उठिये !

राजा—(अनमने होकर) सखे ! मेरी विनती सफल नहीं हुई। देखो–अनुराग विना प्रियजन की करी हुई विनती रमणी के हृदय में प्रवेश नहीं करती। बनावटी लाल इत्यादि रंगसे रंगने पर मणि कभी भी मणि–परीक्षकों की हृदय ग्राही नहीं होती।

विदू०—आपकी यह बात अनुकूल--सत्य है। क्योंकि आंखों का रोगवाला कभी भी सामने रक्खे हुए दीवे की लोय को नहीं सह सकता।

राजा—नहीं--ऐसा नहीं है। मेरा चित्त उर्वशी--में फँसा होने पर भी देवी का मैं बहुत सन्मान करता हूं। किंतु वे जब मेरा प्रणियात (अनुरोध) लंघन करके चली गई हैं--तो मैं भी धैर्यावलम्बन करके रहूंगा। सहसा उनको प्रसन्न न करूंगा।

विदू०—महाराज ! अब देवी की बात तो रहने दो, मैं भूँख से घबरा रहा हूँ--आप मेरी जीवन–रक्षा का उपाय कीजिये। स्नान भोजन का समय उपस्थित है।

राजा—(ऊपर को देखकर) क्या दिन का आधा भाग बीत गया ? इसी लिये मोर गण धूप से तपकर तरु मूल की शीतल छाया में बैठे हुए हैं। भ्रमरों ने अपने चरणों से खिला कर कर्णिकार--पुष्प के मध्य भाग में शयन किया है। कारण्डवों (हंसो) ने तपा हुआ जल छोड़ कर किनारे पर की नलिनी का सहारा लिया है और केलि--गृह के भीतर--स्थित पञ्जरस्थ तोते क्लान्त होकर जल की प्रार्थना करते हैं।

(राजा और विदूषक का जाना)

(दूसरा अंक समाप्त)

तीसरा अंक।

(भरत मुनि के दो शिष्यों का प्रवेश)

पहला—सखे पैलव ! * अग्नि शरण ग्रह से इन्द्रालय जाने के समय उपाध्याय महर्षि भरत तुमको अपने पदमें प्रतिष्ठित करके गये थे। अग्नि शरण की रक्षा के लिये मुझको नियुक्त किया था। अतएव पूछता हूं कि गुरूदेव के नाटक प्रयोग द्वारा सुर–सभा तो सन्तुष्ट हुई है ?

* पैलव की जगह कई पुस्तकों में 'गालव' पाठ दिखाई देता है।

दूसरा—देव सभा कैसे संतुष्ट हुई थी-नहीं जानता-किन्तु सरस्वती कृत लक्ष्मी स्वयंवर नामक दृश्य काव्य के अभिनय काल में अन्यान्य रसों का प्रयोग करते-करते उर्वशी को उन्माद होगया (उसके सभी अभिनय में अनेक भ्रम-प्रमाद उपस्थित हुए थे)

पहला—तो तुम्हारा अन्तिम कहना यह है कि-अनेक दोष दिखाई दिये थे।

दूसरा—हाँ उस समय उसके वाक्य स्खलित होगये थे।

पहला—किस प्रकार ?

दूसरा—उर्वशी ने लक्ष्मी का और मेनका ने वारुणी का अभिनय किया था। मेनका ने उवशी से पूछा—त्रिलोक-स्थित जो सब पुरुष और केशव समेत लोकपाल उपस्थित हुए हैं-इनमें किसके प्रति तुम्हारा चित्त नष्ट हुआ है।

पहला—इसके पीछे ?

दूसरा—'पुरुषोत्तम' उच्चारण करने में उर्वशी के मुख से 'पुरूरवा' उच्चारित हुआ।

पहला—बुद्धि और इन्द्रिय भवितव्यता अर्थात् होनहार का ही अनुसरण करती है। इससे क्या महर्षि उनके प्रति कुपित नहीं हुए ?

दूसरा-उपाध्याय ने शाप दे दिया, किन्तु पीछे देवेन्द्र ने उर्वशी के प्रति अनुग्रह दिखाया है।

पहला-किस प्रकार ?

दूसरा-'तुमने मेरा उपदेश उल्लंघन किया है, इसलिये तुमको दिव्य-ज्ञान प्राप्त नहीं होगा। उपाध्याय ने यह कहकर शाप दिया तब उर्वशी को लज्जा से शिर झुकाये देखकर इन्द्र ने कहा-जिनके प्रति तुम्हारा अनुराग बँधा है, वे राजर्षि पुरूरवा युद्ध में हमारे सहायक हैं उनका उपकार करना मेरा कर्त्तव्य है। अतएव जबतक उनके सन्तान उत्पन्न न हो, तब तक तुम इच्छानुसार उनके संग वास करो।

पहला-देवेन्द्र दूसरे आदमी का गुण समझकर उसके अनुसार ही उसका सत्कार करना जानते हैं।

दूसरा—(सूर्य की ओर देखकर) बातों ही बातों में समय अधिक हो गया है, अतएव चलो। हम उपाध्याय के निकट चलें।

(दोनों गये)

(इति विष्कम्भक)

कञ्चुकी का प्रवेश।

कंचुकी—समर्थ अवस्था (जवानी) में माता-पिता पुत्र-कलत्रादि से घिर कर गृहस्थ पुरुष धन उपार्जन करने का यत्न करता है, फिर बुढ़ापे में पुत्र के ऊपर सब भार डाल कर आप विश्राम करता है। किंतु हमारे इस बुढ़ापे ने सुख से रहना नष्ट करके प्रति दिन केवल पराई सेवा कराकर कातर वचन कहने को ही नियुक्त किया है, अर्थात् बुढ़ापे के वश काम करने में असमर्थ होने पर दीन वचनों से स्वामी को प्रसन्न करना पड़ता है, अतएव स्त्री के सम्बन्ध में अधिकार क्लेश जनक है (बूढ़ा होने से ही मैं रनवास में प्रवेश कर सकता हूं । वहां स्त्रियों की आज्ञा का भी पालन करना पड़ता है, इसकी अपेक्षा क्लेश और घृणा की दूसरी बात क्या हो सकती है ?) व्रतधारिणी काशीराज की कन्या ने आज्ञा दी है--'व्रत सम्पादन के अर्थ मैं ने अभिमान परित्याग पूर्वक निपुणिका द्वारा इस से पहले महाराज के निकट प्रार्थना की है--अतएव मेरे कथनानुसार तुम जाकर महाराज को विदित करो कि संध्या--कृत्य समाप्त होने पर मैं महाराज का दर्शन करूंगी । (घूम कर चारों ओर देखता हुआ)दिन के अंत में अर्थात् संध्याकाल में राजगृह की शोभा कैसी मनोहर है ! मोरगण रात्रिकालीन निद्रावश बाँस की लकड़ी पर मानों चित्र-लिखित के समान बैठे हैं। धूप का धुआं निकलने से चंद्रशाला गृह (प्रसादोपरिस्थितगृहविशेष) के सफेद वर्ण धारण करने से पारावत का अनुमान होता है और समाचार परायण अन्तःपुर निवासी वृद्ध पुरुष पुष्प पूजोपहार--युक्त स्थान में प्रज्वलित संध्याकालीन मंगल दीप एक एक भाग करके दे रहे हैं (चारों ओर देखकर) अहो ! महाराज तो इधर को ही आरहे हैं। परिचारिका नारियों के हाथ की दीपमाला द्वारा यह घिर रहे हैं। सुतरां गिर-नितम्ब में कर्णिक का फूल खिलने पर पक्षवान् गति शैलपर्वत जिस प्रकार शोभा पाते हैं, महाराज भी उसी प्रकार शोभा पाते हैं। मैं अब इनकी दृष्टि के सामने ठहरूँ ।

(परिजन समेत राजा और विदूषक का प्रवेश)

राजा—(स्वगत) राजकार्य में लगे रहने पर थोड़े कष्ट से ही मैंने दिन बिता दिया—किन्तु लम्बी घड़ियों वाली रात में तो चित्त को आनन्दित करने का कोई उपाय नहीं है। किस प्रकार रात विताऊँ ?

कंचुकी—[राजा के सामने जाकर] महाराज की जय हो ! जय हो ! देव ! देवी ने निवेदन किया है कि—मणिमय अट्टालिका पर बैठने से सुदृश्य चन्द्रमा दिखाई देता है. (अस्तु) जबतक चन्द्र के साथ रोहिणी का योग रहे, तब तक महाराज उसी स्थान में स्थिति करें।

राजा—देवी से विदित करो कि जो आपकी रुचि है, वही होगा।

कंचुकी—जो आज्ञा महाराज !

[कंचुकी का जाना]

राजा—सखे ! सत्य सत्य ही क्या देवीव्रत करने के लिये ऐसा करती हैं ?

विदू०—मैं सोचता हूं कि माननीय देवी आपका प्रणिपात (अनुरोध) लंघन करके पीछे अनुतप्त हुई हैं, अब इस व्रत के बहाने उस अपराध को धोना चाहती हैं।

राजा—तुमने बात ठीक ठीक ही कही है।मनस्विनी रमणियाँ प्रतिपात [अनुरोध] लंघन करके फिर संतप्त चित्त होती हैं और प्रसन्नताकारक अनेक अनुनय विनय से अनुताप को दिखाती हैं। (जोड़ो) तुम मणि प्रासाद का मार्ग दिखाओ।

विदू०—महाराज ! इधर आइए' इधर आइये गंगा की तरंगों से सुशीतल स्फटिक मणिमय सीढ़ियों पर चढ़कर आप मणिप्रासाद में आरोहण कीजिये।

[राजा और अन्यान्य सब का सीढ़ियों पर चढ़ना]

विदू०—(दिखाकर) चन्द्रदेव शीघ्र ही उदय होंगे। क्योंकि पूर्व दिशा ने अंधकार से छूटकर अरुण-प्रभा धारण की है।

राजा—तुमने ठीक ही अनुमान किया है। जो चन्द्रमा अंधकार से ढका हुआ था, अब उदयाचल के उस चन्द्रदेव की किरण माला द्वारा अंधकार समूह को दूर करने के कारण पूर्वादि दिशाओं के मुखचूर्ण कुंतल अपसारण पूर्वक मेरी आंखों को आनन्द देते हैं।

विदू०—ही ही भो भो। देखिये। औषधियों के राजा चन्द्र मानों एक मोदक--खण्ड की समान उदय हुए हैं।

राजा—[कुछेक हंसी के साथ] सर्वत्र पेटू आदमी की नाईं केवल तुम्हारी आहार--चेष्टा ही देखता हूं [हाथ जोड़कर प्रणाम पूर्वक] हे नक्षत्र पते ! आप साधु जनों के व्रत यज्ञादि शुभ कर्मों के अनुष्ठानार्थ दीप्ति धारण करते हैं। अमृत द्वारा अग्निष्वात्वादि पितृ गण और अग्नि आदि देवताओं को प्रसन्न करते हैं। रात में अंधकार को दूर कर देते हैं

और आप महेश्वर की चूड़ामणि के रूप में उनके ललाट पर अवस्थान करते हैं। अतः आपको नमस्कार है।

विदू०—सखे! ब्रह्म से ब्राह्मण शब्द उत्पन्न हुआ है। इस लिये मेरे वाक्य को ब्रह्म वाक्य जानना। अतएव आप ब्रह्मा कर्तृक अनुज्ञात (आदिष्ट) होकर आसन पर बैठिये, तब ही मैं सुखसे बैठ सकूंगा।

राजा—(विदूषक के कथनानुसार बैठकर और परिजनों की ओर देखकर) चन्द्रमा की किरणों से दीपक वैसी कान्ति को प्राप्त नहीं होते, इस बातको कहना ही पुनरुक्ति है। अतएव अब तुम विश्राम करने के लिये जाओ।

परिजन—आपकी जो आज्ञा।

परिजनों का चला जाना।

राजा—(चन्द्रमा को देखकर विदूषक से) सखे! मुहूर्त्तकाल के पीछे ही देवी आवेंगीं, अतएव आओ, एकान्त में बैठकर अपनी अवस्था कहें।

विदू०—उर्वशी को तो अब भी नहीं देख पाते! किन्तु उसका वैसा अनुराग देखकर निःसन्देह आशा के आश्वास से धैर्य धारण किया जा सकता है।

राजा—यह बात ठीक है। मेरे मनका ताप प्रबल हो उठा है। मार्ग में कठिन शिला संकट उपस्थित होने पर नदी के वेग को जिस प्रकार बाधा मिलती है, कामदेव भी उसी प्रकार उर्वशी समागम के अभाव में उत्तरोत्तर (लगातार) प्रबल होता जाता है।

विदू०—आपके अंग प्रत्यंग जब कि विरह-व्यथा से क्षीण होने पर भी शोभा पाते हैं, तो मैं देखता हूं, कि-मानों उस अप्सरा का समागम (मिलना) निःसदेंह शीघ्र ही होगा।

राजा—(शकुन को सूचित करके) सखे! तुम जिस प्रकार आशा-प्रद वचनों से मेरी दारुण वेदना को दूर कर रहे हो, मेरी यह दाहिनी भुजा फड़क कर भी उसी प्रकार मुझको धीर बँधाती है।

विदू०—ब्रह्मण का वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता है।

[आशावान् होकर राजा का अवस्थान]

(आकाश-मार्ग में अभिसारिका वेश धारिणी उर्वशी और चित्रलेखा का प्रवेश।)

उर्वशी—(अपने अंगों की ओर देखकर) सखि ! मैंने मोतियों के गहनों से विभूषित, नील मणि खचित जो यह अभिसारिका का वेश धारण किया है, सो यह क्या तुम्हारे मन के अनुकूल हुआ है ?

चित्र—इसकी बड़ाई करूँ--मेरी वाणी में इतनी शक्ति नहीं है। किन्तु तो भी मेरे मन में ऐसा विचार होता है, कि-मैं ही इस समय पुरूरवा होती।

उर्वशी—सखि ! मुझ में अब कुछ भी शक्ति नहीं है—तुम शीघ्र उन को ले आओ। अथवा मुझको ही उन प्रियतम के भवन में ले चलो।

चित्रा०—रात के समय यमुना-जल में कैलास-शिखर की परछाँहीं पड़ने से जैसी शोभा होती है, उसी प्रकार परम श्री (कांति) सम्पन्न तुम्हारे प्रियतम पुरूरवा के भवन में यह लो हम उपस्थित होगईं।

उर्वशी—तो तुम अपने प्रभाव से जान लो कि मेरे हृदय को चुराने वाले वे इस समय कहाँ हैं और क्या करते हैं ?

चित्रा०—(स्वगत) जो हो-इस के साथ थोड़ी देर तक चुहल करूँ। (प्रकट) हे सखी ! मैं देखती हूँ कि-तुम्हारे प्रिय वल्लभ उपभोग्य स्थान में रह कर मनोरथ-लब्ध प्रिया के समागम-सुख में निरत हो रहे हैं।

उर्वशी—तू दूर हो। मेरा हृदय इस बात का विश्वास नहीं करता। सखि चित्रलेखे ! तैने मन में क्या सोचकर यह बात कही है ? प्रिया-समागम के पहले ही उन्होंने मेरे चित्त को हरण किया है।

चित्र०—सखि ! राजर्षि केवल-मात्र सखा के साथ मणि-प्रासाद के ऊपर बैठे हुए हैं। चलो-हम लोग वहाँ पहुंचें।

[दोनों का उतरना]

राजा—सखे ! रात के समय यम--यातना अधिक बढ़ जाती है।

उर्वशी—यह कपट रहित बात सुनकर भी मेरा हृदय कम्पित और सन्दिग्ध होता है। छिप कर इन दोनों की बातचीत सुनूँ—तो ऐसा होने पर ही मेरा सन्देह दूर होगा।

चित्र०—तुम्हारी जो इच्छा।

विदू०—महाराज ! अब इस अमृत-पूर्ण चन्द्र-किरण को सेवन कीजिये।

राजा—सखे ! यह रोग चन्द्र-किरणादि के द्वारा शमन होने वाला नहीं है। नवीन फूलों की शय्या, चन्द्र-किरण, सर्व शरीर-व्यापी मलय-पवन, मणिमय हार इन सब में किसी से भी यह काम की पीड़ा दूर नहीं

हो सकती। केवलमात्र वह स्वर्गीया रमणी वा उस के विषय में बातें ही मेरी इस वेदना को हलका कर सकती हैं।

उर्वशी—हृदय! तुम जो इस समय मुझको त्याग कर इस राज्य में आसक्त हुए हो, उसका अच्छा फल फला।

विदू०—महाराज! शिखरिणी और रसाला (खाद्य द्रव्य विशेष) जब नहीं मिलते, तब उनकी मन मन में चिन्ता करके ही मैं सुख का अनुभव किया करता हूं।

राजा—वह सुख तुमको ही होता है।

विदू०—आपको भी शीघ्र वह सुख मिलेगा?

राजा—सखे! मैं भी यही सोचता हूँ।

चित्र०—असंतुष्टे! सुन ले।

विदू०—किस प्रकार से?

राजा—जब वेगवश रथ क्षोभ उपस्थित हुआ अर्थात् वेग के कारण रथ अत्यन्त शीघ्रगति से चला—तब उस प्रियतमा उर्वशी ने अपने अंग द्वारा मेरे अंग को पीड़त किया था, सुतरां मेरे देह का वही अंग सार्थक है, अन्य अंग प्रत्यंग केवल पृथ्वी के बोझ स्वरूप हैं।

उर्वशी—(आप ही आप) तब फिर अब विलम्ब की क्या आवश्यकता है? (प्रकट) सखि चित्रलेखे! मेरे सन्मुख विद्यमान् होने से क्या महाराज उदासीन की नाईं रहेंगे?

चित्र०—(मधुर हँसी से) हे अतित्वरिते! तुम तिरस्कारिणी विद्या के बलसे असंक्षित हुई हो।

नैपथ्यमें—देवी! इधर आओ। इधर आओ।

(उसी ओर सबका कान लगाकर सुनना किन्तु सखी सहित उर्वशी का विषाद भाव)

विदू०—(अस्त व्यस्त होकर) अहो! अहो!! देवी आनकर उपस्थित हुई हैं। आप मौन भाव धारण कीजिये अर्थात् चुपचुाप रहियें।

उर्वशी - हे सखी! अब क्या करना चाहिये?

चित्र०—आवेग की क्या आवश्यकता है? आप तो इस समय इस भाव से स्थित हैं कि दूसरे की दृष्टि से छिपी रहें। देखता हूँ कि, महषी ने भी कोई व्रत नियम धारण किया है। इसलिये यहाँ बहुत देर तक मत रहिये।

(उपचार--द्रव्य लिये परिचारिका के)

(सहित देवी का प्रवेश)

देवी—(चन्द्रमा की ओर देखकर) भगवान् शशाङ्क (चन्द्रदेव) रोहिणी के साथ संयोग होने से परम शोभा पारहे हैं।

चेटी—स्वामिनी के संग स्वामी के मिलन में भी परम रमणीयता सम्पादित होगी (सबका परिक्रमण)

विदू०—अहो! मुझको निश्चय बोध होता है कि स्वस्तिवाचन भी प्रदान करेंगी। अथवा महाराज को न पाकर देवी चन्द्र व्रतके मिस क्रोध रहित होकर आज मेरे नयनों में शुभ दर्शना होती हैं।

राजा—(मधुर हास्य से) सखे! तुम्हारी दोनों ही बातें सच्ची हैं। किन्तु अन्त में जो कहा–वह तो प्रत्यक्ष ही दीखता है क्योंकि देवी का पहरावा सफेद वस्त्र हैं, पुष्प-माल्यादि माँगलिक अलंकारों से यह विभूषित हैं और अलकावली में मनोहर दूर्वांकुर विराजमान हो रहा है। सारांश-व्रतके बहाने गर्वत्याग कर जो देवी मुझ पर प्रसन्न हुई हैं, यह इनका शरीर देखकर ही ज्ञात होजाता है।

देवी—(पास पहुंच कर) आर्य पुत्र की जय हो! जय हो।

परिजन—देव! आप विजय प्राप्त करें।

विदू०—आपका कल्याण हो।

राजा—देवी! निर्विघ्न तो आईं? (देवी का हाथ पकड़ कर आसन पर बैठाला)

उर्वशी—यह देवी शब्द से अभिहित हुई; यह युक्ति संगत ही है। शची की समान तेजस्विता में यह कुछ भी कम नहीं हैं।

चित्र०—सखी! तुमसे वार्त्तालाप करने में राजा का अन्य प्रकार सुख है।

देवी—आर्य पुत्र को सन्मुख वर्त्ती करके मैं कोई व्रत विशेष सम्पादन न करूँगी। अतएव मुहूर्त्त काल तक उपरोध सह्य कीजिये। अर्थात् क्षण भर तक मेरे अनुरोध से इस स्थान में ठहरे रहिये।

राजा—सखे माणवक! इस समय अनुग्रह ही उपरोध होता है।

विदू०—स्वस्तिवाचन करते-करते मेरे इसप्रकार अनगिन्ति उपरोध होवें।

राजा—देवी के इस व्रत का नाम क्या है?

(निपुणिका की ओर देवी का देखना)

चेटी—प्रभो! इस व्रत का नाम 'प्रियप्रसादन' है।

राजा—(देवी को तरफ देखकर) कल्याणि ! इस व्रतका अनुष्ठान करके अपने कमल-कोमल शरीर को क्यों वृथा कष्ट देती हो। जो व्यक्ति उत्कण्ठित होकर सदा तुम्हारी प्रसन्नता चाहता है, उस सेवक को क्या फिर प्रसन्न करोगी ?

उर्वशी—(व्याकुलता की हँसी के सहित) इस देवी के प्रति महाराज का बहुत सन्मान देखती हूँ।

चित्र०—हे मुग्धे ! जिस नायक का प्रेम दूसरी रमणी में स्थित हैं-इस प्रकार दक्षिण नायक होता है। *

देवी—इस व्रत के प्रभाव से आर्य पुत्र वशीभूत होंगे।

विदू०—महाराज ! आप शान्त हूजिये। वन्धु की बात का निरादर करना उचित नहीं है।

देवी—वलिकाओं ! पूजाके सब उपहार-द्रव्य ले आओ। मैं अट्टालिका पर शोभायमान चन्द्र की पूजा करूँगी।

परिजन—देवी की जैसी अनुमति (यह कहकर) आर्य माणवक ! यह अनीत स्वस्ति वाचन ग्रहण कीजिये।

विदू०—(मोदक का शराव लेकर) देवीका कल्याण हो। यह व्रत बहुत से फल का देने वाला हो।

चेटी—कंचुकी ! यह उपहार आपका है।

कंचु की (ग्रहण करके) देवी का कल्याण हो।

देवी--आर्य पुत्र ! इधर आइये।

राजा--मैं यह हूं तो।

देवी (राजा की पूजा करके करवद्ध प्रणाम पूर्वक) मैं रोहिणी और चन्द्रमा इस देव दम्पति को साक्षी करके आर्य पुत्र को प्रसन्न करती हूं। आर्यपुत्र जिस रमणी की कामना करते हैं और जो नारी आर्यपुत्र के समागम की प्रार्थिनी (अभिलाषिणी) है, उसके साथ आर्य पुत्र अब से निर्विघ्न अवस्थान करें।

उर्वशी--कैसा आश्चर्य है। इस देवी के बचन का तात्पर्य समझ में नहीं आता। इसने जो कहा वह सत्य है या कपटता पूर्ण है यह समझ नहीं सकती। 'जो हो तो भी मेरा हृदय विश्वास विशद हुआ है।

चित्रा--सखि ! महानुभावा पतिव्रता देवी, ने आज्ञा देदी अतएव प्रियतम के संग समागम में तुमको अब कोई विघ्न न होगा।

---

* दक्षिण नायक अत्यन्त प्रियभाषी होता है।

विदू०--(दूसरा न सुन सके-इस भाव से) कटे हाथ वाले आदमी के निकट से यदि वध्य--व्यक्ति भाग जाय तो वह कहता है कि जाओ धर्म होगा। (प्रकट) देवी। महाराज क्या उदासीन हैं ?

देवी-मूढ़ ! मैं अपना सुख त्याग कर आर्यपुत्र के सुख की कामना करती हूं बस इसी से विचार कर देखले कि आर्य पुत्र मुझको प्यारे हैं वा नहीं ?

राजा ! हे असहिष्णुशीले ! तुम इच्छा करने पर इस व्यक्ति को अन्य रमणी प्रदान कर सकती हो। इसको किंकर करनेकी भी तुममेंशक्ति है।

हे भीरू ! तुम मेरे प्रति जैसी आशंकाकरती हो, मैं वैसा नहीं हूँ।

देवी। जो हो--यथा निर्दिष्ट प्रियसादन व्रत सम्पादित हुआ। परिजन गण ! आइये अब हम चलें।

राजा-प्रसादित (प्रसन्न किये) व्यक्ति को छोड़ कर जाना उचित नहीं है।

देवो--आर्य पुत्र। इस समय जो व्रत सम्पादित हुआ यह अपरित्यक्त पुण्य है अर्थात् व्रत के दिन मुझको संयम शील होकर रहना पड़ेगा; नहीं तो पुण्य की हानि होगी। अतएव अब मैं आपके निकट नहीं रह सकती।

[परिजनों के सहित देवी का जाना]

उर्वशी, सखी ! राजर्षि देवी को बहुत प्यार करते हैं, किन्तु मैं अब अपने हृदय को फिरा नहीं सकती।

चित्रा-जिस हृदय में आशा स्थिर हुई है उस हृदय को फिर लौटाया क्यों जाय ?

राजा--(आसन पर बैठकर) सखे ! देवी बहुत दूर चली गई हैं।

विदू०--अब जो कहना चाहते हो, विश्वस्त चित्तसे कहो। रोगको असाध्य निश्चय करके पीड़ित व्यक्ति को चिकित्सक (वैद्य) जिस प्रकार छोड़ देता है--आपको भी आज देवीने उसी प्रकार छोड़दिया है।

राजा--उर्वशी क्या हमारी होगी।

उर्वशी--(स्वगत) अब उर्वशी कृतार्थ हुई।

राजा--पायजेब का मृदुमन्द मनोहर शब्द मात्र मेरे कान में प्रवेश करेगा, धीरे धीरे पश्चद्भाग में उपस्थित होकर कर कमल द्वारा मेरे दोनों नेत्रों को मीचेगा, और प्रासाद के ऊपर उतर कर भय और लज्जा के कारण मेरे पास पहुंचने में विलम्ब करने से चतुर सखी एक २ पग करके उसको क्या मेरे निकट लावेगी ?

चित्रा—हे उर्वशी । अब इनका मनोरथ पूरा करो ।

उर्वशी—(भय से) तो इस समय कुतुहल करूं ?

(यह कहकर पश्चात् भाग में गमन पूर्वक हाथों से राजाकी दोनों आंखें मूँदना और चित्र लेखाका विदूषक को चैतन्य करना)

राजा—(स्पर्श का सुख अनुभव करके) सखे । जिसने मेरी आँखें मूँदी हैं-वह क्या उन नारयण के ऊरू से उत्पन्न हुई वामोरू उर्वशी नहीं है ?

विदू०—आपने कैसे जाना ?

राजा—इसमें मेरे जानने की बात क्या है ? केवल मात्र हाथ का स्पर्श होते ही मेरे अंग पुलकित हुए जाते हैं । देखो चन्द्रमा की किरण से कुमुद (बबूले) खिलते हैं-सूर्य किरण से उनके खिलनेकी संभावना नहीं है ।

उर्वशी—अहो ! मेरे दोनों हाथ मानो वज्र द्वारा लिप्त बोध होते हैं-मैं हाथों को हटा नहीं सकती हूँ । (यह कह कर हाथ हटा निमीलिताक्षो हो भय से अवस्थान और अत्यन्त कष्ट से निकट जाकर) महाराज की जय हो ! जय हो ?

चित्रा—सखा का मंगल तो है ?

राजा—अब सबही मंगल होगया ।

उर्वशी=अरे ! देवीने मुझे महाराज को देदिया है-अतएव मैं इनकी प्रियतमा के समान अर्धांगिनी हुई । तुम मुझको दोयैकादर्शिनी मत विचारना अर्थात् मुझे अनुचित कार्य में प्रवृत्त हुआ मत समझना ।

विदू०—क्यों, इस समय से ही क्या आपका सूर्य अस्तगत होगया ? (रात्रि काल में हो आलिंगनादि कार्य का विधान है, आप क्या दिन में ही उस काम को प्रस्तुत होगई) ?

राजा—(उर्वशी की ओर देखकर) देवी ने मुझको दान किया है । इसी कारण से यदि तुम मुझ से आलिंगन करके मेरे देह पर अधिकार करने को उद्यत हुई हो, तो बताओ कि जब तुमने मेरा चित्त चुराया था, तब किसकी अनुमति ली थी ?

चित्रा—सखे ! सखो इस बात का उत्तर नहीं दे सकती है, अब मेरा निवेदन सुनिये ।

राजा—एकाग्र चित्त हूँ !

चित्र—वसन्तऋतु के अन्त में, मैं भगवान् सूर्य की उपासना में प्रवृत्त हूँगी, अतएव मेरी यह प्रिय सखी जिससे स्वर्ग में जाने के लिये उत्कंठित न हो, आप वही कीजिये।

विदू०—स्वर्ग में स्मरण करने के योग्य कौनसी वस्तु है? वहां कोई किस वस्तु को भोजन व पान नहीं करता, केवल मत्स्य की समान एकटक नेत्रों से सबको अवस्थान करते देखा जाता है।

राजा सखे! स्वर्ग के सुख की सीमा नहीं है। वह क्या भुलाया जा सकता है? तो बात केवल इतनी है कि. यह पुरूरवा अन्य स्त्री से विमुख होकर इसका ही किंकर-स्वरूप रहेगा।

चित्रा—अनुग्रहित हुई। सखी उर्वशी! अब प्रसन्नता से मुझको अब विदा दो।

उर्वशी—(चित्र लेखा को छाती से लगाय करुण वचनों द्वारा) सखी! मुझे भूल मत जाना।

चित्र—(मधुर हास्य से) सखी। तुम अब सखा से मिल गईं-अतएव मैं ही तुम से यह प्रार्थना कर सकती हूं अर्थात् मैं ही कह सकती हूं कि 'सखी! तुम मुझको भूल मत जाना'।

(राजा को प्रणाम करके चित्रलेखा का जाना)

विदू०—सौभाग्य से आपकी अभिलाषा पूरी हुई। अब आप सब प्रकार से सम्वर्द्धित (प्रसन्न) हूजिये।

राजा—मेरी अभिलाषा किस प्रकार सिद्ध हुई? देखो--आज मैं इस उर्वशी के दोनों चरणों का प्रसन्नता पूर्वक दास बनकर जिस प्रकार कृतार्थ हुआ हूँ--वैसा कृतार्थ तो समस्त सामन्त राजाओं के मुकुट--मणि की किरणों से रंजित पाद पीठ में चरण रखने और पृथ्वी की एक छत्र प्रभुता पाने पर भी नहीं होता।

उर्वशी—आपको इस बात का उत्तर दूं--मेरे वाक्य में इतनी शक्ति नहीं है।

राजा-(उर्वशी को हाथ से पकड़ कर) यही इस समय मेरी अनुकूलता में अभीष्ट लाभ की पराकाष्ठा है। क्योंकि--इस समय चंद्रमा को किरणें मेरे अंग को आनन्द दे रही हैं और काम--बाण भी अब मेरे अभिप्रायानुकूल है। सुंदरी! जब तुम नहीं थीं, तब जो जो पदार्थ कुपित की समान मुझको रूखे लगते थे, तुम्हारा समागम प्राप्त होने से इस समय वे सब उपस्थित होकर मुझको आनन्द प्रदान करते हैं।

उर्वशी—मैं विलम्ब करके महाराज के निकट अपराधिनी हुई हूं।

राजा—सुन्दरी! यह बात मत कहो। जो जो वस्तु उपस्थित होकर दुःख देती हैं, वही फिर परिणाम में दूसरे रस में परिणत होकर सुख उत्पन्न करती हैं। देखो वृक्षों की छाया धूप में तपे हुए पुरुष के लिये बहुत ही प्रसन्नता का कारण होती है।

विदू०—कल्याणी! प्रदोष (संध्या) कालीन चंद्रमा की मनोहर किरणों को भोगा जाचुका अब आप के ग्रह--प्रवेश का समय उपस्थित है।

राजा—तो अब अपनी सखी को (गृह प्रवेश का) मार्ग बताओ।

विदू०—इधर आओ! इधर आओ! (परिक्रमण)

राजा—सुन्दरी! अब मेरी एक प्रार्थना है।

उर्वशी—वह क्या?

राजा—सुभ्रू? जब मेरी इच्छा पूरी नहीं हुई थी, तब रात सौ गुनी बड़ी जान पड़ती थी, अब तुम्हारे पाने पर यदि वह रात उसी प्रकार बड़ी होवे--तब ही मैं कृतार्थ हूंगा।

(सब का जाना)

(तीसरा अंक समाप्त)

चौथा अंक।

(नेपथ्य में सहजन्या और चित्र लेखा का प्रवेश सूचक गीत)

सहजन्या नाम्नी सखी के संग. चित्रलेखा प्रिय सखी उर्वशी के विरह में उत्कण्ठित चित्त होकर जिस सरोवर में सूर्य की किरणों के स्पर्श से पद्मनि (कमलनी) खिलकर विराजमान् हैं--उसी के तट पर बैठ कर विलाप करती है।

(सहजन्या और चित्रलेखा का प्रवेश)

चित्र०—प्रवेश पूर्वक द्विपदिका नामक गीत गाते गाते (चारों ओर का देख कर*) सखी के दुःख के बोझ से दब कर स्नेह--परायण दोनों

* द्विपदिका गीति विशेष का नाम है महामुनी भरत इस प्रकार बता गये हैं कि इस में चार चरण और तेरह मात्रा रहती हैं। लक्षण यथा,

शुद्धा खण्डा च मात्रा च सम्पूर्णेनि चतुर्विधा। भवेद् द्विपदिका गीतिर्भरतेन प्रकीर्तिता। भवेच्चतुर्भिरचरणैर्यात्रयोदशकलात्मकः ॥

हँसी वाष्पाकुल नेत्रों द्वारा सरोवर के तट पर बैठी हुई विलाप करती हैं।

सह—(खेद सहित) सखि चित्रलेखे ! तुम्हारे मुख की कान्ति मलीन शतदल पत्र के समान देख कर जान पड़ता है कि तुम्हारा हृदय स्वस्थ (सावधान नहीं है अतएव तुम अपनी अस्वस्थता का कारण यह हैं बताओ ? क्योंकि मैं भी तुम्हारे दुःख में समान दुःखिनी प्रिय सखी हूं

चित्रा—सखी ! भगवान् सूर्य देवकी आराधना करना अप्सराओं का काम है) उसी काम के क्रमानुसार मैं उपासना में लगरही हूं, वर्षा काल भी उपस्थित् है, अतएव मैं प्रिय सखी !उर्वशी के विरह में अत्यन्त ही उतकण्ठित हो रही हूं।

सह—मैं तुम दोनों के परस्पर प्रेम को जानती हूँ । फिर ? फिर ?

चित्र—फिर इतने दिनों में क्या घटना घटी, इस विषय में मैंने ध्यान योग के द्वारा जो देखा है--उससे बड़ा ही डर उपस्थित होगया है।

सह—वह कैसा?

चित्रा—(सकरुण भाव से) प्यारी सखी ! उर्वशी शोभामात्र सार (अकेली) राजर्षि को संग लेकर कैलास पर्वत के शिखर के एक प्रान्त वाले गन्ध मादन बनमें विहार कर ने को चली गई है । महाराज मंत्रियों के हाथ में राज्य का भार सौंप गये हैं।

सह—(बड़ाई से) संभोग यदि ऐसे स्थान में हो--तो वही सच्चा संभोग है । इसके पीछे ?

चित्रा—इसके पीछे सुनो । वहाँ मन्दाकिनी के किनारे वालुका द्वारा क्रीड़ा पर्वत बनाकर उदकवती नाम वाली एक विद्याधर की बालिका खेल रही थी । उसी समय राजर्षि ने उस बालिका की ओर अनुराग से दृष्टि डाली थी । इस लिये प्रिय सखी उर्वशी राजा पर क्रोधित हुई ।

सह—उर्वशी यह बात जब नहीं सह सकी ? तो देखती हूं--उनकी प्रणय(प्रीति)बहुत ऊपर चढ़गई है । होनहार ही बलवान है । फिर? फिर?

चित्रा—फिर प्रिय सखी ने प्रियतम की अनुनय विनय न मान--नाट्याचार्य भरत मुनि के पूर्वदत्त शाप से विमुग्ध हो--कुमार देव का नियम भूल नारी गणों के त्यज्यकुमार--वन में प्रवेश किया था । अन्तको कुमार बन के प्रान्त भाग में उसका रूप लावण्य लतिका रूप में परिणत होगया है ।

सह—प्रारब्ध को कौन उलंघन कर सकता है ? क्यों कि ऐसे रूपका भी यह परिणाम हुआ ? फिर ? फिर ?

चित्रा—राजर्षि ने भी उस बनमें प्रिय सखी को ढूँढते ढूँढ़ते उन्मत्त प्राय होकर "यहाँ उर्वशी है--यहाँ उर्वशी है,, यह कहते कहते दिन रात विताया है (आकाश की ओर देखकर) फिर मेघ उदय हुआ । इस मेघ को देखकर सुखी आदमी की उत्कण्ठा भी बढ़ जाती है । मेरे विचार से यह अप्रतीकार का ही लक्षण है ।

(जम्भलिका नामक द्विपदिका गीतिगान)

सखी के विरह में दुःखित होकर प्रेम--परायण दोनों हंसनी लगातार आँसुओं की धारा छोड़तीं हुई सरोवर के किनारे रोरही हैं ।

सह—सखी ! इस समय मिलन का क्या कोई उपाय है ।

चित्रा—गौरी के चरण कमलों में अनुराग वश जो संगम मणी प्राप्त हुई थीं, जब उसको त्याग दिया--तब फिर प्रिय सखीके समागम का दूसरा उपाय क्या है ?

सह—जिसकी ऐसा आकृति है-वह कभी सदा दुःख नहीं भोगना, निःसन्देह जाना जाता है कि कोई अनुग्रह-मूलक उपाय होगा । अतएव आओ--उदयाचलाधिपति भगवान् सूर्य की उपासना करें ।

(इस अवसर में खण्ड धारा नामक द्विपदिका गीतगान) * चिन्ता वश व्याकुल चित्त वाली हंसिनी सहचरी का दर्शन मिलने की आशा से खिले हुए कमल-दलों से शोभायमान् सरोवर के तट पर विचर रही हैं (अथवा उर्वशी के विरह में व्याकुल होकर उसकी सखियाँ सरोबर के किनारे उसको ढूँढती फिरती हैं)

(दोनों का जाना)

(इति प्रवेशक)

नेपथ्य में—(पुरूरवा का प्रवेश सूचक गीत) गजराज प्रियतमा के विरह में उन्मत्त हो वृक्ष के पल्लव और फूलों से अपने पर्वत समान शरीर को विभूषित करके गहन--वनमें प्रवेश करता है (अर्थात् पुरूरवा राजा उर्वशी के विरह--जनित दुःख से कातर और कामार्त होकर उर्वशी के ढूँढने को गहन वन में प्रवेश करता है)

(आकाश की ओर देखते देखते काम
की अवस्था में राजा का प्रवेश)

---

* चौदह कला युक्त-चार चरण समन्वित गीतिका नाम द्विपदिका है । यथाः—
"चतुर्दश कला युक्तै श्चतुर्भिश्चरणै रिह ।
खण्डकख्या द्विपदागीति [illegible] भवेत् ।

राजा—(सरोष) ओः ! दुरात्मा राक्षसाधम ! ठहर ! ठहर ! मेरी प्यारी को लेकर कहाँ जाता है ? (चारों ओर देख कर) क्या पर्वत के शिखर आकाश मार्ग में उठ कर मेरे ऊपर बाणों की वर्षा करना है ?

(यह कह कर लोष्ठ (शस्त्र विशेष) ग्रहण पूर्वक प्रहार के लिये धावमान और इसी समय में द्विपादिक गीति गान और चौतर्फा दृष्टिपात)

यथा—जिसके हृदय में प्रियतमा के विरह का दुःख स्थित है, वह हंस-युवक सरोवर के किनारे बैठकर दोनों पैर कम्पायमान करते हुए आँखों के आँसुओं से अभिषिक्त (सिंचित) होकर दुःख प्रकाश करता है। (चिन्ता करके करुण भाव से) यह क्या ? यह गर्वित निशाचर नहीं-(वरन) नवीन मेघ घनीभूत होगया है। यह शरासन नहीं (वरन) बहुत दूर तक फैला हुआ इन्द्र-धनुष है। यह वाण नहीं--(वरन) घनी भूतधाराओं का गिरना है और यह प्यारी उर्वशी नहीं (वरन) यह तो कनकोज्ज्वल दामिनी है।

(राजा की मूर्च्छा और द्विपदिका गीति के सहित फिर उठना और दाहिन श्वास सहित)

मैंने समझा था—कोई निशाचर मृगनयनी को हरकर लिये जाता है-किन्तु वैसा नहीं है। यह तो अभिनव विद्युल्लता के सहित जल धारा की वर्षा होती है [करुण भाव से चिन्ता करके] तब फिर उर्वशी चली कहाँ गई ? क्या वह रोष वश अपने प्रभाव से अन्तर्हित (गायब) हो-गई ? नहीं - वह बहुत देर तक क्रोधित होकर नहीं रह सकती। तो क्या स्वर्ग में चली गई ? यह भी असंभव है। क्योंकि मुझ में उसका चित्त आसक्त है [वह क्रोध पूर्वक स्वर्ग में जाकर भी अधिक कालतक नहीं ठहर सकती] (सरोष , यदि वह मेरे सामने रहती, तो कोई असुर राज भी उसको हरण करने में समर्थ नहीं होता। तब फिर जो एक बार ही वह मेरी आँखों के ओट होगई यह कैसी बात है ?

(इसी समय द्विपदिका गीति के सहित चारों ओर देखना और दीर्घ निश्वास त्याग पूर्वक आँसू भरी आँखों से)

अहो ! जिसका सौभाग्य प्राप्त होने की आशा नहीं है--उसको दुःख पर दुःख उपस्थित होता है। क्योंकि एक तो मुझे प्यारी के विरह का दुःसह दुःख उपस्थित है, उस पर भी फिर नव जलधर (मेघ) के उत्पन्न होने से धूप का अभाव होने के कारण सुख दायक दिन उपस्थित हुआ है।

(इसी अवसर में चर्चरी नामक गान)

हे वारिधर (मेघ) ! मैं आज्ञा देता हूँ—तुम रोष संवरण करो। लगातार जलधारा को गिराकर तुमने चारों ओर आक्रमण किया है। अरे! मैं पृथ्वी पर पर्यटन (भ्रमण) करता-करता जब प्रियतमा का दर्शन पालूँ—तब तुम जो करोगे--वही मैं सह लूँगा।

(फिर चर्चरी गीति और चिन्ता)

मैं केवल वृथा ही अपने चित्त का सन्तोष बढ़ा रहा हूँ। क्योंकि ऋषिगण भी कहते हैं राजा ही काल का कारण है। तब फिर मैं क्या इस वर्षा काल का तिरस्कार करता हूँ ? (हँसते हुए उठ कर) जब ऋषि गण भी यह बात कहते हैं—(आधा कहने के पीछे) जो हो तिरस्कार करता हूँ (फिर चर्चरी गीति)

कल्पतरु नाना प्रकार के मनोहर भाव से नाचते हैं। उन के फूलों की गंध से भौंरों के उन्मत्त होकर गुंजार ध्वनि (गुन-गुन शब्द) करने से वही वाद्य रूप में परिणत हुई है। पवन-वेग द्वारा पल्लवों के चंचल होने से जान पड़ता है कि वे पल्लव रूप हाथ चला रहे हैं [नृत्य करते करते) अथवा अब प्रत्याख्यान नहीं करूंगा। वर्षाकालोत्पन्न चिह्नों के द्वारा राजा के सब उपयुक्त उपचार सम्पादित होते हैं।

[हँस कर पूर्वोक्त चंचरी गान पूर्वक]

यह क्या ? मनोहारिणी सौदामिनी के सखा जलधर (मेघ) मेरे कनक-खचित चन्द्रातप (चँदोवा) निचुल वृक्ष चामर, ग्रीष्मावसान में कलकंठ पक्षीगण स्तुति पाठक और जलधारा रूप धन देने में निरत मेघ-माला मेरी नागरिक स्वरूप हुई हैं।

(पुनर्वार चंचरिका गीति)

जो हो—अपने संगियों की बड़ाई करने की क्या आवश्यकता है ? इस वन में छिपी हुई प्रियतमा को खोजूँ।

(भिन्नक नामक राग में संगीत)

यह देखो—गजयूथपति पुष्पराशि से सुशोभित पर्वत के वन में विचर रहे हैं। यह गजराज प्यारी के विरह में अत्यंत कातर—वियोग दशा को प्राप्त और मंथर गति वाला है

(द्विपदिका गान करते-करते घूमना और चारों ओर देखकर हर्ष से)

अहो ! मेरा प्रियतमान्वेषण कार्य सम्वर्धित हुआ। यह नवीन कन्दली का फूल दिखाई देता है--उसकी नोंक कुछेक लाल रँग की और मध्यस्थान (कमर) मलीन है, उसको देखकर मुझको प्यारी के दोनों नेत्रों की याद आती है। रोष का संचार होने पर उस के अन्तर्वाष्पयुक्त नयन भी इसी प्रकार शोभा पाते थे।

वह माननीय प्रियतमाजा इसी ओर से गई है वह भी कैसे समझूं ? क्योंकि यदि वह दोनों शोभायमान् चरण पृथ्वी तल को स्पर्श करते--तो जल की धारा से भीगी हुई वालुकामयी वन भूमि में उसके नितम्ब में गुरुवार वशतः पोछे की ओर को झुके अलक्ताङ्कित (महावर लगे) ललित चरण चिह्न दिखाई देते--इस में संदेह नहीं।

(द्विपदिका गीत के सहित परिक्रमण)

(और चारों ओर देख कर)

अहो ! मुझको यह चिह्न मिल गया इसी के द्वारा उस कोपना के जाने का मार्ग निश्चित करलूंगा। प्रियतमा जब रोष में भर कर आँसू बहता बहाती गई तब उसके आँसुओं की बूंदें पहले होठों पर गिरने से होठ रंग से रंग गये। फिर अत्यंत गहरी नाभी में गिरे। तत्पश्चात् शुकपक्षी के उदरकी समान श्यामवर्ण स्तनाँशुक में गिरे। प्यारी की चाल स्खलित (डगमगी) होने से वह स्तनांशुक यह गिर पड़ा है। जो हो इसी को लेलूं (परिक्रमण और चिंता करके अश्रुपूर्ण नेत्रों से) यह स्थान तो नवीन तिनकों से ढका हुआ है। इन्द्र गोप कीड़े तिनको पर विचरण कर रहे हैं। अतएव प्यारी इस स्थान में आई है यह कैसे समझा जाय ? (भली भाँति देखकर) यह जो धारा के गिरने से सिंचित पर्वत तटस्थ पाषाण खंडों पर बैठ कर मोरगण के का शब्द करते करते मेघमाला की ओर देखते हैं। वेगवान् सामने को हवा से उनके वही नृत्य करते हैं और यह मोर दूर से गर्दन ऊँची कर रहे है। जो हो इन से ही पूंछूं

(इसी अवसर में खण्ड नामक गान)

प्रिया के विरह से कातर, महाबलवान् प्यारी के देखने को उत्सुक विस्मित चित्त गजराज भ्रमण करता है।

(इसी समय में चर्चरी गीत)

हे प्रभो नीलकंठ ! मैं आपके निकट प्रार्थना करता हूं, इस वन में विचरते विचरते यदि आप मेरी प्रियतमा को देखें, तो मुझ से कह देना।

उसकी चाल हंस की चाल के समान, और उसका मुख चंद्रमा के तुल्य है। यह सब उसके लक्षण हैं।

(चर्चरी गीति के सहित बैठकर और हाथ जोड़कर)

हे श्वेतवर्ण अपांग शोभित नीलकण्ठ! जो मेरी उत्कण्ठा का कारणी भूत है, मेरी उस शोभन दर्शना मृगनयनी प्रियतमा को क्या आपने इस वन में देखा है?

(चर्चरी गीति के सहित चारों ओर को दृष्टि डालकर)

यह तो मेरी बात का बिना ही उत्तर दिये नृत्य करने में प्रवृत्त होगये।

(फिर चर्चरी गान)

तब इनके आनन्द का कारण क्या है? हाँ समझा मेरी प्यारी के अलक्षित होजाने से आज उनको मेघवत् मनोरम् कलाथज्ञाल प्रति द्वन्दीहीन होगई। उस सुकेशी के केशों में फूल बँधे रहते हैं, रति के श्रम से उनका बंधन ढीला होजाता है और केशों के विद्यमान रहने से यह मोर ही उसके चित्त को आनन्दित कर सकते हैं। जो हो पराई विपत्ति देख कर इनको आनंद उत्पन्न होता है--इस लिये अब इनसे कोई बात नहीं पूछूंगा।

[द्विपदिका गीत गाते गाते चारों ओर देख कर) यही तो जो धूप दूर होने पर मद से मतवाली हो जाती है--पक्षियों की जाति में चतुर वही कोकिला जामुन के पेडकी टहनी पर बैठी है। इससे पूछूं।

(खुरक नामक नृत्य)

हृदय को आनन्द देने वाली प्यारी को खोकर यह अत्यंत ऊंचा गजराज विद्याधर वन में प्रवेश करके दुःख जनित आंसू बहाता हुआ विचर रहा है।

(फिर चर्चरी गान)

हे पर भूते। हे मीठे गले वाली! तुम निर्विघ्न नंदन वन में विचरती हो, यदि तुमने मेरी प्यारी को देखा हो तो बतादो? (यह कह नाचते वलान्तिका नामक राग के विशेष उपराग सहित निकट वर्ती हो जुटुओं के वन बैठ कर) हे कोकिले! हे मधुर भाषिणी! कामीजन तुमको काम की दूती कहते हैं और तुमको ही मानापमान में निपुण अमोघ अस्त्र कहा करते हैं--इस लिये तुम प्यारी को मेरे पास ले आओ। अथवा वह प्रियतमा जहाँ हो वहाँ शीघ्र मुझको ही लेजाओ।

(मस्तक कम्पन के सहित वाम पार्श्व को देख और
एकटक निहारता हुआ)

आप क्या कहते हैं? आप उससे प्रेम करते हैं, तो भी उसने आपको छोड़ दिया है? क्या यही बात कहते हैं (सामने को देखकर) कोकिले! यद्यपि वह कुपित हुई है--किन्तु मैंने जो क्रोध का कोई काम किया है--सो तो मुझे याद नहीं आता प्रियतम के ऊपर जो रमणीयों की प्रभुता है, वह प्रणय--शैथिल्य की अपेक्षा नहीं करती। अर्थात् प्रणय अन्यथा भाव देखने पर ही जो वे कुपित होती हैं सो यह बात नहीं है प्रणय ढीली न होने पर भी समय विशेष में वे कुपित होती हैं।

(संभ्रम से उपवेशन फिर दोनों घुट्टए टेक 'कुपिता' इत्यादि
श्लोक उच्चारण पूर्वक चारों ओर देखकर)

यह तो अब मेरी बात का कोई उत्तर न देकर अपने काम में तत्पर होगई। शास्त्र में जो लिखा हैं, वह युक्ति संगत ही है। पराया दुःख अत्यन्त अधिक होने पर भी दूसरे के निकट वह शीतल है। मैं दुःखी हूं, मेरे प्रेम को न गिनकर ही यह मदान्ध कोकिला अधर तुल्य पके हुए जम्बुफल (जामन) भक्षण करने में प्रवृत्त हुई है। जो हो, यह कोकिला ऐसी होने पर भी इस पर मेरा क्रोध नहीं है, क्योंकि इसके कंठ का स्वर मेरी प्यारी के कंठ-स्वर की समान मधुर है। कोकिले! तुम सुख से रहो—मैं अब जाता हूं।

(यह कहकर उठना और द्विपदिका गीति के सहित परिक्रमण
तथा दर्शन करके)

अरे! यह तो बन के दक्षिण प्रान्त में प्यारी के चरण रखने की सूचना देनेवाली पाजेब की ध्वनि सुन पड़ती है, तो उसी स्थानमें जाऊं।

(फिर कुसुम नामक राग के सहित षड़्विध)
अवच्छेद युक्त गीति गान)

गजराज बन में विचरण करता है। प्यारी के विरह से उसका मुख अत्यन्त मलीन, लगातार दोनों नेत्र व्याप्त—असह्य दुःख के भार से चाल स्खलित (डगमग) अत्यन्त उग्र संताप से अत्यन्त संतप्त एवं चित्त दुःख से अतीव आकुल और भय से विह्वल है।

(अनन्तर द्विपदिका गान पूर्वक चारों ओर देखकर)

प्यारी हथिनी का विरह होने के कारण शोकाग्नि द्वारा संतप्त और अश्रु-जल से आकुल नेत्र वाला गजराज विह्वल हृदय से घूम रहा है।

(करुण भाव से) हा धिक ! कैसा कष्ट है ? मान सरोवर में जाने को उत्सुक राजहंस मेघ माला में श्याम वर्ण की दिशाओं को देखकर कूजन करता है–यह प्यारी के पायजेब की ध्वनि नहीं है । इतना कहने के पीछे उठकर) जो हो यह मान सरोवर में गमनोत्सुक हंस इस सरोवर से आकाश में जाना चाहते हैं, अतएव इनके निकट से प्यारी का हाल ज्ञात (मालूम) करूं ।

(बलान्तिका गीति के सहित निकट वर्त्ती हो दोनों घुटुए टेककर)

हे जल के पक्षिराज ! आप मान सरोवर को तो पीछे जाना, इस समय पाथेय स्वरूप जो मृणाल छोड़ा है, इसको भी पीछे ग्रहण करना पहले मुझको इस प्यारी के विरह जनित शोक से उद्धार करो । साधु जन अपना अर्थ साधने की अपेक्षा प्रेमी जनों के काम को भारी विचारते हैं (तिर्यक भाव से देखकर) अरे ! यह राजहंस जिस भाव से उदग्रीव होकर मुझको देखते हैं—उससे स्पष्ट समझा जाता है कि वे (हम अब विदेश जाने को चित्त में उत्सुक हुए हैं हमने तुम्हारी प्यारी को नहीं देखा) मानो यही बात कहते हैं ।

(बैठकर चर्चरी गीति)

अरे रे हंसो ! छिपाते क्यों हो ? (यह कह कर नृत्य सहित उठकर) हे हंस ! यदि मेरी चौड़ी भौंओं वाली प्यारी को तुमने नहीं देखा हो तो हे चोर ! तुमने यह मद–स्खलित सविलास गति कहां से पाई ? तुमने निसन्देह मेरी प्यारी को देखा है, और उसकी चाल को देखकर उसी चाल का अनुकरण किया है ।

(चर्चरिका गीति के सहित निकट वर्त्ती हो हाथ जोड़कर)

हे हंस ! जब कि मैं देखता हूं कि तुमने मेरी प्यारी की चाल को हरण किया है—तब तुमने ही मेरी प्यारी को लिया है । अतएव उसको दे दो । क्योंकि जिस पदार्थ के लिये धर्माधिकरण (न्यायालय) में अभियोग उपस्थित होता है–उसका एक अंश वा अंशतः ग्रहण करना प्रमाणित होने पर वह सब पदार्थ ही अभियुक्त व्यक्ति प्रार्थी को लौटाने के लिये विवश होता है ।

पुनर्वार चर्चरी गीति ।

हे गति लालस ! तुमने मेरी प्यारी के समान गमन करना कहां से सीखा ? तुमने निश्चय ही जाँघों के भारसे मन्थरा मेरी प्यारी को देखा है।

(पुनः चर्चरी गीति)

(सानुनय हंस इत्यादि वारम्वार पाठ करने पर द्विपदिका गाने के सहित निर्देश पूर्वक)

(यह व्यक्ति चोरों का शासन करने वाला राजा है, यह समझ कर क्या हंस चले गये ? तो दूसरा अवसर खोजूं ?

(द्विपदिका के सहित परिक्रमण और देखकर)

यह चक्रवाक अपनी प्यारी के साथ बैठा है, इसी से पूछूं ।

(अनन्तर कुटिलिका नामक अभिनय विशेष) मरमर ध्वनि युक्त मनोहर (मन्द घटी नामक नाट्याभिनय) कुसुमित वृक्ष द्वारा पल्लवित (चर्चरी) बन में प्यारी के विरह से उन्मत्त गजराज घूम रहा है ।

(अनन्तर दोलयों के पीछे चर्चरी)

हे गोरोचन की समान कुंकुम वर्ण चक्रवाक ! तुम मुझको बताओ, जो वासन्ति दिन में क्रीडा करती है, उस धन्या प्रियतमा को क्या तुमने देखा है ?

(चर्चरी के सहित निकट वर्त्ती हो दोनों घुटुए टेक कर)

हे चक्रवाक ! रथांग की समान नितम्बों वाली ने मुझको त्याग दिया है । शतशः मनोरथों से मैं ढक रहा हूं – मैं रथी और राजा हूँ—तुम से पूछता हूं (मैं राजा हूं मेरे प्रश्न का उत्तर देने में विलम्ब करना तुमको उचित नहीं हैं) इस चक्रवाक ने केवल ' यह कौन है—यह कौन है) शब्द किया । यह निःसन्देह मेरा परिचय नहीं जानता । सूर्य एवं चन्द्र जिसके मातामह और पितामह तथा उर्वशी और पृथ्वी ने स्वयं जिसको वरण किया है—मैं वही पुरुरवा हूं । चक्रवाक तो चुप चाप ही रहा । रहो—इसका तिरस्कार करूं (दोनों घुटुए टेक कर स्थित हो) तो अपने अनुमान के अनुसार ही काम करना चाहिये । क्योंकि इस सरोवर में जब तुम्हारी सहचरी प्रियतमा दूर रहकर नलिनी पत्र की ओट में अवस्थान करती है, तब ही तुम उत्कंठित चित्त से कलरव करते हो यह अपनी पत्नी के ऊपर स्नेह वशतः पृथक् अवस्थिति जनित भय है । मैं भी अपनी प्यारी के विरह से दुःखी हूं तब फिर मेरे प्रति तुम्हारा ऐसा आचरण क्यों है ? (बैठकर) सब ही मेरे अभाग्य का फल है—तो अब दूसरा सुयोग ढूंढूं ?

(द्विपदिका के सहित परिक्रमण और दर्शन पूर्वक)

दाँतों से प्यारी का होठ काटने पर उसके शीत्कार-समाकुल मुख की समान गर्भ में भ्रमर-ध्वनि युक्त यह शत दल मुझको निरोध करता है । यहां से जाने पर संतप्त नहीं होना पड़े, इस लिये हय शत दल गर्भ

शायी भ्रमर के संग वन्धुता (मित्रता) करूँगा। (नन्द्यावर्त्ती पर नामक अर्द्ध द्विचतुरस्रक गीति) जिसका लगातार भारी प्रेम रस बढ़ा है वही यह हंस युवक काम के वशी भूत होकर सरोवर में क्रीड़ा करता है।

(चतुरस्रक गीति के सहित उपवेशन पूर्वक हाथ जोड़कर)

हे मधुकर ! यदि मेरी उस मदिराक्षी—प्यारी को देखा हो, तो बता दो। यदि तुम उसके मुख कमल की निःश्वास गन्ध प्राप्त करते हो—तव फिर क्या तुम्हारी पद्म के प्रति प्रीति उत्पन्न होना संभव है ?

(यह कहकर द्विपदिका के सहित परिक्रमण और दर्शन करके)

यह जो गजराज हथिनी के साथ कदम्ब वृक्षके गुद्दे में देह संलग्न करके अवस्थान कर रहा है—मैं उसके निकट उपस्थित हूं।

(इसके पीछे कुटिलिका)

हस्तिनी के वियोग से सन्तापित गजराज (मन्दघटी) वन में मदकी गन्ध से भौंरों को उन्मत्त करके भ्रमण करता है। फिर चारों ओर देख कर) अव पास पहुंचने का ठीक समय है। इस समय प्यारी हस्तिनी अपने हाथ से शल्लकी वृक्ष के नव पल्लव तोड़कर प्रियतम हाथी को देती है। अव गजराज उसके मद की गंधसे पूर्ण रस आस्वादन करे (आलाप विशेष करके दर्शन पूर्वक) अरे ! गजराज का आहार शेष होगया है। सो होजाओ—अब पास चलकर पूछूँ।

(इसके पीछे चर्चरी)

हे गजराज ! तुमने ललित प्रहार से तरुराज को ध्वंस किया है। मैं तुमसे पूछता हूं--जिसने अपनी कान्ति से चन्द्रमा को भी परास्त किया था, क्या उस मोह कारिणी प्रियतमा को देखा है ?

(दो पग आगे बढ़कर)

हे मदमत्त यूथपते ! यूथिका पुष्पों के खींचने से जिसके केश पाश विचित्र शोभा से सुशोभित होते हैं, वह स्थिर यौवना सुदर्शना मेरी प्यारी क्या तुम्हारे पास से बहुत दूर देश में निवास करती है ?

(सानन्द कान देकर)

इस प्रिया दर्शन की सूचना देनेवाली बढ़ती हुई ध्वनि से विश्वस्त हुआ अर्थात् उसके दर्शन मिलने का भरोसा हुआ। समान धर्म के कारण तुम से मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूँ। मैं पृथ्वीपति (राजा) हूँ, तो तुम भी गजराज हो। तुम्हारा दान (मद टपकाना) और मेरा दान (धन बाँटना) लगातार होता रहता है। मेरी प्रेमिका उर्वशी रमणी कुल में प्रधान है, तो तुम्हारी प्रियतमा भी (श्रेष्ठ) हथिनी है। मेरे साथ तुम्हारी सभी बातें

समान हैं। किन्तु इनमें भेद इतना है कि मैं प्रियतमा के वियोग से उत्पन्न हुआ दुःख भोग रहा हूँ—और तुम वह दुःख नहीं भोग रहे हो। तुम सुख से रहते हो।

(द्विपदिका के सहित परिक्रमण और दर्शन पूर्वक)

अरे! यही तो वह "सुरभि कन्दर" नाम वाला परम मनोहर पर्वत है। यह पर्वत अप्सराओं को अत्यन्त प्रसन्नता देने वाला स्थान है। वह शोभायमान अंग वाली क्या इसी पर्वत की तलैटी में निवास करती है? (घूमकर देखने पर) यह क्या! अंधकार होगया। होजाओ। बिजली का प्रकाश होने पर उस प्रकाश से इस पर्वत को देखूँगा। यह क्या! मेघ भी बिजली से खाली होगया। यह क्या मेरे खोटे भाग्य का ही परिणाम है? हुआ करे तो भी इस पर्वत को विना देखे नहीं लौटूँगा।

(अनन्तर खण्डिका गीति)

घोरतम वन में शूकरराज अपने अत्यन्त पैने खुरों से भूमि को खोदते हुए फिर रहे हैं, यह वराह अपना काम सिद्ध करने में तत्पर (उद्यत) और निडर हैं।

हे विशाल नितम्ब वाले पहाड़! दोनों स्तनों की ऊंचाई के कारण जिसकी छाती अल्प परिसर युक्त है,कमर आदि अंगोंके जोड़ जिसके क्षीण हैं,जो काम–पत्नी रति की समान सुलक्षण और पृथु–नितम्बिनी है इस प्रकार लक्षणों से लक्षित कामिनी इस वन के भीतर क्या आश्रय कर रही है? पर्वत मौन भाव धारण किये रहा अर्थात् कुछ न बोला! जान पड़ता है—दूर होने के कारण सुन नहीं सका। मतसुनो—मैं पास जाकर पूछूं।

(इसके पीछे चर्चरीगीति)

हे भूधर राज! तुम्हारे स्फटिकमय पाषाण तल पर स्वच्छ निर्झर (सरोवर झरने आदि) शोभा पाते हैं–तुम्हारा शिखर प्रदेश भाँति-भाँति के पुष्प भार से चित्रित है और किन्नरों के मधुर स्वर से गान करने पर तुम और भी मनोहर दर्शन होगये हो–तुमने क्या मेरी प्रियतमा को देखा है?

(चर्चरिका। गीति सहित निकटवर्त्ती हो कर जोड़कर)

हे सब पर्वतों में श्रेष्ठ! तुमने क्या इस वनमें मेरी सर्वांग सुन्दरी प्यारी को देखा है? मैं उसी के विरह में दुःखी होरहा हूं।

(प्रतिध्वनि सुनकर आनन्द से)

इसने तो क्रमक्रम से देखा है, कहां । कहां, देखूं (चारों ओर देखकर संखेद, अहो ! यह तो गुफा में फैली हुई मेरी बात की ही प्रतिध्वनि है।

(मूर्च्छा और तुरन्त उठकर उपवेशन पूर्वक विषाद से)

अहह ! थक गया—इस पहाड़ी नदी के किनारे की तरंग युक्त वायु सेवन करूँ ।

(द्विपदिका गीनि के सहित परिक्रमण और देखकर)

नये जलके आने से कलकल करने वाली इस स्रोतस्विनी (नदी) को देखकर मुझको परम संतोष उत्पन्न होता है। क्योंकि मेरी प्यारी उर्वशी इसी नदी के रूपमें परिणत होगई है । तरंगें ही उसकी भ्रूभंगी हैं तरंगके वेगसे चंचल विहंग श्रेणी ही काञ्ची दाम स्वरूप है;फेन समूह ही कोपवशतः शिथिल हुए वस्त्र स्वरूप है,प्रियतमा बारम्बार कोपवशतः जिस प्रकारटेढ़ी चालसे जाती है,यह नदी भी उसी प्रकार टेढ़ी चाल वाली है। इसलिये निश्चय जाना जाता है कि मेरे अपराध को न सह सकने पर प्रियतमा के रूपमें परिणत होगई है। होआओ मैं इसको प्रसन्न करता हूँ। हे प्रियतमे ! सुन्दरी नदी रूपे उर्वशी ! तुम मेरे इस नमस्कार से प्रसन्न होओ। नदी रूपिणी तुममें हंस इत्यादि पक्षी चंचल होकर करुण स्वरसे कूजन करते हैं, गंगाजी की समान नदी रूपिणी तुम्हारे किनारे पर मृग-गण विचरण करते हैं और मकरन्द के लालच से अलिकुल (भौंरे) भी चारों ओर गुंजारते हैं ।

(कुटलिका के पीछे चर्चरी)

जलनिधिनाथ के पूर्व दिशासे आती हुई वायु के वेगसे आहत (ताड़ित) होने पर जो कल्लोल उठती हैं, वही उसकी बाहु स्वरूप हैं* जलनिधि सुललित भाव से नृत्य कर रहा है । हंस–चक्रवाक–शंख–कुकुम इत्यादि उसके गहने हैं, हाथी, मकर आदि जन्तु गण नीलञ्जल व्याप्त करके अवस्थान करने के कारण वही मानों नीले रंग का उत्तरीय वस्त्र (दुपट्टा) स्वरूप हुआ है, जल राशि उफन कर जो बेला-भूमि में टक्कर मारती है, वही करतालि स्वरूप है, काले रंग वाले नूतन मेघ के उदय होकर दशों दिशा ढक देने पर जलनिधिनाथ इस प्रकार नृत्य करता है ।

(चर्चरी गीति के सहित निकटवर्त्ती हो दोनों घुटुए टेककर अवस्थान)

* यहां उन्माद की अधिकता के कारण नदी को ही समुद्र वर्णन किया गया है ।

हे मानिनी! मैं तुममें ही अत्यन्त आसक्त हूँ; मैं सदा तुम्हारे निकट प्यारे वचन कहने में ही तत्पर रहता हूँ-मेरा चित्त प्रीति तोड़ने में परांमुख है; तो फिर क्या अपराध देखा; जो इस दासको त्याग दिया? यह क्या! नदी तो चुपचाप ही रही। अथवा यह सत्य ही नदी है-उर्वशी नहीं अन्यथा पुरूरवा को छोड़कर समुद्र की अभिसारिणी क्यों होती? बहुत ही कष्ट से कल्याण की प्राप्ति होती है। हो-जिस स्थान में वह सुलोचना मेरी आँख-ओट हुई है-अब मैं उसी स्थान में जाता हूँ।

(परिक्रमण और अवलोकन करके)

यह जो एक हरिण बैठा है, इससे ही प्यारी का सम्बाद पूछूं।

ऐरावत नामक गजराज अपनी हथिनो के विहरानल से सन्तप्त होकर नन्दन वनमें विचरण करता है। मदमत्त कोकिला के कूजन और भौंरों की गुञ्जार से यह नन्दन वन मनोरम हो उठा है और नये-नये फूलों से शोभित-मस्तक वृक्ष-श्रेणी के द्वारा अत्यन्त मनोहरता धारण कर रहा है*।

(अनन्तर गलितक नामक अभिनय विशेष और दोनों घुटुए टेककर अवस्थान)

यह तो कृष्णसार मूर्त्ति दिखाई देती है-जान पड़ता है-मानों कानन-लक्ष्मी नवशस्य (नये अन्न) को देखने के लिये कटाक्ष पात कर रही है (चारों ओर देखकर) स्तन पीने वाले बच्चे के साथ एक हिरनी पास आरही है, उपरोक्त कृष्णसार (मृग) एकटक दृष्टि से हिरनी को ही देखता है।

(अनन्तर चर्चरी गीति)

जो सुर सुन्दरी (अप्सरा) है, जाँघों के भारसे जिसकी गति अलस (मन्थर) है, जिसके दोनों स्तन पीनोन्नत और घन हैं, जो स्थिर यौवना है, जिसका देह दुवला और चाल हंसकी चालके समान है-उस मृगलोचना प्रियतमा को क्या गगन की समान निर्मल वनमें विचरते हुए देखा है? उसका समाचार मुझसे कहकर विरहके समुद्र से मेरा उद्धार करो।

(पास पहुँच हाथ जोड़ कर)

अहो हरिणीपते! तुमने क्या इस वनमें मेरी प्यारी को देखा है? उसका परिचय देता हूँ-सुनो! तुम्हारी सहचरी यह हरिणी जिस प्रकार

* ऐरावत के भ्रमण-मिस राजाने अपनी अवस्था प्रकट की है।

विशाल नयना है,मेरी सुभगा प्रियतमा भी निसन्देह ऐसी ही है (देखकर) यह हरिण तो मेरी बात का अनादर करके भार्या की ओर को चला गया । जब भाग्य का फेर होता है-तो इसी प्रकार पराभव का पात्र बनना पड़ता है । अतएव अब दूसरे उपाय का सहारा लेना चाहिये ।

(परिक्रमण और दर्शन पूर्वक)

अहो ! प्रियतमा जिस मार्ग से गई है-उसका निशान मिलगया । यह जो लालरंग के कदंब पुष्प खिले हैं-इससे ही जाना जाता है कि ग्रीष्म का अन्त होकर वर्षा का आगमन हुआ है ? (क्योंकि वर्षाकाल में ही कदम्ब के फूल खिला करते हैं) यद्यपि तुरन्त के खिले होने से पूरे-पूरे नहीं खिल सके हैं, किन्तु तो भी प्यारी ने इनको लेकर मस्तक का गहना किया है ।

(परिक्रमण और चारों ओर देखकर)

शिलाभंग के बीच में स्थित अत्यन्त लोहित वर्ण यह क्या दिखाई देता है ? इस वस्तु ने अपनी प्रभा से सब स्थानों को व्याप्त कर रक्खा है । यह तो सिंह से मारे हुए हाथी के मांस का टुकड़ा नहीं है, आग की चिनगारियां भी नहीं है, क्योंकि अभी थोड़ी देर हुई वर्षा से यह स्थान अभिषिक्त(गीला) हो चुका है, अरे ! यह तो रक्तवर्ण अशोक स्तवक की समान एक मणि है । इस मणि को ग्रहण करने की अभिलाषा करके सूर्य ने मानों उठा लेने के लिये अपने कर (किरणें) फैला दिये हैं, जो हो इसको ग्रहण करूं ।

[मणि ग्रहण]

प्यारी के मिलने की अधिक आशा के कारण कातर-वाष्पाकुल नेत्र, मलीन मुख गजराज दुःखित होकर गहन वन में भ्रमण कर रहा है ।

(द्विपदिका गाति के सहित निकटवर्त्ती होकर मणिग्रहण पूर्वक आप ही आप)

प्रियतमा के मन्दार पुष्प से सुवासित केश पाश में यह मणि धारण करने योग्य है । जब वह प्यारी ही मेरे पक्ष में दुर्लभ है, तब फिर मैं क्यों अश्रु-जल से इस मणि को दूषित करूं ?

[मणि का डाल देना]

नैपथ्य में-वत्स ! ग्रहण करो ! वत्स ग्रहण करो । इसका नाम संगमनीय मणि है, गिरि नन्दनी के चरणराग से यह उत्पन्न हुई है । इसको धारण करने से शीघ्र प्रियजन के साथ मिलन होता है ।

राजा—(ऊपर की ओर देखकर) मुझको कौन उपदेश देता है? (देखकर) यह क्या? भगवान् चन्द्रदेव! भगवन्! मैं इस उपदेश से अनुग्रहीत हुआ। [मणि ग्रहण पूर्वक] अहो संगम मणे! मुझको इस समय दुबली कमर वाली प्रियतमा ने त्याग दिया है। यदि तुम मेरे साथ उसके मिलन का कारणीभूत होजाओ, तो महादेवजी ने जिस प्रकार चन्द्रमा की कला को मस्तक पर धारण किया है, मैं भी तुमको उसी प्रकार शिखामणि करके रक्खूँगा।

(परिक्रमण और अवलोकन पूर्वक)

यह जो लता दीख रही है-यद्यपि इस पर पुष्पोद्गम नहीं है-किन्तु तो भी इसको देखने से मेरे हृदय में प्रीति का संचार होता है अथवा मेरा मन जो इसमें आसक्त हुआ है-यह युक्ति संगत है। इस कृशाङ्गी लतिका के पल्लव मेघके पानी से गीले होने के कारण जान पड़ता है मानों अश्रु-जल द्वारा होठ धुल गये हैं, पुष्पोत्पत्ति का उपयुक्त समय उपस्थित न होने के कारण फूल नहीं खिले हैं, इसलिये आभूषण हीन मालूम होती है। जो कि फूल नहीं हैं, इसलिये भौंरे भी उपस्थित नहीं हुए। भौंरों की गुंजार न रहने से जान पड़ता है--मानों चिन्तामें डूब रही है। मेरे पैर पड़ने पर भी कोपवती मेरी प्रियतमा रोष वशतः जिस प्रकार मेरा निरादर करके चली जाती है, यह लतिका भी वैसी ही दिखाई देती है (मानों मुझ को बोध होता है कि मेरी प्रियतमा ही इस लतिका के रूपमें अवस्थान करती है) अतएव इस प्रियतमा का अनुसरण करने वाली लतिका को आलिंगन करूँ। हे लतिके! देखो यदि प्रारब्ध से तुमको पाजाऊँ तो मेरा हृदय सुस्थ होवे फिर मुझको इस वनमें घूमना नहीं पड़े। और फिर मैं अपने जीवन अन्त को करने वाली प्रियतमा को इस वनमें नहीं घुसने दूंगा।

(यह कह चर्चरिका गीतिके सहित हो निकटवर्त्ती दो लतिका को आलिंगन)

(उसी स्थान को आक्रमण करके उर्वशी का प्रवेश)

राजा—(नेत्र मींचे हुए स्पर्श सुख अनुभव करके) अरे! उर्वशी के अंग को छूने से जिस प्रकार आनन्द बोध होता है—इस लता के छूने से भी मुझको वैसे ही आनन्द का संचार होता है। किन्तु तो भी विश्वास उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि मैंने पहिले जिसको प्रियतमा समझा था—वह मुहूर्त्त भर में दूसरे रूप में बदल गई थी। अतएव स्पर्श मात्र से प्रणयिनी जानकर दोनों आँखें मींचली हैं—अब इनको एकाएक नहीं खोलूंगा।

'विशेष तिथि है, देवी ने आद्य भगवती गंगा और यमुना के संगम में स्नान करके पट वास गृह में प्रवेश किया है। इस समय वे गहनों से विभूषित हुई हैं—अतएव मैं जाकर उनका अंगानुलेपन और माल्य-भोगी भ्राता बनूं ।

नैपथ्य में—हा धिक् ! हा धिक् ! उर्वशी रहित महाराज जिस समय अपने मस्तक में मणि को रख रहे थे, उस समय वह उज्ज्वल मणि लाल रंग के तालवृन्त से ढक रही थी—दुर्वृत्त गृध्र माँस का टुकड़ा समझ कर उसको खेंच कर लेगया।

विदू—(सुनकर) यह तो अत्यन्त ही दारुण घटना घटी है । वह संगमनीय मणि सखा की बहुत ही प्यारी वस्तु है (उसके हरण हो जाने से) महाराज वेशभूषा ठीक होते न होते ही आसन से उठे हैं—इसलिये मैं उनका पार्श्वपूर्व सहचर बनूं ।

(प्रस्थान)

[राजा-सूत-कंचुकी-रेचक-(किरात) और परिजन गणों का प्रवेश]

राजा—रेचक ! रेचक ! वह पक्षी तस्कर कहाँ हैं ? उसने अपने मरने का उपाय आपही किया है। क्योंकि उसने पहले तो रक्षक के घर में ही चोरी की ।

रेचक—यह देखिये—उसके मुखके अग्रभाग (चोंच) में मणि मध्यस्थ स्वर्ण-सूत्र लटक रहा है। वह मणि की किरण माला से आकाश मानों रञ्जित करते २ भ्रमण कर रहा है।

राजा—देख लिया। उसकी चोंच में सोने का तार लटक रहा है। यह पक्षी चक्राकार जलते हुए अँगारे की नाईं मण्डलाकार में भ्रमण करता हुआ रक्तवर्ण-रेखा-वलय विस्तार करता है । अब बताओ-इस समय क्या किया जाय ?

विदू—अब करुणा (दया) का प्रयोजन नहीं, इस अपराधी को दण्ड ही देना उचित है।

राजा—तुमने बात युक्ति संगत ही कही; धनुष ! धनुष कहाँ है ?

परि—महाराज की जैसी आज्ञा !

(परिजन का प्रस्थान)

राजा—अब तो वह पक्षी दिखाई नहीं देता।

विदू—यही तो वह पक्षी दक्षिण दिशा को चला जारहा है।

राजा—(देखकर) मणि की प्रभा से पक्षी की कांति मानों और भी बढ़ गई है। मणि की कांति से जान पड़ता है कि मानों अशोक स्तवक द्वारा दिशा रूपी अंगना के कान का भूषण बनाया गया है।

यवनी—महाराज! यह शर और शरासन दोनों ही लेआई हूँ।

राजा—अब शरासन से क्या फल है? गृध्रवाण-पथ के अतीत हो गया। यद्यपि अधम पक्षी मणि लेकर दूर चला गया है, तो भी यह मणि रात में गाढ़ मेघावृत मंगलगृह की नाईं शोभा पारही है। आर्य तालव्य!

कञ्चुकी—देव! आज्ञा दीजिये।

राजा—मेरे कथनानुसार नागरिकों से कहो कि सन्ध्या के समय इस अधम पक्षी को वृक्ष के अग्रभाग में ढूंढें।

कंचुकी—महाराज की जैसी आज्ञा।

(कञ्चुकी का प्रस्थान)

विदू-महाराज! अब विश्राम कीजिये। यह मणि तस्कर पक्षी कहाँ जाकर आपके शासन से बच सकेगा?

(दोनों का बैठना)

राजा—सखे! विहङ्गम ने मणि हरण करली। किन्तु उसके रत्न-विशेष होने के कारण ही जो मैं पुनः प्राप्त करने के लिये श्रम कर रहा हूँ सो बात नहीं, बल्कि इस मणि के प्रसाद से ही प्रियतमा के साथ मेरा मिलन हुआ है।

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—महाराज की जय हो! महाराज की जय हो!! आपके क्रोधनेवाण रूपमें परिणतहो उस पक्षीका अंगवींध डाला, जिससे वह दुष्ट अपराध का उचित फल पाकर शिरोरत्न के सहित आकाश से पृथ्वीतल पर गिरा है।

(यह सुनकर सबका आश्चर्य प्रकाश)

कंचुकी—यह मणि धोई गई है। अब किसको दीजाय?

राजा—रैचक! जाओ, उसको खजाने के बक्स में रखदो।

रैचक—महाराज की जैसी आज्ञा।

(मणि लेकर रेचक का जाना)

राजा—(तालव्य की ओर देखकर) आर्य ! यह बाण किसका है ? जानते हो ?

कंचुकी—नाम के अक्षर अंकित दिखाई देते हैं। मैं अंकित अक्षरों को देखकर निर्णय कर सकूँ, मेरे नेत्रों की ऐसी शक्ति नहीं है।

राजा—बाण मेरे निकट रक्खो, मैं बताये देता हूँ।

विदू०—आप क्या स्थिर करते हैं ?

राजा—प्रहारकारी के नामाक्षर सुनो।

विदू०—सावधान हूँ।

राजा—(पढ़ने लगा) उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न-शत्रुओं की आयु का नाश करने वाले पुरूरवा नन्दन "आयु" नामक कुमार का यह शर है।

विदू०—सौभाग्य से आप पुत्र के द्वारा सम्बर्द्धित हुए।

राजा—यह कैसे ! सखे ! क्षण काल मात्रको उर्वशी से मेरा वियोग हुआ था; मैंने तो कभी भी उर्वशी में गर्भ के लक्षण नहीं देखे, किन्तु केवल कई दिन प्रियतमा की चूचियों का अग्रभाग कुछेक नीले रंग का और मुख की कान्ति लवली फलकी समान पाण्डुवर्ण अर्थात् पीलापन लिये और अंग यष्टि देहस्थ वलय की समान शिथिल देखी थी।

विदू०—आप उर्वशी में मनुष्य धर्म का विचार न करें, देव चरित्र प्रभाव द्वारा निगूढ़ रहता है।

राजा—तुम्हारी बात संभव है। हो-पुत्रको छिपानेका कारण क्या है?

विदू०—मेरे वृद्ध होने पर भी महाराज मुझ को त्याग न करें।

राजा—अब हँसी का समय नहीं है। कारण को सोचो।

विदू०—देवता के भेद को कौन समझ सकता है ?

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—महाराज की जय हो ! महाराज की जय हो !! च्यवन ऋषि के आश्रम से एक बालक समेत भार्गवी नाम वाली तापसी महाराज के संग भेंट करने को आई है।

राजा—शीघ्र ही दोनों जनों को ले जाओ।

कंचुकी—महाराज की जैसी आज्ञा।

[कंचुकी का प्रस्थान]

(तापसी सहित कुमार को लेकर)

कंचुकी का पुनः प्रवेश।

विदू०—गृध्र के लक्ष्य को भेद करने वाले बाण में जिनका नाम अंकित है, निःसन्देह यह वही बालक क्षत्रिय कुमार है। यह कुमार महाराज की बहुत बातों का अनुकरण कर रहा है अर्थात् इसमें महाराज की अनेक बातें मिलती हैं (महाराज के साथ इसकी बहुत समानता दिखाई देती है)।

राजा—यह बात सत्य है। क्योंकि मेरी आँखें इसके ऊपर पड़ते ही आँसुओं से भरी जाती हैं, हृदय वात्सल्य भावसे आर्द्र (गीला) हुआ जाता है, चित्त प्रफुल्लित होरहा है और अधीर होकर कंपित अंगों द्वारा इसको स्नेह से आलिंगन करने की इच्छा करता है।

कंचुकी—(तापसी और कुमार को उद्देश्य करके) इस प्रकार अवस्थान कीजिये।

(तापसी और कुमार का यथायोग्य अवस्थान)

राजा—(समीपवर्त्ती होकर) भगवति ! आपको अभिवादन (प्रणाम) करता हूँ।

तापसी—महाराज ! सोमवंश को धारण कीजिये (स्वगत) किसी के न बताने पर भी महाराज के सहित इसका औरस सम्बन्ध समझा जाता है (प्रकट में कुमार को लक्ष्य करके) वत्स ! पिताकी वन्दना करो।

(अश्रुपूर्ण नेत्रों से हाथ जोड़ कर कुमार का राजा को प्रणाम करना)

राजा—वत्स ! दीर्घजीवी होओ।

कुमार—(स्पर्श सुख अनुभव पूर्वक आप ही आप) यह पिता-मैं पुत्र यह बात सुनने से यदि इस प्रकार प्रेम का संसार हो-तो पिता-माता के अंक (गोद) में सम्बर्द्धित शिशुओं में जो किस प्रकार आनन्द का संचार होता है, उसको कह नहीं सकता।

राजा—भगवति ! आपके आगमन का कारण क्या है ?

तापसी—महाराज ! सुनिये, इस आयुष्मान् के जन्म लेते ही किसी विशेष कारण से उर्वशी ने इसको मेरे हाथ में सौंप दिया है। कुलीन क्षत्रिय सन्तान के जात कर्मादि संस्कार जिस भाव से सम्पादित होते हैं, महर्षि च्यवन ने उनको यथा योग्य सम्पादन किया है। कुमार इस धनुर्वेद में सुशिक्षित होकर कृतविद्य हुए हैं।

राजा—उत्तम।

तापसी—आज फल-फूल समिध और कुश संग्रह के लिये मुनि कुमारों के सहित वन में जाकर इस बालक ने आश्रम के विरुद्ध कार्य किया है।

विदू०—कैसा ?

तापसी—एक गृध्र एक माँस का टुकड़ा मुखमें लिये अशोक वृक्ष की डाल पर बैठा था, इस कुमार ने उसको बाण का लक्ष्य (निशाना) बनाया।

राजा—फिर ? फिर ?

तापसी—इसके पीछे भगवान् च्यवन ने इस घटना को सुनकर मुझ को आज्ञा दी-इस गच्छित वस्तु (बालक) को उर्वशी के हाथ में सौंप दो। इसी लिये मैं उर्वशी को देखने की इच्छा करती हूँ।

राजा—भगवति ! आसन ग्रहण कीजिये।

(तापसी और कुमार दोनों का बैठना)

राजा—आर्य तालव्य ! उर्वशी को बुलाओ।

कंचुकी—महाराज की जो आज्ञा !

(कंचुकी का जाना)

राजा—वत्स ! आओ-आओ ! सर्वाङ्ग में पुत्र का स्पर्श अत्यन्त प्रीति देनेवाला है, अस्तु-चन्द्रमा जिस प्रकार चन्द्रकान्तमणि को प्रसन्न करता है, उसी प्रकार तुम भी मुझको प्रसन्न करो।

तापसी-वत्स ! पिता को सुखी करो।

(यह कहकर कुमार को राजा के हाथ में सौंपना)

राजा—(कुमार को छाती से लगाकर)

वत्स ! इस प्रिय सखा ब्राह्मण को निर्भय होकर प्रणाम करो।

बिदू—मुझ से डरते क्यों हो ? आश्रम वास के कारण शाखा मृग परिचित हैं।

कुमार—[मधुर हँसी के साथ] तात ! प्रणाम करता हूं।

विदू—आपका मंगल हो, आप वृद्धि को प्राप्त हों।

(उर्वशी और कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—आप इधर आइये ! इधर आइये !

उर्वशी—(चारों ओर देखकर) महाराज शिखा बाँधते हुए आसन पर बैठे हैं, यह बालक कौन है ? अहो ! सत्यवती के सहित मेरा ही पुत्र आयु है। अच्छा ही हुआ।

राजा—(देखकर) वत्स ! यह तुम्हारी जननी आकर तुमको देख रही है। उसका स्तन स्थित-वस्त्र (चोली) स्नेह से भीग रहा है।

तापसी—वत्स ! आओ-आओ जननी का प्रत्युद्गमन (परिक्रमा-स्वागत) करो ।

(कुमार को लेकर उर्वशी के निकट जाना)

उर्वशी—आर्ये ! चरणों की वन्दना करती हूं ।

तापसी—वत्से ! स्वामी के निकट बहुत सन्मानित होओ ।

कुमार—आर्ये ! वन्दना करता हूं ।

उर्वशी—वत्स ! पिता की पूजा करो ।

(राजा की ओर देखकर) महाराज की जय हो !

राजा—पुत्रवती का मंगल तो है ? यहां आसन ग्रहण करो ।

उर्वशी—आर्य ! वैठिये ।

[सब का आसन ग्रहण करना]

तापसी—वत्से ! इस बालक ने विद्या सीखकर अब अस्त्र और वर्म (बख्तर) धारण किया है । तुम्हारे पति के सामने मैंने तुम्हारा सौंपा हुआ द्रव्य तुमको दे दिया । अब मुझको विदा दो । मेरे आश्रम धर्म का यथायोग्य समय बीता जाता है ।

उर्वशी—बहुत काल पीछे आपको देख कर मैं विरह की उत्कंठा से व्याकुल हुई हूं—किन्तु धर्म लोप नहीं कर सकती । अतएव पुनरागमन के लिये इस समय यात्रा कीजिये ।

राजा—आर्य ! भगवान् च्यवनऋषि को मेरा प्रणाम विदित कराना ।

तापसी—वह विदित कराऊंगी ।

कुमार—सत्य सत्य ही आप लौटकर जाती हैं—तो मुझको भी अपने संग लीजिये ।

राजा—वत्स ! पहले तुमने ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान किया है, अब तुम्हारे दूसरे आश्रम गृहस्थ-धर्म के अनुष्ठान का समय उपस्थित है ।

तापसी—वत्स ! पिता के वचन की रक्षा (पालना) करो ।

कुमार—जो आज्ञा ! किन्तु जो मस्तक खुजाने के समय मेरी गोदी में लेटकर सोया करता है और अब जिसके पंख जम (निकल) आये हैं, मेरे इस नीलकण्ठ मोर को भेज देना ।

तापसी—वत्स ! यही होगा अर्थात् उसको तुम्हारे पास भेजदूंगी ।

उर्वशी—भगवति ! चरण वन्दना करती हूँ ।

राजा—भगवति ! प्रणाम करता हूँ ।

तापसी—सबका कल्याण हो ।

(तापसी का जाना)

राजा—शची के गर्भ से उत्पन्न हुए जयन्त द्वारा देवराज इन्द्र जिस प्रकार अग्रगण्य हुए हैं, तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न इस सुपुत्र के द्वारा मैं भी आज उसी प्रकार पुत्रवानों में अग्रणी हुआ हूं।

उर्वशी—(पूर्व वृत्तान्त याद करके रोदन)

विदू—देवि ! इस समय अश्रुमुखी क्यों हुईं अर्थात् रोने का क्या कारण है ?

राजा—सुन्दरि ! मैंने वंश की चिरस्थिति प्राप्त करली—इसलिये यह आनन्द का समय है-इस समय तुम आँसू क्यों गिरा रही हो ? तुम अपने पीन पयोधरों पर स्थित मुक्त माल के ऊपर आँसुओं का जल डालकर उसको पुनरुक्त (सिंचित) क्यों करती हो ? (तुम्हारी जो आँसुओं की बूँदें मुक्तावली के ऊपर गिरती हैं—वह भी मोतियों के समान ही शोभा पाती हैं) विशेषकर तुम्हारा इस समय अश्रु-विसर्जन करना अत्यन्त ही अनुचित है।

उर्वशी—महाराज ! सुनिये, मैं पहिले पुत्र दर्शन के आनन्द में भूलगई थी, पर आपके देवराज का नाम लेने से अब वह सब बात मुझको याद हो आई।

राजा—वह क्या बात है ? कहो।

उर्वशी—महाराज ! सुनिये, प्रथम जब महाराज ने मेरे चित्त को हरण किया था, तो इसलिये गुरू ने मुझको शाप दिया। फिर देवराज ने दया करके शाप मोचनार्थ आज्ञा दी थी।

राजा—क्या आज्ञा दी थी ? कहो।

उर्वशी—' मेरे प्रिय सखा राजर्षि पुरूरवा जिस समय तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न हुए पुत्र का मुख देखेंगे, उसी समय तुम फिर मेरे निकट आ जाओगी '। इसी लिये मैंने महाराज के विरह की आशंका तथा एकत्र रहने के उद्देश्य से भगवान् च्यवन के तपोवन में सत्यवती को यह पुत्र थाती स्वरूप सौंप दिया था। अब यह बालक पिता की आराधना (सेवा) करने में समर्थ होगया, बस यही विचार कर यहां लायागया है।

(यह सुनकर सब का दुःख भाव और राजा का मूर्च्छित होना)

सब—महाराज ! धैर्य रखिये ! सावधान हूजिये !

कंचुकी—महाराज ! सावधान हूजिये।

विदू—अब्रह्मण्य, अब्रह्मण्य !

राजा—(सावधान होकर) हाय ! दैव ही सुख में विघ्न स्वरूप है। हे कृशोदरि ! मैं पुत्र पाकर आनन्दित हुआ था, उसी परमानन्द के समय तुम से वियोग हुआ ! प्रथम जल की वर्षा से ताप शान्त होते ही वृक्ष के ऊपर विद्युताग्नि गिरी !

विदू—मैं तो इस पुत्र—प्राप्ति रूप घटना को ही अनर्थ का उत्पन्न करने वाला समझता हूँ। आप स्वयं जाकर सुरराजको प्रसन्न कीजिये।

उर्व—हाय ! मैं बड़ी ही मन्दभागिनी हूँ। मैं मारी पड़ी। इस सुविनीत पुत्रकी प्राप्तिके पीछे मैं जब स्वर्गधाम में जाऊंगी, तब बियोग मुखी मुझ को आप आश्वास (ढाढस) देना।

राजा—सुन्दरी ! ऐसा नहीं है। पराधीनता का विरह सदा ही सुलभ है। वह अपना प्रिय सम्पादन नहीं कर सकता। अतएव तुम स्वामी देव-राजके शासन में अवस्थित रहो। मैं भी अब पुत्र के ऊपर राज्य का भार सौंप कर मृग-यूथ-पूर्ण वनका सहारा लेता हूँ।

कुमार—पिता ! जो भार महा वृषभ उठाता है, उस भार को अनभ्य-स्त व्यक्ति के ऊपर डालना उचित नहीं है।

राजा—वत्स नहीं ऐसा नहीं है। विजयी मत्त गज शावक होने पर भी अन्यान्य हाथियों को परास्त कर सकता है। अत्यन्त उग्र सर्प-शिशु का विष जिस प्रकार तत्क्षण प्राण—नाश करने में समर्थ होता है, उसी प्रकार बालक होने पर भी धरणी का अधीश्वर पृथ्वी का भार उठाने में समर्थ होता हैं। अतएव जाति वा अवस्था द्वारा स्वकार्य साधन के गुण का निश्चय नहीं किया जाता है। आर्य तालव्य !

कंचुकी-महाराज ! आज्ञा दीजिये।

राजा—मेरी आज्ञानुसार मन्त्रीवर पर्वतसे कहो कि इस आयुष्मान् कुमार के राज्याभिषेक का आयोजन करें।

(दुःखित भावसे कंचुकी का जाना)

[सबकी आँखों से ही विषाद भाव प्रकाश]

राजा—(आकाश की ओर देखकर) अहो ! क्या बिजली गिरी न ? (भली भाँति देखकर) अहो ! निकषं पत्थरके ऊपर जिस प्रकार गोरोच-ना की रेखा पड़ती है, उसी प्रकार पिंगल वर्ण जटा जूट मण्डित-चन्द्र-कला की नाईं निर्मल उपवीत (जनेऊ) धारी मुक्ता माला के द्वारा अति-शय सम्बर्द्धित अंलकार युक्त स्वर्णमय प्ररोह शोभित सचल कल्पतरु की समान भगवान् देवर्षि नारद जी आरहे हैं। अर्घ्य ! अर्घ्य !

उर्व—इन महर्षि के लिये अर्घ्य लीजिये।

[नारद जी का आना]

नारद--मध्यम लोकपाल की जय हो।

राजा--भगवन्! वन्दना करता हूं।

उर्व--भगवन्! प्रणाम करती हूं।

नारद--(आर्शीवाद देकर) दम्पति विरह-शून्य हो अर्थात् परस्पर स्त्री पुरुष का वियोग न हो।

राजा [स्वगत] यह क्या हो सकेगा? (प्रकट) उर्वशी के गर्भसे उत्पन्न पुत्र आप को प्रणाम करता है।

नारद--यह पुत्र दीर्घजीवी हो।

राजा आसन ग्रहण कीजिये।

[सबका बैठना]

राजा—(आश्चर्य से) भगवन्! आपके आनेका कारण क्या है?

नारद—महाराज! देवराज के वचन सुनिये।

राजा—एकाग्रमन हूँ।

नारद—देवराज ने अपने प्रभाव के बलसे जान लिया है। इसीलिये उन्होंने आपको आज्ञा दी है।

राजा—क्या आज्ञा दी है?

नारद—भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों काल की बातको देखने वाले मुनियों ने कहा है कि भविष्यत् में देव-दानवों के बीच अवश्य युद्ध संघटित होगा। आप उनके युद्ध के सहायक हैं-सुतरां अस्त्र छोड़ देना आपके पक्षमें बहुत ही अनुचित है। जब तक आपकी परमायु विद्यमान रहेगी, तबतक यह उर्वशी आपका सह धर्मचारिणी रूपमें अवस्थान करेगी।

उर्वशी—क्या ही आश्चर्य है, मानों हृदय में गड़ा हुआ काँटा निकल गया।

राजा—उन परमेश्वर-सुरेश्वर ने मुझ पर अत्यन्त ही अनुग्रह दिखाया है।

नारद—यह युक्ति संगत ही हुआ है। आपका काम उन्होंने किया, उनका अभिलाषित कार्य आप सम्पन्न कीजिये। सूर्य और अग्निदेव अपने-अपने तेज द्वारा आपस में एक दूसरे को सम्बर्द्धित करते रहते हैं। (आकाश की ओर देखकर) रंभे! कुमार के लिये मंत्र-संभूत अभिषेक की सामग्री लाओ।

(रंभा का प्रवेश)

रंभा—यह अभिषेक की सामग्री है।

[सामग्री आदि प्रदान]

नारद—इस दीर्घजीवी कुमार को भद्रपीठ में बैठालो।

रंभा—कुमार को भद्रपीठ में बैठाल दिया।

नारद—(कुमार के मस्तक पर कलश के जलसे मार्जन करके) रंभे! इसका शेष विधान सम्पन्न करो।

(कुमार का सबको प्रणाम करना)

नारद—तुम्हारा मंगल हो।

राजा—वंश को बढ़ाने वाले होओ।

उर्वशी—तुम्हारे पिताका वाक्य सफल हो।

(नैपथ्य में दो वैतालिकों का प्रवेश)

पहला वै०—युवराज की जय हो। सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी के पुत्र जिस प्रकार अत्रि मुनि हैं, अत्रि के पुत्र जैसे चन्द्रमा, चन्द्रमा के पुत्र जैसे बुध, और बुध के पुत्र जिस प्रकार आपके पिता हैं, उसी प्रकार आप भी लोक-रंजन गुणावली द्वारा पिता के अनुरूप पुत्र हुए हैं। यह आपके सर्व श्रेष्ठ वंश का आशीर्वाद समाप्त हुआ।

दूसरा वै०—पहले यह राजलक्ष्मी तुम्हारे पिताके प्रति अनुरागिणी होकर अवस्थित थी, अब आपके युवराज पदमें प्रतिष्ठित होने से आपमें विभक्त होकर हिमालय और समुद्र इन दोनों में प्राप्त सलिला गंगाजी की समान अधिकतर शोभा को प्राप्त हुई है। आप मर्यादा शाली हैं, कल्पना शक्तिके द्वारा भी आपकी असीम वीर्यवत्ता का परिमाण नहीं किया जा सकता।

रंभा—सौभाग्य से ही प्रियसखी उर्वशी ने पुत्र की राजलक्ष्मी देख कर फिर पति विरह-जनित दुःख को अनुभव नहीं किया।

उर्वशी—हम दोनों का भाग्योदय समान ही हुआ है (कुमार का हाथ पकड़ कर) वत्स! बड़ी माता को प्रणाम करो।

राजा—ठहरो! एक संग दोनों जनेही उनके निकट जायँगे।

नारद—आपके पुत्र आयु की युवराज श्री देखकर देवराज ने जो षड़ानन (स्वामि कार्त्तिक) को सेनापति-पद में नियुक्त किया है। यही हमको याद पड़ता है।

राजा—मैं सुरपति के द्वारा अनुग्रहीत हुआ।

नारद—महाराज ! सुरपति आपका और क्या प्रिय कार्य करें ?

राजा—इसकी अपेक्षा यदि और भी कोई प्रिय कार्य हो, तो वह भगवान् देवराज मुझको प्रसाद स्वरूप दान करें ।

(भरत वाक्य)

साधु जनों के कल्याणार्थ में दुष्प्राप्य और परस्पर विरोधिनी लक्ष्मी तथा सरस्वती का एकत्र मिलन होवे । सब कोई संकट से छुटकारा पावें । सब ही कल्याण को देखें और सब ही सब स्थानों में आनन्द को प्राप्त होवें ।

[सब का प्रस्थान]

इति श्री महाकवि कालिदास कृत विक्रमोर्वशी नाम नाटक समाप्त ॥

[विक्रमोर्वशी समाप्त]

॥ ॐ हरिः ॥

महाकवि कालिदास कृत।
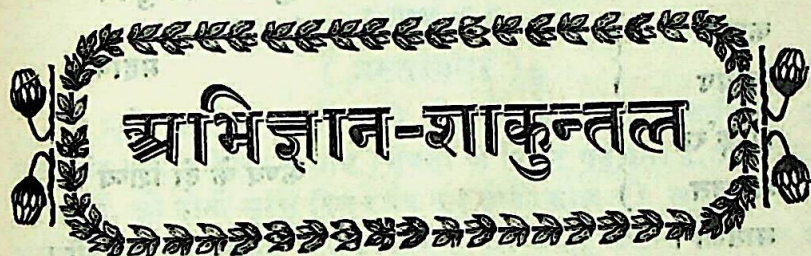
(नाटक-भाषानुवाद)

प्रकाशक—

पं० हरिशंकर शिवशंकर शर्मा,

अध्यक्ष—हिमालय डिपो,

तथा—हिमालय-'प्रेस'

मुरादाबाद यू० पी०

नाटक में लिखे पात्र-पात्रीगण।

पात्र।

दुष्यन्त।	हस्तिनापुर का राजा।
सर्वदमन।	दुष्यन्त का पुत्र।
कण्व, कश्यप	महर्षि।
शार्ङ्गरव, शारद्वत	कण्व के दो शिष्य।
मातली।	इन्द्र का सारथी।
माधव्य (विदूषक)	दुष्यन्त का सखा।

वैखानस-ऋषिकुमार-मन्त्री, पुरोहित
सभासद, धींवर, रक्षक आदि।

पात्री।

शकुन्तला।	
मिश्रकेशी	अप्सरा।
गौतमी	कण्व की बहन।
अनसूया, प्रियम्वदा	शकुन्तला की दो सखी।

तपस्विनी, धींवरपत्नी आदि।

श्री गणेशाय नमः

अभिज्ञान शाकुन्तल

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री।
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुति विषय गुणा यास्थिता व्याप्य विश्वम् ॥
यामाहुः सर्ववीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः।
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतुवस्ताभिरष्टाभिरीशः ॥ १ ॥

(प्रस्तावना)*

जो सृष्टि कर्त्ता की आदि सृष्टि है, जिनके द्वारा यथाविधि हुत् घृत और हव्य उद्दिष्ट (अभीष्ट) देवता के निकट पहुंचता है, जो यजमान स्वरूप हैं, जो दोनों मूर्त्ति दिन-रात्रि रूप दोनों काल की सृष्टि करती हैं, श्रवणेन्द्रिय ग्राह्य शब्द जिनका गुण है, जो जगत् संसार को व्याप्त कर के अवस्थित हैं, पण्डित जन जिनको शस्य (अन्न) आदि का उत्पन्न करने वाला कहते हैं, जिनके द्वारा जीव कुल प्राण युक्त होकर अवस्थान करते हैं, वह प्रत्यक्ष रूप से अनुभूत उन क्षितिमयी-जलमयी-अग्निमयी-यजमान रूपिणी-चन्द्र सूर्यमयी-शून्यमयी और वायुमयी आठमूर्त्तियों के द्वारा सर्वेश्वर तुमको प्रसाद वितरण पूर्वक तुम्हारी रक्षा करें।

नान्दी के पीछे सूत्रधार † अब विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है। (नैपथ्य की ओर देखकर) ‡ आर्ये! यदि नैपथ्य की रचना समाप्त होगई हो, तो यहाँ आओ।

---

* सूत्रधार रंगभूमि में प्रवेश पूर्वक नान्दीका समाधान करने में तत्पर प्रविष्ट नटी विशेष के सहित कथा प्रसंग में नाटक रचने वाले कवि का और खेले जाने वाले नाटक का उल्लेख करता अर्थात् परिचय देता है। बातचीत के बहाने नाटक का इतिवृत्त (मर्म) बताकर अपने सहचर समेत रंगभूमि से निकलता है। फिर अभिनय (खेल) आरंभ होता है। बस-इसी अंश का नाम प्रस्तावना है।

†सूत्रधार रंगभूमि में आनकर अभीष्ट अभिनय कार्य की निर्विघ्न-समाप्ति के लिये जो मंगलाचरण करता है, उसको नान्दी कहते हैं। जो प्रधान नट नाटक का सूत्रपात करता है, उसको सूत्रधार कहा जाता है।

‡ नैपथ्य—रंगभूमि के कुछ ही दूर जहाँ पात्र शृंगारादि करके अपना अपना रूप भरते हैं, उसको नैपथ्य कहा जाता है। नाटक के जिस स्थान में 'नैपथ्य' शब्द लिखा हो, वहाँ समझना चाहिये कि कोई नाटकीय वेश में रंग भूमि में प्रवेश करने के पहले नैपथ्य से कहता है।

(नटी का प्रवेश)*

नटी—मैं आगई। आज्ञा कीजिये, किस विषय का अनुष्ठान करूँ?

सूत्र—आर्ये! रसभाव विशेष के दीक्षा गुरु विक्रमादित्य राजा की यह पण्डितों से भरी हुई सभा है। यहाँ कालिदास के बनाये इति वृत्त मूलक 'अभिज्ञान शाकुन्तल' नामक नाटक का ही अभिनय (तमाशा) करना हमारा कर्त्तव्य है। अतएव प्रत्येक अभिनेता (पात्र) को ही इस में विशेष यत्न करना चाहिये।

नटी—आप अभिनय के प्रयोग को भली भाँति से जानते हैं-इस लिये किसी दोष के होने की संभावना ही नहीं है।

सूत्र—(हँसकर) आर्यें! मैं तुम से सत्य बात कहता हूँ। जब तक पण्डितों को संतोष उत्पन्न न हो, तब तक अपने अभिनय की उत्तमता नहीं मानी जासकती। क्योंकि अच्छी शिक्षा पाये हुए व्यक्ति भी अपनपे में विश्वास स्थापन नहीं कर सकते।

नटी—(विनय से) ऐसा ही है। अब करने योग्य कार्य के विषय में आर्य आज्ञा देवें?

सूत्रधार—आर्ये! संगीत के अतिरिक्त इस सभा में कानों को सुख-दायक और क्या करने योग्य है?

नटी—तो किस ऋतु को अवलम्बन करके संगीत किया जाय?

सूत्र०—आर्ये! तो प्रायः इस उपस्थित उपभोग के योग्य ग्रीष्मऋतु को अवलम्बन करके संगीत आरम्भ करो। इस समय सुखदायक जल का स्नान दिनान्त में पाटलि के फूलों का वन, छाया प्रधान स्थान में सुलभ निद्रा यह सब ही बातें रमणीय हैं।

नटी—यही हो, यह कहकर संगीत में प्रवृत्त हुई।

दोहा-केशर और किंजल्किका, जिसकी अति सुकुमार।
भ्रमर बैठ जिसको सदा, चूमत कर कर प्यार॥
है शिरीष को कुसुम यह, जेहि तोरत सब नार।
करनफूल कर ताहि के, लैंहि कान में धार॥

सूत्र०—आर्ये! अच्छा गाया, अहो! यह रंग भूमि तुम्हारे संगीत की मधुरता से आकृष्ट होकर चित्र लिखित की समान चारों ओर विराज-

* नटी—रंगभूमि में नृत्य गान और अभिनय करना स्त्रियों का व्यवसाय है, किन्तु प्रस्तावना की नटी सूत्रधार की सहकारी नटी विशेष

मान है। अतएव अब किस प्रबन्ध को अवलम्बन करके इन (सभासदों) का चित्त प्रसन्न करूँ ?

नटी—आप तो पहिले ही कह चुके हैं कि "अभिज्ञान शाकुन्तल" नामक अपूर्व नाटक का अभिनय करना चाहिये ?

सूत्र०—आर्ये ! तुमने ठीक याद दिलाई । मैं अब तक उसको भूला हुआ था । (और फिर भला) भूलता भी क्यों नहीं–महावेगगामी हरिण के द्वारा आकृष्ट चित्त होकर जिस प्रकार दुष्यन्त राजा मुग्ध हुए थे, मैं भी तुम्हारे गीत की मधुरता से उसी प्रकार मोहित होगया था।

[इति प्रस्तावना]

प्रथम अंक।

(रथ पर चढ़े धनुष धारण किये राजा दुष्यन्त और सारथी का प्रवेश)

सूत—(राजा को और मृग को देखकर) आयुष्मन् ! आपको बाण सहित धनुष धारण पूर्वक कृष्णसार (मृग) के प्रति दृष्टि गढ़ाये देख कर (आप) साक्षात् मृगानुसारी महादेव जी की समान दिखाई देते हैं।

राजा—सारथे ! यह कृष्णसार मुझको बहुत दूर खेंच कर ले आया है। देखो, अब भी सुन्दर गर्दन हिलाकर बारम्बार रथ की ओर देखता है। बाण लगने के डर से देह का पिछला भाग सन्मुख भाग में अधिक तर प्रवेश करा दिया है । और थकावट वश फैले हुए मुख के भीतर से आधी खाई हुई नवीन घास से गमन–मार्ग आकीर्ण करके आगे को कुलाँचें मारता हुआ चलता है—अतएव शून्य मार्ग का बहुत रास्ता बीत गया, किन्तु भूतल में बहुत ही कम मार्ग तय हुआ है। [आश्चर्य से] मेरे अनुगामी होने पर भी यह हरिण मेरे प्रयास द्वारा दर्शनीय क्यों हुआ ?

सूत—आयुष्मन् ! यह वनस्थली ऊँची–नीची होने के कारण मैंने (घोड़ों की) लगाम खैंचली है—इसी से रथ का वेग मन्द (कम) हो गया है । इसीलिये मृग दूर निकल गया है । इस समय रथ समान (एकसी) पृथ्वी पर आगया है, अतएव अब वह मृग आपको दुर्लभ न होगा अर्थात् सरलता से ही आप के हाथ आ जायगा।

राजा—तो अब लगाम छोड़ दो।

सूत—आयुष्मन्! जो आज्ञा।

(रथ का वेग देखकर)

चिरंजीव! देखिये, देखिये, लगाम ढोली होने से आपके यह चारों घोड़े शरीर का पूर्वांश अधिक आयत् (चौड़ा) चामराग्र निश्चल और कान ऊपर को उठाकर निज निज खुरों से उठाई हुई धूरि की ओट में अस्पृश्य होकर प्राण-भय से भागते हुए मृग का महावेग सहने में असमर्थ होकर ही मानों ईर्षा वश दौड़ रहे हैं।

राजा-(प्रसन्न होकर) सत्य ही इन घोड़ों ने वेग में सूर्य और इन्द्र के घोड़ों को भी परास्त कर दिया है। क्योंकि रथ के वेग से जो पदार्थ दूर होने के कारण छोटे जान पड़ते थे, मुहूर्त्त मात्र में वही अब स्थूल दिखाई दे रहे हैं और जो मध्य स्थल में यथार्थ ही विच्छिन्न हैं अर्थात् अलग अलग हैं, वह मिले हुए की समान प्रतीत होते हैं। जो असल में टेढ़े हैं, वह सीधी लकीर को समान जान पड़ते हैं और कोई कोई पदार्थ कुछ देर मेरी आँखों से दूर और कभी धोरे दिखाई देता है। सूत! देखो, अब मृग बाण-वध्य होता है।

(बाण छोड़ने का उद्योग)

(नैपथ्य में)हे राजन्! यह आश्रम का मृग है-इसको मतमारो, मतमारो।

सूत-(सुनकर और देखकर) आयुष्मन्! आपके बाण-पथवर्त्ती कृष्णसार के बीच में निश्चय ही तापसगण उपस्थित हुए हैं।

राजा-(संभ्रम से) तो लगाम रोककर घोड़ों को खड़ा करो।

सूत-जो आज्ञा।

(यह कह कर रथ को खड़ा किया)

(शिष्य सहित वैखानस का प्रवेश)

वैखा०-(हाथ उठाकर) राजन्! यह आश्रम का मृग है, इसको मत मारो, मत मारो। तुला राशि में अग्नि पतन के समान इस मृग के कोमल शरीर पर बाण मत चलाओ, विचार कर देखो, हिरनों का सहज ही नाश होने वाला जीवन कहाँ? और उधर आपके पैनी नोंक वाले बज्र की समान बाण कहाँ? अर्थात् इन दोनों में बहुत ही अन्तर है। अतएव आपने सम्यक् प्रकार से जो शर-संधान किया है, उसका प्रति संहार कीजिये। आपके बाण दुःखीजनों की रक्षा के लिये हैं-न कि निरपराध पर चलाने के लिये!

राजा—यह लो प्रति संहार करता हूं।

(यह कह कर धनुष से बाण उतार लिया)

वैखा—पुरु वंशके दीपक! आपके पक्ष में यह काम उचित ही हुआ है। जब पुरु वंशमें आप उत्पन्न हुए हैं, तब यह आपके योग्य ही है। आप इसी प्रकार सर्व गुण सम्पन्न चक्रवर्त्ती पुत्र प्राप्त करें।

दोनों शिष्य—(बाहु उठाकर) सर्वथा चक्रवर्त्ती पुत्र प्राप्त करें।

राजा—(प्रणाम करके) आपके आशीर्वाद को शिरोधार्य किया।

वैखा—राजन्! हम समिध लेने के लिये जाते हैं। मालिनी नदी के तट पर कुलपति कण्व का आश्रम दिखाई देता है, यदि दूसरे कार्यों में हानि न हो—तो उस आश्रम में जाकर अतिथि-सत्कार ग्रहण कीजिये। तपस्वियों के निर्विघ्न मनोहर सब धर्म--कर्म देखकर आपके धनुर्गुण के आकर्षण जनित चिह्न युक्त हाथ किस प्रकार से रक्षा कार्य सम्पन्न करते हैं, यह आप समझ सकेंगे।

राजा—कुलपति क्या आश्रम में हैं?

वैखा—इस समय वे कन्या शकुन्तला के हाथ में अतिथि-सत्कार का भार देकर उसके प्रति कूल देव की शान्ति के लिये सोमतीर्थ को गये हैं।

राजा—यही हो! शकुन्तला को ही देखूंगा। वह मेरी भक्ति को जान कर महर्षि से कहेगी।

वैखा—तो हम जाते हैं।

(शिष्य सहित वखानस का प्रस्थान)

राजा—सारथे! घोड़े हाँको। पवित्र आश्रम का दर्शन करके अपने आत्मा को पवित्र करूं?

सूत—आयुष्मन्! जो आज्ञा करें।

(पुनर्वार वेग से रथ चलाना)

राजा—(चारों ओर देखकर) सारथे! किसी के न बताने पर भी यह स्थान तपोवन प्रतीत होता है।

सूत—कैसे?

राजा—तुम क्या देखते नहीं हो? देखो! कोटर—स्थित तोतों के मुखसे गिरी हुई नीवार वृक्षों की जड़में पड़ी है, और तपस्वियों ने जिन पत्थरोंके टुकड़ोंसे इङ्गुदी, फलोंको तोड़ा है, पत्थरों पर उन सब फलोंका निर्यास (तेल) लगा होने से वह तपोवन की सूचना करता है। और भी देखो, रथका शब्द सुनकर मृगगण विश्वस्त चित्त से उसको सह रहे हैं अर्थात्

भागते नहीं। जलाशय के मार्ग में बल्कलाग्र देश से जलकी धारा गिरती है-इससे भी तपोवन की सूचना होती है। और भी देखो, जो छोटी छोटी कृत्रिम (चौमासे में पैदा हो जाने वाली) नदी विद्यमान हैं, वायु वेग से उनका जल कंपित होने के कारण किनारे के सब वृक्षों की जड़ धुल गई हैं। आहुति प्राप्त घृत से धुँआँ उठने के कारण सब नये पल्लवों की लाली कुछेक मलीन हो गई है और जिस उद्यान भूमि से तापसों ने कुशाओं को काट लिया है, मृगके छौना वहाँ निर्भय मन से हमारे निकट ही फिर रहे हैं।

सूत—सब ही बातें ठीक हैं।

राजा—(कुछ दूर जा कर) तपोवन में क्लेश उत्पन्न करना ठीक नहीं है। अतएव तुम रथ को इसी स्थान में रक्खो, मैं रथ से उतरता हूं।

सूत—लगाम रोकली! आयुष्मान् उतरें।

राजा—(उतर कर) सूत ! तपोवन में विनीत वेश से ही जाना उचित है; तुम इन सब को रक्खे रहो, यह कहकर सारथी के हाथ में गहने और धनुष दे दिया) सारथी ! जब तक मैं आश्रम-वासियों के दर्शन करके नहीं लौटूं-तब तक घोड़ों की पीठ जल से धोकर उनको सुस्थ (ताज़ा) करलो।

सूत—जो आज्ञा।

राजा—(चारों ओर घूम कर और देख कर) यही तो आश्रम में घुसने का दरवाज़ा है! तो अब प्रवेश करूँ।

(प्रवेश पूर्वक दाहिनी भुजा का फड़कना रूप लक्षण प्रकट करके)

यह आश्रम पद शान्ति रसका आस्पद है, किन्तु मेरी दाहिनी भुजा फड़कती है-इसका फल (इस समय) कहाँ है ? अथवा भवितव्य का दरवाज़ा सर्वत्र ही वर्तमान है।

(नैपथ्य में) दोनों प्यारी सखियों! इस ओर! इस ओर !

राजा—(उसी ओर को कान लगा कर) अरे ! वृक्ष वाटिका * की दक्षिण दिशा से (स्त्रियों की) बात चीत का शब्द सुनाई आता है। उधर को ही जाऊं।

(परिक्रमण पूर्वक दर्शन करके) अरे ! यह सब तापस-बाला अपनी अपनी शक्ति के परिमाणानुरूपी सींचने का कलश बगल में लिये छोटे

* लगाये हुए वृक्ष जिस मार्ग में होते हैं उस का नाम वृक्ष वाटिका है।

छोटे वृक्षों की जड़ों में जल देने के लिये इसी ओर को आरही हैं।(भली भाँति देखकर)इनका दर्शन नेत्रोंके लिये प्रसन्नता कारक है। यदि आश्रम वासी जनकी रूप राशि अन्तःपुर चारणियों को भी दुर्लभ है, अर्थात् यह आश्रम वासिनी है, यह जैसी है-ऐसी रूपवती रमणी मेरे रनवास में भी नहीं है, देखता हूं कि वन लतिका ने आज अपने सौन्दर्य-गुण से उद्यान-लता को परास्त कर दिया। जो हो-अब छाया का आश्रय करके तापस-बालाओं की प्रतीक्षा करूँ।

(यह कहकर उनको देखता हुआ खड़ा होगया)

(पूर्वोक्त प्रकार से जल सेचन करने में नियुक्त दो सखियों समेत शकुन्तला का प्रवेश)

शकुन्तला—सखी! इस ओर! इस ओर!

अनसूया—हे शकुन्तले! मुझको जान पड़ता है कि पिता कण्व तुम से भी अधिक इन आश्रम के वृक्षों को प्यार करते हैं। क्योंकि तुम्हारे अंगनव मालिका के फूल से भी अधिक कोमल हैं, किन्तु तो भी उन्होंने तुमको इन सब वृक्षों की जड़ों में पानी देने को नियुक्त किया है।

शकुन्तला—सखि अनसूये! केवल मात्र पिता कण्व की आज्ञा से ही नहीं वरन इन पर मेरा स्वयं भी सहोदर कैसा स्नेह वर्त्तमान है।

(यह कहकर जल सेचन में प्रवृत्त हुई)

राजा—यह क्या वही कण्व की कन्या है? पूज्यपाद कण्व निश्चय ही अविमृश्य कारी (अविचारी) हैं, क्योंकि इसको आश्रम के के काम में लगा दिया है। अहो! शकुन्तला का यह शरीर वास्तविक सुन्दरता का आधार और कोमल है, जिसने इसको तपः समर्थ कार्य के सम्पादन करने में नियुक्त किया है, उसने नील कमल के पत्ते से शमी वृक्ष के काटने की इच्छा की है, इसमें सन्देह नहीं। जो हो, मैं पादप की ओटमें खड़ा होकर स्वच्छ भाव से अवस्थित इनका दर्शन करूँ।

(वैसा ही करना)

शकु०-सखि अनसूये! प्रियम्बदा ने मेरे पहरने का बल्कल बहुत ही कसकर बाँध दिया है, तुम जरा उसको ढीला कर दो।

अन०-जो आज्ञा, (ढीला कर दिया)

प्रियम्ब०-(हँसकर) हे शकुन्तले! इस विषय में तुम दोनों कुच विस्तार का कारण स्वरूप अपने यौवनारंभ के प्रति तिरस्कार करो।

राजा—प्रियम्बदा ने बात तो युक्ति संगति ही कही है। शकुन्तला के कंधे पर महीन गाँठ द्वारा वल्कल बाँध देने से उसने पीनोन्नत दोनों कुचाओं को ढकलिया है। इसीलिये शकुन्तला का नवीन अंग परिपक्व है, सुतरां पाण्डुवर्ण पत्र के मध्यगत पुष्प के समान अपनी कान्ति की पुष्टता साधन करने में समर्थ नहीं होता [फिर तर्क करके] अथवा वल्कल शकुन्तला के देह में अयोग्य होने पर भी उसके द्वारा उसके गहनों की शोभा यथेष्ट भाव से पुष्टि सम्पादन नहीं करती, ऐसा भी नहीं है। जिस प्रकार शैवाल युक्त कमल भी सुदृश्य होना अर्थात् देखने में सुन्दर लगता है, चन्द्रमा का चिन्ह मलीन होने पर भी शोभा सम्पादन करता है, हेमकान्तमणि राख में ढकी होनेपर भी उसकी ज्योतिः प्रकट होती है, उसी प्रकार यह दुबले अंगों वाली शकुन्तला तुच्छ वल्कल धारण करके भी अत्यन्त ही चित्त रंजिनी हुई है। विशेषतः जिसकी आकृति मनोहर है, कौन वस्तु उसके लिये अलंकार स्वरूप नहीं होती ?

शकु०—[सामने की ओर देखकर] यह अचिर जात बकुल वृक्ष वायु द्वारा कम्पित पल्लव स्वरूप अँगुलि चलाकर मानों कुछ कहता है, मैं उसका आदर करूँ।

(यह कहकर उसके पास गई)

प्रिय०—हे शकुन्तले ! यहां कुछ देर ठहर।

शकु०—क्यों ?

प्रिय०—तुम्हारे निकट रहने पर यह बकुल वृक्ष मानों अति मुक्त लता के सहित समागत होगा।

शकु०—सखि ! इसी लिये तुमको सब कोई प्रियम्बदा कहते हैं।

राजा—प्रियम्बदा ने बात तो ठीक ही कही है ? क्योंकि शकुन्तला के होठ नयेपल्लव की समान लाल वर्ण, दोनों कोमल भुजा दो शाखाओं के तुल्य और पुष्प की समान वाञ्छनीय यौवन मानों देह में बँध रहा है।

अन०—सखि शकुन्तले ! आम के वृक्षको इस स्वयंवर वधू नवमालिका को वन तोषिणी नाम से सम्बोधन किया जाता है, यह बात क्या तुम भूल गई हो ?

शकुन्तला—तब तो मैं अपनपे को भी भूल जाऊंगी। (नव मालिका के निकट गमन और दर्शन करके) सखि ! अत्यन्त मनोहर समय में न दोनों लता-पादपों का मिलन हुआ है। यह वनको शोभायमान करते

वाली लतिका नये पुष्प रूप योवन से सुशोभित और नूतन पल्लव धारण करने से आम्र वृक्ष भी उपभोग के योग्य हुआ है।

(देखते देखते खड़ी होगई)

प्रिय०—(सहास्य) अनसूये! इस वनतोषिणी को शकुन्तला इतने आदर से क्यों देखती है ? तुम जानती हो ?

अन०—मैं नहीं समझ सकी। क्यों-कहो ?

प्रिय०—शकुन्तला समझती है--यह वनतोषिणी जिस प्रकार अनुरूप वृक्ष से मिली है; मैंभी उसी प्रकार अपने अनुरूप वर (पति)पाऊँगी।

शकु—यह निसन्देह तुम्हारे ही मनकी अभिलाषा या अभिप्राय है। (यह कह कर जल देने लगी)

राजा—जान पड़ता है--शकुन्तला कुलपति कण्व की असवर्णा नारी से उत्पन्न हुई कन्या होगी ? अथवा संदेह का क्या प्रयोजन है ? मेरे पवित्र चित्त ने जब इस शकुन्तला की अभिलाषा की है तब यह क्षत्रिय जाति से विवाह करने योग्य है, इसमें संदेह नहीं। क्योंकि साधु पुरुषों का जिस स्थान में संशय होता है, उस स्थान में उनके चित्त की वृत्ति ही स्थिर निश्चय का प्रमाण गिनी जाती है। तो ऐसा होने पर भी अब इसका परिचय भली भांति जानना चाहिये।

शकु—अहो! जल छिड़कने के कारण उद्विग्न (चंचल) होकर एक भौंरा उड़ता हुआ मेरे मुख पर गिरता है (भ्रमर कृत बाधा का अभिनय)

राजा—(स्पृहा युक्त नेत्रों से देखकर) अहो! इस शकुन्तला को भौंरे के उद्विग्न करने से जो इसकी विरक्ति बोध होती है, वह भी देखने में मनोहर है। भौंरा जिधर को उड़ कर जाता है, यह भी उधर को ही चंचल दृष्टि चलाती है। अतएव उसकी दोनों भौंए टेढ़ी होरही हैं। इस प्रकार अनिच्छा होते हुए भी यह मानों संभ्रम से दृष्टि विलास को सिखाती है (असूया से भौंरे को उद्देश करके) हे मधुकर ! तुम शकुन्तला के चपल अपाङ्ग मण्डित काँपते हुए दोनों नेत्रों को बारम्बार स्पर्श करते हो और कानों के समीप भ्रमण पूर्वक एकांत में रहस्यालाप करने वाले की समान मधुर--स्वर से शब्द करते हो। जब यह हाथ चलाती है, तब तुम इसके सर्वस्व धन अधर सुधा का पान करते हो। बस—इस फल भोगने के कारण तुम कृतकृत्य हो।

शकु—सखी! बचाओ। बचाओ। इस दुष्ट भौंरे ने मुझको उद्विग्न (दिक) कर डाला। हाय! जिधर को जाती हूं-यह दुष्ट उधर ही पहुंचता है।

दोनों सखी—तुम्हारी रक्षा करने में हमारी क्या सामर्थ्य है ? इसके लिये तो तुम दुष्यन्त को पुकारो। क्योंकि राजा ही आश्रम की रक्षा करने वाला है। वही तुम्हारी रक्षा करेगा।

राजा—प्रकट होने का यही उचित अवसर है। (प्रकाश्य) भय नहीं ! भय नहीं ! (आधी बात कह कर फिर आप ही आप) ऐसा करने से मेरा राजा होना प्रकट हो जायगा। जो हो-अतिथि का व्यवहार दिखाया जाय।

शकु—(एक पग चल कर दृष्टिपात पूर्वक) हाय ! यह दुष्ट भौंरा तो अब भी पीछा नहीं छोड़ता। मैं यहां से और कहीं जाऊँ ?

राजा—(शीघ्रता से आकर) दुष्टों का शासन (दण्ड) करने वाले पुरुवंशीय राजा के शासन् कालमें सरल-हृदय तापस बालाओं के प्रति असद् (बुरा) व्यवहार करे ऐसी किस की सामर्थ्य है ?

(राजा को देख कर सब का संभ्रम से अवस्थान)

अन—आर्य ! किसी प्रकार का अनभल नहीं हुआ है। हमारी यह प्यारी सखी भौंरे के द्वारा व्याकुल और कातर हुई है।

(यह कह कर शकुन्तला को दिखा दिया)

राजा—(शकुन्तला की ओर देख कर) अजी ! आपकी तपस्या तो (प्रति दिन) वृद्धि को प्राप्त होरहीं है।

(शकुन्तला का भय से चुप चाप रहना)

अन—इस समय अतिथि विशेषके प्राप्तहोने से तपस्याकी वृद्धि हुई। शकुन्तले ! तुम शीघ्र ही कुटी से जल और अर्घ्य का पात्र ले आओ। इस कलश का जल ही पादोदक (चरणामृत) होगा। अर्थात् जल लाने की आवश्यकता नहीं है, इस कलश में जो जल है-उस से ही चरण पखारने का काम चल जायगा।

राजा—आपकी मीठी बातचीत से ही मेरा आतिथ्य (अतिथि सत्कार) होगया।

प्रिय—तो आर्य इस शीतल छाया वाली सप्तपर्ण वेदिका में मुहूर्त काल तक बैठकर थकावट मिटाइये !

राजा—तुम सब भी इस जल देने के काम में लगी रहने से निःसंदेह थक गई हो।

अन०—हे शकुन्तले ! अतिथि के अभिप्रायानुसार ही हम को काम करना चाहिये, इसलिये आओ-हम भी बैठें।

(सब का बैठ जाना)

शकुन्तला—(स्वगत) * इस व्यक्ति (अतिथि) को देख कर मेरे हृदय में आश्रम विरुद्ध भाव क्यों उदय होता है !

राजा—(सब की ओर देखकर) अहो ! समान अवस्था और समान रूप द्वारा तुम्हारा आपस का प्रणय परम शोभायमान है।

प्रिय—(अकेले में) सखि ! मुझको भी कौतूहल उत्पन्न हुआ है। इन से विशेष न पूछ कर देखना चाहिये। (प्रकट) आपका मिष्ठ संभाषण जनित विश्वास मुझको वार्त्तालाप करने के लिये प्रवृत्त करता है। आपने किस राजर्षि के कुल को अलंकृत अथवा किस राज्य को अपने विरह से उत्कण्ठित किया है अथवा किस कारण ही सुकुमार देह होकर तपोवन में आगमन रूप परिश्रम स्वीकार करने में अपने आपको नियुक्त किया है ?

शकु—(आप ही आप) हृदय ! उत्कण्ठित मत होओ ! तुमने जो विचारा था, अनसूया वही पूछ रही है।

राजा—(स्वगत) अब क्या मिथ्या बात कहकर अपना परिचय दूं। अपने परिचय में गोलमाल कैसे करूँ ! जो हो इन से इसी प्रकार कहूं। (प्रकट) मैं पुरुवंशीय राजा दुष्यन्त के द्वारा राज्य का कार्य देखने को नियुक्त हुआ हूं। यज्ञादि की क्रिया निर्विघ्न सम्पन्न होती है वा नहीं, यही देखने के लिये इस धर्मारण्य (तपोवन) में आया हूं।

अन—अब धर्मचारी लोग सनाथ हुए।

(शकुन्तला का मनो विकृति जनित लज्जा प्रकाश)

दोनों सखी—(राजा और शकुन्तलाकी आकृति समझकर एकान्तमें) हे शकुन्तले ! यदि इस समय पिता कण्व इस स्थानमें आकर उपस्थित हों!

शकु—(क्रोध सहित) तो इस से क्या होगा !

दोनों सखी—तो जीवन का सर्वस्व देकर भी इस विशेष अतिथि को कृतार्थ करें।

शकु—तुम यहाँ से चली जाओ-क्या समझ कर तुमने यह बात कही ? मैं तुम्हारी बात नहीं सुनना चाहती।

राजा—मैं तुम्हारी इस सखीके विषयमें कोई बात पूछना चाहता हूं।

सखी—यह प्रार्थना हमारे ऊपर अनुग्रह मात्र है।

राजा—भगवान् कण्व सदा ही ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान में लगे रहते हैं- यह सब में प्रसिद्ध है। फिर तुम्हारी सखी का उनकी कन्या होना कैसे संभव है !

---

* मन मेंकिये हुए विचार का नाम स्वगत है।

अन—आर्य ! सुनिये, कुशिक राज के पुत्र विश्वामित्र नामक एक महाप्रभावशाली राजर्षि हैं ।

राजा—हाँ, सुना है ।

अन—उन्हीं को मेरी प्रियसखी के पिता समझिये, इसकी माता मेनका ने प्रसव के पीछे इसकी त्याग दिया-तब पिता कण्व ने इस को पाल कर बड़ा किया । अतएव अब वे ही इसके पिता हैं ।

राजा—इसको माताने त्याग दिया सुनकर मुझको कौतूहल उत्पन्न होरहा है, अतएव प्रारंभ से अंत तक सब वृत्तान्त सुनना चाहता हूं ।

अन—आर्य ! सुनिये । पूर्वके समय वे राजर्षि विश्वामित्र जो कठोर तपस्या में नियुक्त हुए । इनकी तपस्या के देखने पर, डर कर देवताओं ने उन की तपस्या में विघ्न करने के लिये मेनका नाम वाली अप्सरा को भेजा ।

राजा—देवताओं में दूसरे की तपस्या से भय होना सदा ही इसी प्रकार देखा जाता है ।

अन—फिर मनोहर वसन्त का समय उपस्थित होने पर उसका रूप देखकर ।

(इस प्रकार आधी बात कह कर अनसूया लजा गई)

राजा—इसके पीछे जो हुआ, वह मैंने सबही समझ लिया । यह सर्वथा अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न हुई हैं ।

अन०—जी हां ।

राजा—यह बहुत संभव है । अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न न होने पर ऐसी सुन्दरता का होना कैसे सम्भव है । मानुषी में यह सुन्दरता कभी संभव नहीं हैं । प्रभावती सौदामिनी कभी पृथ्वी तल से उत्पन्न नहीं हो सकती ।

(शकुन्तला का मुंह झुकाकर बैठना)

राजा—(स्वगत) मेरे मनोरथ सिद्ध होने का सुअवसर आगया । किन्तु सखी के वर प्रार्थना रूपी विद्रूप वचनों से मेरे चित्त में दुविधा उपस्थित होने से मैं क्लेश पा रहा हूँ ।

प्रिय—(हँसी से शकुन्तला की ओर नेत्र पात पूर्वक राजा की ओर मुख करके) आर्य ! अब आप और क्या पूछना चाहते हैं ।

(शकुन्तला को अँगुली से सखी को घुड़कना)

राजा—तुमने ठीक विचारा है । सच्चरित सुनने के लोभ से मुझको और भी कुछ पूछना है ।

प्रिय—विचार की क्या आवश्यकता है ? तपस्वियों से किसी बात के पूछने में कोई वाधा नहीं है।

राजा—मैं तुम्हारी इस सखी का विषय ही जानना चाहता हूं। जब तक तुम्हारी यह प्रियसखी सत्पात्र को अर्पित न हो अर्थात् इसका विवाह न हो जाय, तब तक क्या मदन कार्य विरोधी इस ब्रह्मचर्य रूप तापस व्रत को अवलम्बन करके रहेगी ? अथवा इस के दोनों नेत्र जिनके नेत्रों की समान है उन सब मृगाङ्गनाओं (हिरनिओं) के संग नैष्ठिक व्रत चारिणी होकर आजीवन इस तपोवन में वास करेगी ?

प्रिय—आर्य ! धर्मानुष्ठान में भी हमारी यह सखी पराधीन हैं। स्वाधीन भाव से यह अपने आप विवाह नहीं कर सकती। किंतु पिता कण्व ने संकेत किया है--कि अनुरूप पात्र में इसको प्रदान करेंगे अर्थात् इसके योग्य वर मिलने पर ही इसका विवाह करेंगे।

राजा—(मन ही मन) जान पड़ता है--मेरी प्रार्थना दुर्लभ न होगी। हे हृदय ! वासना का पूर्ण होना समझ कर धीर धारण किये रहो। अब संदेह दूर हो गया। तुमने जिसको अग्नि समझ कर (छूने में) आशंका की थी, अब वह स्पर्श--योग्य रत्न में परिणत होगया।

शकु—(गुस्से में भर कर) अनसूये ! मैं यहाँ से जाती हूं ?

अन—क्यों ?

शकु—यह प्रियम्वदा वहुत ही अश्लील वकवाद करती है। आर्य गोतमी के पास जाकर मैं सब कहूंगी।

अन—सखी ! इस अतिथि का विना सत्कार किये इसको छोड़ अपनी इच्छा से चला जाना तुम्हें उचित नहीं है।

(बिना उत्तर दिये ही शकुन्तला का गमनोद्योग)

राजा—(शकुन्तला को रोकने की इच्छा करके भी फिर रुक कर आपही आप) अहो ! कामनियों की मनोवृत्तिचेष्टा की अनुगामिनी है। अर्थात् वाहिरी चेष्टाओं से ही उनके मनकी बात प्रकट हो जाती है। क्योंकि मैं सहसा इस तापस वाला शकुन्तला का अनुगामी होकर फिर धैर्य से अनुसरण का वेग रोक अपने वैठने के स्थान से एक पग मात्र न जाकर भी मानों पुनर्वार लौटकर अपने स्थान में ही वैठ गया।

प्रिय—(शकुन्तला को रोक कर) तुम्हारा चला जाना ठीक नहीं है।

शकुन्त—(भौं चढ़ा कर) क्यों ?

प्रिय—तुमने मेरे जल के दो कलश उधार लिये हैं, उस ऋण को

बिना चुकाये नहीं जा सकती (बल से शकुन्तला को रोकती है)

राजा—कल्याणी! वृक्ष सींचते सींचते तुम्हारी सखी थकीसी दीखती है। यह देखो-बारंबार जल से भरे कलश ढोने के कारण इसकी दोनों भुजा शीतल और दोनों कंधे झुक गये हैं-लाल लाल रंग वाली हथेलियों ने और भी लोहितवर्ण धारण किया है। निश्वाँस प्रश्वास स्वाभाविक परिमाण की अपेक्षा अधिक होने से दोनों कुच काँप रहे हैं। मुख पर पसीने की बूंदें उत्पन्न होने से मानों कर्ण पुटस्थ शिरीष पुष्प का अबरोध करने वाले अस्फुट कोरक की नाईं दिखाई देता है और बालों के ढीला होजाने पर एक हाथ से उनको सँभालती है। अतएव मैं इसको ऋण से छुड़ाये देता हूँ।

(यह कह कर अंगूठी देता है)

(दुष्यन्त का नाम अंगूठी पर बाँच कर दोनों
एक दूसरे के मुख को निहारती हैं)

राजा—इस में तुम दुविधा (संकोच) मत करो। कारण मैं भी तो राज पुरुष हूँ। मुझे यह राजा ने दी है।

प्रिय—तो यह आपकी अँगुली से अलग होने योग्य नहीं है। आपकी मीठी बातों से ही ऋण चुक गया। (कुछेक हँस कर) सखि शकुन्तला! इन महानुभाव वा राजा ने दया करके तुझे ऋण से छुड़ा दिया अब चाहे तू चली जा।

शकु०—(आप ही आप) यदि मुझ में शक्ति रही अर्थात् अपने को वश में रख सकी, (तो चली जाऊँगी) (प्रकट) जाने की आज्ञा देने वाली वा रोकने वाली तुम कौन हो?

राजा—(शकुंतला को देख कर आप ही आप) इस पर मेरा जैसा प्रेम है, मेरे ऊपर भी क्या इस का वैसा ही प्रेम होगा? अथवा मेरी प्रार्थना का अब उत्तम अवसर है, क्योंकि यह शकुंतला यद्यपि मेरी बात में बात नहीं मिलाती अर्थात् उत्तर नहीं देती, किंतु मैं जब ही कोई बात कहता हूँ-तो उस को मन लगा कर सुनती है। मेरे मुख के सामने खड़ी नहीं होती, पर इसकी दृष्टि दूसरी ओर भी बहुत देर तक संलग्न नहीं रहती।

(नेपथ्य में)—हे तपस्वियों! आश्रमके निकट रहने वाले जीवों की रक्षा में सब यत्न करो। शिकार खेलता हुआ राजा दुष्यन्त आ पहुँचा है। यह देखो--वृक्ष की शाखा पर पड़े हुए गीले वल्कलों के ऊपर जिस प्रकार शलभ (टीडी) गिरते हैं, उसी प्रकार सन्ध्या कालीन अरुण की

नाई प्रभा सम्पन्न घोड़ों के खुरों से छुरी गिरती है। यह देखो सामने के वृक्ष के गुद्दे का दारुण आघात लगने से हाथी का एक दांत टूट गया है और अत्यंत वेग से आघर्षण के कारण लता समूह का सम्पर्क वश पाश-बंधन संघटित हुआ है। यह देख कर मृगगणडर व घबड़ाहट से भाग रहे हैं। सारांश--यह हाथी प्रत्यक्ष विघ्न स्वरूप से इस तपो वन में घुसा है।

(सब ने ही इधर को कान लगा कर सुना और कुछेक डरीं)

राजा—(आप ही आप) अहो ! धिक् धिक् ! मेरे अनुचरों ने मुझे ढूंढते ढूंढते यहां आकर तपा वन में विघ्न डाला और आश्रम को पीड़ित किया। जो हो अब लौट कर इन के पास जाना पड़ा।

अन—अब बनैले हाथी का आश्रम में घुस आना सुन कर हम सब बहुत ही घबरा गई हैं--हम को कुटी में जाने की आज्ञा दीजिये।

राजा—(संभ्रम से) अच्छा--तुम जाओ। मैं वही यत्न करूंगा-जिस से आश्रम में किसी प्रकार की पीड़ा या विघ्न नहीं होने पावेगा।

(सब का उठना)

दोनों सखी—आर्य ! जैसा अतिथि सत्कार होना चाहिये, वैसा हम से नहीं बन सका। इस लिये फिर दर्शन देने को कहते हुए लजाती हैं।

राजा—ऐसा मत कहो। तुम्हारे दर्शन सेही हमारा सत्कार होगया।

शकु०। अनसूया ! नूतन कुश के काँटे से मेरे चरण तल (तलुए) में घाव हो गया है, इधर कुरबक के पेड़ की शाखा में मेरा पहरा हुआ बल्कल उलझ गया है, मैं जब तक वल्कल छुड़ाऊँ तब तक तुम दोनों कुछ देर ठहरो, [यह कह शकुंतला राजा को देखती और बहाने से ठिठकती हुई सखियों के साथ गई)

राजा—मेरे नगर में जाने का उत्साह मन्द हो गया। इस तपोवन की थोड़ी दूर पर ही संग वालों को टिकाऊँ। मैं शकुंतला रूप विषय से अर्थात् उसके हाव भावों से किसी प्रकार भी मन को नहीं हटा सकता। मेरा देह आगे आगे चलता है,किंतु मन पीछे पड़ रहा है। प्रतिकूल वायु द्वारा चीन देशोत्पन्न (महीन) वस्त्र जिस प्रकार लाये जाते हैं, मेरा मतभी उसी प्रकार शकुन्तला दर्शन के द्वारा इसआश्रम में आया है।

(सब का प्रस्थान)

(पहला अंक समाप्त हुआ)

दूसरा अंक।

(दुःखी हुआ विदूषक आया)

विदूषक—(श्वाँस लेकर) हाय ! सब ही देख रहे हैं कि इस मृगया विहारी राजा का संगी होकर मैंने कितना अधिक क्लेश भोगा ? एक तो गरमी का मौसम–फिर गरमीके कारण वनस्थलीमें छाया का मिलना भी दुर्लभ है। (क्योंकि वृक्षों के पत्ते सब सूख गये हैं) इस समय ठीक दुपहरी में 'यह मृग है, यह बराह है, यह व्याघ्र है,' इसी ढूंढ-भाल में केवल एक वन से दूसरे बन में दौड़ना पड़ता है। किनारे पर लगे पेड़ों के पत्ते पानी में गिरने पर उनके स्पर्श से पानी कसैला होगया है। वही पानी पीने को मिलता है। कुसमय में खाने को मिलता है, वह भी फिर अधिकांश शूल पर भुना हुआ मांस * शिकार के समय घोड़े पर चढ़कर राज़ा के साथ दौड़ते-दौड़ते अङ्गों के जोड-जोड़ ऐसे ढीले पड़ जाते हैं कि रात को इच्छानुसार नींद भी नहीं आती और फिर बड़े भोर ही दासी-पुत्र व्याध बन में पक्षी पकड़ने के लिये जाते हैं—उनके कोलाहल से बहुत ही सवेरे जागना पड़ता है। इतने पर भी पीड़ा समाप्त नहीं हुई गाल के ऊपर एक और फोड़ा पैदा हुआ। गत कल जब मैं बिछड़ कर पीछे रह गया, तो राजा ने मृग के पीछे दौड़ते-दौड़ते इस आश्रम में प्रवेश करके मेरे मन्दभाग्य (कमनसीबी) से शकुन्तला नाम वाली एक तापस-कन्या को देखा है। अब नगर में जाने को मन भी नहीं करता। अब भी इन्हीं बातों के सोच-विचार में सारी रात जागकर रात्रि-प्रभात करदी। अब उपाय क्या है ? प्रातःकालीन उसके संध्यावन्दनादि कार्य समाप्त हो चुके हैं, तो एक बार उससे मिलूँ (कुछेक घूम कर और देख कर) अहा ! यह वन के फूलों की माला पहिरे हुए धनुष-धारिणी यवनियोंके साथमें मेरा सखा इधर को ही आता है, तो अब मैं भी अंग-भंग करके विकल की समान खड़ा होजाऊं। यदि यह भाव दिखा सका, तो कुछ विश्राम लेने का अवसर मिल जायगा।

(काठ की लकड़ी टेककर खड़ा होगया)

---

* लोहे की सींकों पर मांस थोप कर जो आग से पकाया (भुना) जाता है—उस को शूलमांस कहते हैं। उर्दू भाषा में इसका नाम (कबाब) है।

(ऊपर कहे हुए वेश से दुष्यन्त का प्रवेश)

राजा—[आप ही आप] प्यारी शकुन्तला का मिलना तो सुलभ नहीं है, किन्तु मेरा मन उसकी अनुराग व्यञ्जक चेष्टा देखने के लिये यत्नवान् (उत्सुक) है। यद्यपि कामदेव चरितार्थ नहीं होता, तो भी दोनों का मनोरथ मानों प्रीति उत्पन्न करता है [मनोरथ पूरा न होने पर भी परस्पर की अनुराग-सूचक चेष्टा देखकर दोनों ही अत्यन्त प्रीति अनुभव करते हैं] (कुछेक हंसकर) जब किसी की किसी से लगती है, तब वह कामी पुरुष अपने मन की अभिलाषा से उसके मन का प्रेम अनुमान कर इसी प्रकार वंचित होता है। क्योंकि प्यारी शकुन्तला ने दूसरी ओर दृष्टि डाल कर भी जो प्रेम में भरकर देखा था, नितम्ब-भार के कारण विलास सहित जो मृदु मन्द गति से गमन किया था, प्रिय सखियों ने 'जाना मत' कह कर जो उसको रोका था, एवं शकुन्तला और अनुसूया के सहित उनके साथ जो बात की थी, यह सब बातें देख कर कामी पुरुष अपने मन में समझ लेता है कि वह मुझको देख कर ही ऐसा करती है।

विदू०—(वैसे ही खड़ा रहा) सखे! अब मुझ में हाथ पैर हिलाने की शक्ति नहीं है, केवल वाणी से ही आशीर्वाद करता हूं—आप की जय होवे।

राजा—यह तुम्हारे अंग-भंग कैसे हुए?

विदू०—अपनी अँगुलीसे आँख चुभाकर पूछते होकि आँसू क्यों आये?

राजा—हम तुम्हारी बात कुछ भी नहीं समझ सके? ज़रा स्पष्ट कर के कहो।

विदू०—हे मित्र! देखो,-यह बेंत जो कुबड़े की होड़ करता है—सो यह अपने आप टेढ़ा हुआ है या नदी के वेग से?

राजा—नदी के वेग से ही झुका होगा।

विदू०—तो बस-मेरे अंग-भंग के कारण भी आपही हैं।

राजा—सो कैसे?

विदू०—चिर प्रथित राज-काज छोड़ कर वनचर वृत्ति अवलम्बन पूर्वक (शिकार के पीछे ही फिरते रहना) क्या आपको उचित है? आप क्या परामर्श देते हैं? मैं ब्राह्मण हूं—प्रतिदिन बनैले हिंसक जीवों के पीछे दौड़ने-दौड़ते मेरा अंग-अंग टूट गया है, अपना अंग आप ही नहीं चला सकता, इस लिये आप प्रसन्न होकर केवल एक दिन मात्र तो मुझे सुस्ता लेने दें?

राजा—(आप ही आप) इधर यह व्यक्ति तो इस प्रकार कहता है, और उधर मेरा मन भी कण्व-कन्या शकुन्तला के बिना देखे मृगया से निरुत्साह होगया है, क्योंकि-एकत्र सहवास के कारण मृगों पर मुझको भी दया आगई है, किसी प्रकार भी उनके ऊपर बाण नहीं चला सकता।

विदू—(राजा के मुख की ओर देखकर) आप मन ही मन क्या सोच रहे हैं, मेरी बात तो बन में रोने के समान (निष्फल) होगई ?

राजा—(कुछेक हँसकर) मैं कुछ भी नहीं सोचता हूं-केवल यही सोचता हूँ कि बन्धु की बात अवश्य मानूं।

विदू—(सन्तुष्ट होकर) दीर्घजीवी हूजिये।

(उठकर जाना चाहता है)

राजा—मित्र ! ठहरो। मेरी बात सुनो।

विदू—आज्ञा कीजिये।

राजा—जब तुम विश्राम कर चुकोगे-तब हम ऐसे काम में सहायता लेंगे-जिसमें कुछ परिश्रम नहीं करना पड़ेगा।

विदू—क्या खाँड के लड्डू खिलाओगे ?

राजा—मैं जो कहता हूं।

विदू—अच्छा सतर्क होगया।

राजा—कोई कहीं है ?

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वार—स्वामी ! आज्ञा कीजिये।

राजा—रैवतक ! सेनापति को बुलाओ।

(द्वारपाल चला गया)

(सेनापति के साथ द्वारपाल का पुनः प्रवेश)

द्वार—यह जो आज्ञा देकर उद्ग्रीव महाराज यहाँ ही बैठे हैं, आप उनके पास जाइये।

सेना—(राजा का मुँह देखकर) यद्यपि मृगया में दोष हैं-पर आप के निकट उनको गुण ही कहना चाहिये। देखो निरन्तर धनु के आकर्षण द्वारा सदा जीव हिंसा रूपी निष्ठुर कार्य में लगे रहते हैं इसी लिये धर्म संचार भी नहीं होता इन सब कारणों से अंग अत्यन्त क्षीण होने पर भी अत्यन्त विस्तृत होने से वह क्षीणता उपलब्ध नहीं होती तो भी यह महाराज पहाड़ी हाथी की नाईं महा सारवान् दीखता है। राजा के पास जाकर) आप की जय हो। यह बन श्वापद पशुओं से भरा हुआ है यह देखकर भी आप कैसे निश्चिन्त बैठे हुए हैं ?

राजा—मृगया की निन्दा करके माघव्य ने मेरे उत्साह को तोड़ दिया है।

सेना—(हौले साधव्यसे) मित्र ! तुम अपनी बात पर डटे रहो। मैं स्वामी से ठकुर सुहाती हो कहूंगा (प्रकट) महाराज ! इस मूर्ख को बकने दीजिये आप ही देखिये कि इसमें कितने गुण हैं। मृगया करने से मेद छूट जाता है—इसी लिये उदर क्षीण होगया है। इसी से देह भी हल्का और उत्साह युक्त हुआ हैं और जीवों में भय तथा क्रोध का संचार होने से उनके चित्त में किस प्रकार विकार उत्पन्न होता है यह भी जान लिया जाता है। इसमें चंचल लक्ष्य भेद कर सकने पर धनुर्धारी को विशेष आनन्द होता है। अतएव मनु आदि शास्त्रकारों ने जो मृगया को व्यसन (लत) बताकर दोषारोपण किया है, वह मिथ्या है। विशेषतः ऐसा आनन्द और कहीं भी नहीं हैं।

विदू [सरोष] रे उत्साह हेतुक ! तू यहां से दूर हो—मैंने सम्प्रति महाराज को प्रकृतिस्थ किया है। तू अत्यन्त भ्रष्ट है वनवन में भ्रमण करते हुए नर मांस लोलुप तू किसी बाघ या रीछ के मुख में गिरेगा।

राजा—भद्र सेनापते ! मैं तपोवन के समीप में हूँ—इस कारण मृगया की बड़ाई करने में हम तुम्हारा पक्ष नहीं ले सकते। आज महिषगण शृंग द्वारा बारम्बार जल को मथन करके स्नान करें। मृग दल वृद्ध होकर बारंवार रोंथ करें। शूकर पल्वल जलमें स्नान करके विश्वस्त मन से मोथा भक्षण करें। और धनुष की प्रत्यंचा बंधन से शिथिल होकर विश्राम करे।

सेना—स्वामी को जैसी इच्छा।

राजा—पुरोवर्त्ती धनुर्धारियों को निवृत्त करो। मेरी सेना के लोग जिससे आश्रम को किसी प्रकार की पीड़ा न पहुँचासकें और आश्रम से दूर के स्थान में रहें तुम उनको वैसो आज्ञा दो। देखो इन शांति रस के आधार तपस्वियों में जलाने वाला तेज अत्यन्त गुप्तभाव से स्थित रहता है, और भी देखो—सूर्यकान्तमणि अतिशय सुख स्पर्श होने पर भी यदि दूसरे तेज से आक्रान्त हो तो भी देह उत्पन्न करती है।

सेना—स्वामी की जैसी आज्ञा।

विदू—रे दासी के पुत्र ! तू यहां से दूर हो।

सेनापति का जाना।

राजा—(परिजनों की ओर देखकर) तुम भी अपना यह मृगया का

वेश उतार डालो रैवतक ! तुम भी दरवाजे पर जाकर अपने काम में तत्पर होओ अर्थात् सावधानी से दरवाजे की चौकसी करो ।

रैव—स्वामी की जो आज्ञा ।

(यह कहकर चला गया)

विदू—सम्प्रति आपने यदि इस स्थान को मक्खियों से रहित कर दिया है, तो इस वृक्ष छाया पूर्ण वितानाच्छादित शिला पर बैठिये और मैं भी सुख से बैठूं ।

राजा—तुम आगे आगे चलो ।

विदू—यही सही, आइये ।

(दोनों का घूमकर बैठना)

राजा—माधव्य ! अभी तुझे नेत्रों का फल नहीं मिला है, क्योंकि तैने देखने योग्य वस्तु को नहीं देखा ।

विदू—क्यों, आपही मेरे नेत्रों के आगे वर्तमान हैं ।

राजा—अपनी अपनी चीज को तो सभी सुन्दर देखते हैं, पर मैं तुझ से इस आश्रम की शोभा शकुन्तला के विषय में कहता हूं ।

विदू—(आप ही आप) पर मैं इस कहने का इनको अवसर नहीं दूंगा [प्रकट] सखे ! वह शकुन्तला मुनि की कन्या है, उसको देखकर आपको क्या फल होगा ?

राजा—मूर्ख, तुझको धिक्कार है ! देख मनुष्य नवोदित चन्द्रमा को कौन इच्छा करके इकटक नेत्रों से देखते हैं । उसको पाने के लिये नहीं, वरन मनोहर पदार्थ होने से ही मनुष्य देखते हैं ।

विदू॰—तो कहिये ।

राजा—मित्र ! त्यागने योग्य पदार्थ में दुष्यन्त का मन कभी नहीं जायगा । यह शकुन्तला सुरबाला के गर्भ से उत्पन्न है, इसकी माता मैनका प्रसव (जनने) के पीछे इसको त्यागकर चली गई । आकके पेड़ पर जैसे नवमल्लिका पुष्प लगता है, उसी प्रकार पृथ्वी में पड़ी हुई शकुन्तला को पाकर महर्षि कण्व ने परम यत्न से लालन पालन किया ।

विदू॰—(हँसकर) महाराज ! पहिले पिण्डखजूर भोजन करके फिर उत्तेजित होने पर जिस प्रकार किसी को इमली खाने की इच्छा हो, रनवास की स्त्रियों के साथ निरन्तर रहने के कारण आपकी भी दशा वैसे ही होरही है ।

राजा—मित्र ! तू शकुन्तला को नहीं देखने से ही ऐसा कहता है ।

विदू०—महाराज! जब वह आपको विस्मित करती है, तब वह अवश्य मनोहर होगी।

राजा–सखे! अधिक कहने का क्या प्रयोजन है, उस कृशांगी शकुन्तला के देह की सुन्दरता को विचार कर जाना गया कि जगत् स्रष्टा ब्रह्माजी ने समस्त निर्माण-वस्तु एकत्र संचय करके समस्त रूप राशि एक स्थान में दिखाने के लिये ही मानों एक रमणी रत्न को बनाया है।

विदू०–यदि ऐसा है, तो उसके आगे सब रूपवती तुच्छ हैं।

राजा–मेरे मन में तो ऐसा ही है, उस शकुन्तला की सुन्दरता विना सूंघे पुष्प की समान निर्मल, नखच्छेद नवपल्लव की समान, बिना पहिरे वस्त्र की समान और विना स्वाद ली हुई मिश्री के समान है। उसकी वह निष्कलंक सुन्दरता मानों पुण्यवान् पुरुषों का अखण्ड फल स्वरूप है। जगत्पति ने पृथ्वीतल में न मालूम किस भाग्यवान् मनुष्य को इसका भोगने वाला बनाया है।

विदू०–तो आप उससे शीघ्र विवाह करलें, नहीं तो हिंगोट के तेल से चिकने शिर वाले किसी तपस्वी के हाथ यह अखण्ड पुण्य का फल लग जायगा।

राजा–वह सन्मान के योग्य शकुन्तला पराधीन है–इस पर फिर पिता आदि भी कोई निकट नहीं हैं।

विदू०–भला, यह तो कहिये कि आप पर उसका कैसा प्रेम है?

राजा–तपस्वियों की कन्या स्वभाव से ही कम बोलती हैं, क्योंकि बोलने में सकुचाती हैं। किन्तु तो भी मेरे पास जाने पर तुरन्त आँख फेर ली। पर दूसरी बात उठाकर हँसी भी, अस्तु–उस शकुन्तला ने सुशिक्षा द्वारा अपनी कामवृत्ति भली भाँति प्रकट नहीं की अथच गुप्त भी नहीं रक्खी।

विदू०–(हँसकर) क्या वह केवल देखते ही आपकी गोदमें आ बैठती?

राजा–फिर जब दोनों सखियों के साथ एकान्त में जाने लगी, तो अंग के इशारों से उसने मेरे प्रति अत्यन्त काम भाव प्रकाशित किया था, उस समय दुबले अंग वाली शकुन्तला कई एक पग जाकर 'कुश के काँटे से पैर में घाव होगया है,' कह कर क्षण भर तक अकारण ही खड़ी रही थी और उसका पहिरा हुआ बल्कल वस्त्र वृक्ष-शाखा में न उलझने पर भी वस्त्र छुड़ाने के बहाने अपनी चोली का परदा भी उघाड़ाथा।

विदू०–तब फिर चिन्ता क्या है? इस बार पथिकाई की सामिग्री इकट्ठी होगई है, 'मुझको ज्ञात पड़ता हैं कि यह तपोवन आपके पक्ष में

उपवन स्वरूप हुआ है।

राजा—जिससे यह तपस्वी लोग यह बात नहीं जान सकें, ऐसा कोई उपाय निश्चित करो। अब बता (दूसरी बार) मैं इस आश्रम में कैसे प्रवेश करूँ?

विदू०—आप इस समय इस आश्रम के राजा हैं, तब फिर दूसरा उपाय करने की क्या आवश्यकता है?

राजा—इससे क्या फल?

विदू०—तापसगण उत्पन्न हुए नीवार अन्न का छठा अंश हम को उपहार देवें।

राजा—मूर्ख! यह तापस लोग हमको जो कर देते हैं, वह रत्नों की अपेक्षा भी अधिक आदर का पदार्थ है। देखो—चारों वर्णों से राजा को जो जो कर मिलता है, वह नाशवान् है, किन्तु वनवासी तपस्वी मुझको अपनी तपस्या का छठा अंश स्वरूप अक्षय रत्न देते हैं।

(नेपथ्यमें)—अब हम कृत्य कृत्य हुए।

राजा—(उसी ओर को कान लगाकर) जिस प्रकार गंभीर कण्ठ-स्वर सुना गया है, उससे तो यह मुनि ही मालूम होते हैं।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वार०—स्वामी की जय हो! जय हो!! दो मुनिकुमार दरवाजे पर उपस्थित हैं।

राजा—उनको शीघ्र यहाँ ले आओ।

[द्वारपाल का चला जाना]

(दोनों मुनि कुमारों के साथ द्वारपाल का पुनः प्रवेश)

द्वार०—आप इधर आइये! इधर आइये?

दोनों—(राजा को देखने लगे)

पहला—अहो कैसा आश्चर्य है? इनका शरीर दीप्तिमान् होने पर भी विश्वास की कैसी योग्यता है (इनका तेज देखने से आनन्द के अतिरिक्त डर नहीं होता, अथवा इस ऋषि-तुल्य राजामें ऐसा भाव उचित ही है, इसमें सन्देह नहीं। क्योंकि यह सब भाग्य के स्थान इस तपोवन में अव-स्थान कर रहे हैं, आश्रम की रक्षा के लिये प्रतिदिन तपः संचय करते हैं और आज भी सिद्ध चरणों के उच्च कण्ठ से राजा की जय घोषणा करने में जान पड़ता है, मानों आकाश मार्ग में प्रतिध्वनि होरही है।

दूसरा—यह वही देवराज के सखा दुष्यन्त हैं।

पहला—हाँ यह वे ही हैं।

दूसरा—इसीलिए यह अर्गल स्वरूप दोनों बाहु धारण पूर्वक अकेले ही इस सस्य श्यामला समस्त पृथ्वी को भोगते हैं और देवना लोग दानवों के साथ शत्रुता करने पर देववाला रणक्षेत्र में इनके धनुष और सुरपति के वज्रसे जयकी आशा बाँधती हैं। यह सब अचंभा नहीं है।

दोनों—(राजा के समीपवर्त्ती होकर) आपकी जय हो।

राजा—(आसन से उठकर) आपको अभिवादन (प्रणाम) करता हूँ।

दोनों—महाराज का कल्याण हो।

(यह कहकर फलादि उपहार दिये)

राजा—(प्रणाम करके) आपके आने का कारण जानना चाहता हूँ ?

दोनों—तापसों को ज्ञात हुआ कि आप यहाँ हैं,वे आपसे कुछ प्रार्थना करते हैं।

राजा—क्या आज्ञा देते हैं ?

दोनों—पूज्यपाद् कण्व यहाँ उपस्थित नहीं हैं, इसलिये राक्षसगण यज्ञ में विघ्न डालने को उद्यत हुए हैं, इस लिये आप सारथी समेत कुछ दिन वहाँ रहकर इस तपोवन को प्रभु सम्पन्न कीजिये।

राजा—यह तो बड़ी कृपा की है।

विदू०—(सैन से चुपचाप) यह प्रार्थना तो आपकी मनमानी हुई।

राजा—रैवतक ! हमारी ओर से जाकर सारथी से कहो कि धनुष बाण के सहित हमारा रथ ले आवे।

द्वार०—जो आज्ञा महाराज की।

(द्वारपाल का जाना)

दोनों मुनिकु०—(आनन्द से) आपने पूर्व पुरुषाओं के नियम का ही अनुसरण किया हैं। सुतरां-आपके लिये यह उचित ही है, क्योंकि आपके पुरुषा दुःखी पुरुषों को अभय देने और यज्ञ कार्य में सदा ही दीक्षित रहते थे।

राजा—(प्रणाम करके) आप आगे आगे-चलिये, मैं आपके साथ साथ चलूँगा।

दोनों मुनि कु०—राजन् ! आप विजयी हों।

(दोनों का जाना)

राजा—मित्र माधव्य ! क्या तुम्हारी इच्छा शकुन्तला को देखने की है ?

विदू०—पहले तो बड़ी चाह थी, पर अब राक्षसों के नाम से तो बूँद भर भी न रही।

राजा—तुमको कुछ डर नहीं है। तुम तो मेरे पास रहोगे।

विदू०—यदि कोई आकर विघ्न न डाले, तो आपके रथचक्र का रक्षक रूपसे रहूँगा।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वार०—स्वामी की जय हो! जय हो!! रथ सजकर आपके विजय-यात्रा की बाट देखता है, महाराज! उधर माताजी का भेजा हुआ करभक दूत नगर से कुछ संदेशा लेकर आया है।

राजा—(सादर) उसको क्या माताजी ने भेजा है?

द्वार०—हाँ उन्होंने ही भेजा है।

राजा—तब तो यहीं ले आओ।

द्वार०—जो आज्ञा।

(द्वारपाल का प्रस्थान)

(करभक के साथ द्वारपाल का फिर आना)

द्वार०—यही स्वामी हैं, इनके निकट जाओ।

कर०—(प्रणाम करके) स्वामी की जय हो! जय हो!! देवी ने आज्ञा दी है।

राजा—क्या आज्ञा?

कर०—आगामी चौथ के दिन प्रावृत्तपारण नामक व्रत है। उसे आप अवश्य यहाँ उपस्थित होकर हमारे आनन्द को बढ़ाना।

राजा—इधर तपस्वियों का कार्य और उधर गुरुजन (माता) की आज्ञा-दोनों हो अनिवार्य (पालनीय) हैं, अब क्या करना चाहिये।

विदू—अब तो त्रिशंकु की नाईं बीच में ही लटके रहो।

राजा—सत्य ही मैं बड़ी दुविधा में पड़गया। देखो दोनों कार्य पृथक् पृथक् स्थान में सम्पादनीय हैं सुतरां जैसे पत्थर की शिला द्वारा रुकजाने पर नदी का जो भाव होता है, मेरा चित्त भी उसी प्रकार दोनों ओर जाने पर दुविधा के भाव को प्राप्त होरहा है। क्षण भर सोच कर, मित्र। जननी ने तुझको भी तो पुत्र रूप में ग्रहण किया है—इस लिये तू यहां से लौट कर चला जा। उनसे जाकर निवेदन करदे कि-मैं तपस्वियों के किसी काम को करने के लिये लगा हुआ हूँ। तू जाकर पूजनीय माता का पवित्र कार्य करना।

विदू—मुझको राक्षसों के भय से डरा हुआ मत समझिये।

राजा—(कुछेक हँस कर) हे महाब्राह्मण! भला तुझ में भय कैसे हो सकता है?

विदू—तो मैं राजा के छोटे भाई की समान जाना चाहता हूं।

राजा—आश्रम का भय दूर करना उचित है, इस लिये तेरे साथ सब अनुचरों को भी भेजे देता हूं।

विदू—तब तो अब मैं युवराज बन गया।

राजा—(आप ही आप) यह ब्राह्मण बड़ा चपल है। कहीं रनवासमें जाकर हमारा भेद (यहाँ की घटना) प्रकाशित न करदे। जो हो, अब उससे इस प्रकार कहूँ (विदूषक का हाथ पकड़ कर प्रकट) मित्र! केवल तपस्वियों का गौरव रखने के लिये ही आश्रम में आता हूं, मुनि-बालाओं की चाह मुझे नहीं है। यह बात तू सत्य ही समझना। देख! कहाँ तो सब कलाओं में चतुर नगर का रहने वाला विषयी व्यक्ति मैं और कहाँ जिनके हृदय में काम भाव नहीं है-वह हरिन छौनाओं के साथ पले लोग। अतएव मित्र! तुझसे मैंने जो कुछ कहा है, उस सब को मिथ्या हँसी मात्र ही समझना सत्य मत समझ जाना।

विदू—जो आज्ञा! यह बात सत्य है।

(सबका प्रस्थान)

(दूसरा अंक समाप्त)

तीसरा अंक।

(ऋत्विज ब्राह्मण का एक चेला हाथ में कुश लिये आया।

चेला-(सोचकर आश्चर्य से) अहा! दुष्यन्त राजा कैसा महा प्रतापी है, उसके एक मात्र सारथी समेत आश्रम में प्रवेश करते ही हमारे सब कामों में जो विघ्न थे, वे दूर होगये। उसके बाण छोड़ने की बात तो अलग रही, दूर से हुंकार शब्द और धनुष की टंकार से ही वह विघ्न दूर कर देता है। जो हो-वेदी पर बिछाने के लिये यह जो कुश लाया हूं-यह ऋत्विकों को दूं (घूमकर और आकाश की ओर देख कर) हे प्रियम्बदा! यह खस का लेप और नाल सहित कमल के पत्ते किस के निमित्त लिये जाती है? (मानों प्रियम्बदा की बात सुनकर) क्या कहा? कि अत्यन्त

धूप लग जाने से शकुन्तला का शरीर मुरझा गया है, उसकी शान्ति के लिये ठंडाई लिये जाती हूं। तो प्रियम्वदा ! शीघ्र जाओ यत्न से उसकी सेवा करो-क्योंकि वह पूज्यपाद कण्व का दूसरा प्राण-तुल्य है। मैं भी गौतमी के साथ यज्ञ मन्त्र शान्ति करने वाला जल भेजता हूँ (प्रस्थान)

(कामियों की सी दशा बनाये राजा आया)

राजा—(चिन्ता पूर्वक लम्बा श्वाँस लेकर) तपस्या का बल कैसा होता है-इसको मैं खूब जानता हूँ। कण्व-नन्दिनी शकुन्तला भी पराधीन है-यह भी भली भाँति जानता हूँ। तो भी जल जिस प्रकार अपने रहने की जगह से अन्यत्र नहीं जाता, उसी प्रकार मेरे मनसे भी शकुन्तला किसी समय दूर नहीं होती। भगवान् कामदेव ! सुना है-तुम्हारे बाण फूलों के हैं, तो फिर उनमें ऐसा तीखा पन कैसे होगया ? (याद करके) हां, अब समझा-शिव की कोपाग्नि समुद्र के भीतर रहने वाली बड़वाग्नि के समान अब भी तुम में जलती रहती है। हे मन्मथ ! ऐसा होने से तुम तो दग्ध होते ही हो, किन्तु मेरी समान व्यक्ति के पक्ष में इतने तप्त क्यों होते हो ? तुम और चन्द्रमा दोनों विश्वास उत्पन्न करके प्रिया की अभिलाषा करने वाले लोगों को केवल धोखा ही देते हैं। अति कोमल फूल तुम्हारे बाण हैं, हिमांशु चन्द्रमा की किरणें भी अत्यन्त शीतल हैं, किन्तु यह दोनों ही मुझ सरीखे व्यक्ति के पक्ष में मिथ्या जान पड़ते हैं, क्योंकि चन्द्रमा अपनी किरणों से अग्नि टपकाता है और तुम अपने फूलों के बाण को वज्रसार करते हो। अथवा हे मनोभव ! यदि तुम इस मदिराक्षी शकुन्तला को अधिकार में करके मुझ पर प्रहार करते तो मेरे मन में जरा भी क्षोभ उत्पन्न नहीं होता। हे कामदेव ! मैं तुम्हारी इतनी बुराई करता हूँ, तो भी मुझ पर तुम को कुछ दया नहीं आती। हे अनंग ! मैंने सैंकड़ों संकल्पों के द्वारा अपने चित्त-मन्दिर में तुमको वृथा ही बढ़ाया है। अतएव मेरे द्वारा बढ़कर कानों तक (धनुष) खेंच कर मुझपरही बाण चलाना क्या तुमको उचित है ? [विलास से घूमकर] तपस्वियों का विघ्न दूर होगया है, अब उनसे आज्ञा ले मैं कहाँ जाकर अपना जी बहलाऊंगा ? प्यारी के दर्शन विना दूसरा कोई उपाय नहीं है, तो अब जाऊं—उसी को खोजूँ [आकाश को देखकर] यह तो दुपहर का समय होगया, जान पड़ता है, प्यारी शकुन्तला सखियों के साथ कहीं मालिनी के किनारे लता कुञ्ज में विचरती होगी, तो अब वहीं जाऊं [घूमकर और देखकर] इस मार्ग के दोनों पार्श्व में ही नये नये वृक्षों की क़तार शोभा पाती हैं। इसके देखने से जाना जाता है कि वह अच्छे

शरीर वाली शकुन्तला इसी मार्ग से होकर गई है। क्योंकि उसने जो फूल तोड़े हैं, उनके वृन्त का गह्वर अभी नहीं मुँदा है और नये पल्लव भी दूध टपकने से गीले होरहे हैं (चलती हुई पवन से शीतल होकर) अहा! यह वनस्थली कैसी मनोहर शोभा से मंडित होरही है, क्योंकि मालिनी नदीका तरंग बिन्दुवादी-कमल की गंधवाला पवन जब काम-संतप्त पुरुष के अंगको आलिंगन करता है, तो अतिशय प्रसन्नता का अनुभव होता है। [देखकर] मुझको मालूम होता है, इस वेतलता वाले मण्डप के पास ही शकुन्तला है। क्योंकि इस वेतलता मण्डप के दरवाजे पर जा पैरों के निशान दिखाई देते हैं, वे अग्रभाग में ऊँची दोनों जाँघों के भार से पीछे की ओर को नीचे हैं. और निशान भी अभी के (ताजे) हैं। अच्छा--अब इन पल्लवों की आड़ में से देखूं। (फिर कर और देख कर आनन्द से) अहा! अब मेरे नेत्र सफल हुए। यह मेरी मनोरथ रूपिणी शकुन्तला शिला पर फूल बिछाये हुए पौढ़ी है। दोनों सखियाँ उसकी सेवा करने में लग रही हैं। अब जा हो, लता वितान की ओट में खड़ा होकर इन की बातें सुनूंगा।

(उसी ओर को दृष्टि करके खड़ा हुआ)

(पूर्वोक्त अवस्था में दोनों सखियों के साथ)

(शकुन्तला का प्रवेश)

दोनों सखी—(हवा करते करते) हे शकुन्तला! इन कमल के पत्तों की हवा से तुझे सुख होता है या नहीं?

शकु०—(खेद से) प्रिय सखियो! तुम मेरी हवा क्यों करती हो?

दोनों सखी—(दुःखित मन से परस्पर देखती हैं)

राजा—(आप ही आप) शकुन्तला का शरीर बहुत ही अस्वस्थ दीखता है। हा ईश्वर! ऐसी अमृत रूपिणी के शरीर और मन में भी क्या रोग उत्पन्न हुआ? (मन ही मन विचार कर) तो क्या यह धूप का दोष है या जैसा मेरे हृदय में है--वैसा ही मदन--जनित संताप है। (अभिलाषा से देख कर) अथवा अब संदेह से क्या? क्योंकि देख रहा हूं, इस के दोनों कुचा पर खस का लेप किया गया है। एक हाथ में कमल के कंगन हैं, सो वे भी ढीले पढ़ गये हैं तथापि प्यारी के देहने रोग ग्रसित होने पर भी अत्यन्त मनोहर भाव धारण किया है। विशेषता मदन ताप और ग्रीष्मताप बराबर होने पर भी ग्रीष्म ताप से तप्त युवती के देह में ऐसी मनोहरता दिखाई नहीं देती अस्तु, यह निःसंदेह काम-जनित सन्ताप है।

प्रिय—(हौले से) अनसूया ! जब से पहली पहल शकुन्तला ने इस राजर्षि को देखा है, तव से यह उत्कण्ठित सी होगई है । क्योंकि किसी दूसरे कारण से यह रोग उत्पन्न हुआ हो, ऐसा अनुमान तो मुझको होता नहीं ?

अन०—(प्रियम्बदा के कानमें) सखि ! मेरे मन में भी यही आशंका उत्पन्न होती है [प्रकट] सखि ! इस समय तुझसे कुछ पूछना अनुचित है, किंतु तो भी पूछती हूँ । तुम्हारे देहका सन्ताप क्या बहुत ही बढ़ गया है ?

राजा—इस वात को पूछना इसके पक्षमें बहुत ही ठीक है । क्योंकि चन्द्रकिरण की समान सफेद इसके कमल के कंगन सन्ताप जनित कलौंच से मलीन होगये हैं । वे ही मानों इसकी असह्य-मदन वेदना को सूचित करते हैं ।

शकु०—(शयन से देह का पूर्वार्द्ध उठाकर) सखि ! जो कहना चाहती हो, सो कहो ।

अन०—सखि शकुन्तला ! हम तुम्हारे चित्त के विषय को तो कुछ नहीं जानतीं अर्थात् कामके कारण प्राप्त हुए व्यवहारों को नहीं जानतीं; किंतु इतिहास से कामी व्यक्ति की अवस्था जैसी सुनो जाती है, हमारे विचार में तुम्हारी दशा भी वैसी ही उपस्थित हुई है । नहीं तो बताओ ऐसी अवस्था क्यों होती ? असली रोग का निदान विना हुए हम उसके नष्ट करने का उपाय कैसे करें ?

राजा—मेरे मन का भाव ही ठीक समझ लिया अर्थात् जो आशंका मुझे है-वह अनसूया को भी है-मेरे अभिप्राय के अनुसार ही ज्ञान नहीं ।

शकु—(आप ही आप) मेरा सन्ताप एकाएक बहुत ही बढ़ गया है सहसा प्रकट नहीं कर सकती ।

प्रिय—शकुन्तला ! अनसूया भली बात कहती है, तू अपने को क्यों छिपाती है ? दिन पर दिन तेरे अंग दुबले हुए जाते हैं-अब केवल लावण्यवती छाया मात्र रह गई है ।

राजा—प्रियम्बदा ने सत्य कहा । गाल बहुत क्षीण हो गये-दोनों कुचाओं में अब वैसी कठिनता नहीं रही, कटि अत्यंत दुर्वल हो गई-कंधे दोनोंझुक गये और शरीर की कांति भी पीली पड़ गई है । अतएव यह शकुन्तला काम कर्तृक विकार को प्राप्त होने पर भी पत्तों से सुखाने वाली दक्षिणो पवन के द्वारा स्पृष्ट माधवी लतिका के समान सुशोभित है अथच प्रिय दर्शना भी होगई है ।

—शकु—(लम्बा स्वाँस छोड़ कर) सखी ! तुम से न कहूंगी तो और किससे कहूंगी ? तुम दोनों को ही कष्ट दूंगी।

दोनों सखी—सखी ! इसीसे तो हम दृढ़ करके पूछती हैं-हितू जनों के निकट कहने से दुःख कुछ कम होजाता है !

राजा—यह दोनों सखी शकुंतला के सुख से सुखी और दुखसे दुःखी है। यह जब पूछती हैं-तो क्या शकुंतला इनसे रोग का कारण न कहेगी ? निःसन्देह कहेगी। और इस आश्रम से जब मैं गया था. तब शकुन्तला ने बार बार सतृष्ण नेत्रों से मुझे देखा था। किन्तु अब यह क्या उत्तर देती है-उसको जानने के लिये मैं बहुत ही व्याकुल हुआ हूं।

—शकु—जिस दिन से इस आश्रम के रक्षक राजा को मैंने देखा है,
(इस प्रकार आधी बात कहने पर लाज से मुख झुका लिया)

दोनों सखी—प्रिय सखी ! कहो। कहो।

शकु—तब से मैं उनके प्रति नितान्त ही अनुरागिणी हुई हूं। बस, इसी से मेरी यह दशा होगई है।

दोनों सखी—भाग्य से, योग्य पात्र में ही तुम्हारी इच्छा उत्पन्न हुई है-जान पड़ता है, वेही राजा दुष्यन्त हैं-क्यों कि भला महानदी समुद्र को छोड़ कर और कहाँ प्रविष्ट हो सकती है ?

राजा—(सानन्द) जो सुनना चाहता था, वही सुन लिया। ग्रीष्म का अन्त होने पर दिन जिस प्रकार मेघ समूह से श्यामवर्ण होकर जीवों का सन्ताप दूर करता है, कामदेव भी मेरे पक्ष में उसी प्रकार संताप दाता और संताप हर्ता है अर्थात् जो कन्दर्प मुझको संताप से तपा रहा था, मेरे प्रति शकुन्तला का अनुराग उत्पन्न करके अब उसी ने मेरे संताप को हर लिया।

शकु—यदि तुम्हारी सम्मति हो-तो मैं उस राजर्षि की कृपापात्री बन सकती हूं ?

राजा—इन सब बातों से ही मेरा संदेह दूर होता है। यह काम का फल और विवाहादि का विषय यत्न साध्य है। ऐसी अवस्था होनेपर भी मैं सुखी हूँगा।

प्रिय—(हौले से) अनसूया ! शकुन्तला का मनोरथ अति दूरवर्ती है-इधर समय बिताने में भी असमर्थ है।

अन—प्रियम्बदा ! जिससे शीघ्र एकांत में प्रियसखी का मनोरथ पूर्ण किया जाय-क्या कोई ऐसा उपाय है ?

प्रिय—एकान्त में सम्पन्न होना चिंता की बात नहीं है—किन्तु शीघ्र सम्पन्न होना कठिन है।

अन—कैसे?

प्रिय—जब से उस राजर्षि ने इसमें स्नेह भरी दृष्टि से अभिलाषा की थी, तब से शकुंतला के प्रति उसका बहुत ही अनुराग होगया है। रात में जाग कर मनुष्य जैसा दुबला होजाता है—वे भी उसी प्रकार दुबले होगये हैं।

राजा—(अपने अंग को देखकर) सत्य ही में ऐसा होगया हूं, क्योंकि—मेरे यह स्वर्ण भुजबंद अत्यधिक उष्ण अंतर्गत संताप द्वारा करतल-न्यस्त अपांग देश से खसक, नेत्र जल द्वारा विवर्ण और मलीन होगये हैं। गूंथ पर बंधे धनुर्गुण चिह्नित कलाई से वलय (कंगन) प्रति रात में ही बार बार खसक पड़ने पर मैं उनको सरका कर वार वार उनके स्थान पर पहुंचाता हूँ।

प्रिय—(चिंता करके) सखो! इस समय एक काम दशा का पत्र लिखो। मैं उसको फूलों के भीतर रख देवपूजा के बहाने जाकर राजा के हाथ में दूंगी।

अन—सखी! इस सुकुमार प्रयोग में मेरी भी सम्मति है। अब शकुंतला का क्या मत है?

शकु—तुम्हारी आज्ञा में क्या विचार है?

प्रिय—तो अपनी दशा के अनुसार कोई सुंदर छंद बनादे।

शकु—सखी! छंद तो मैं रच दूंगी पर मुझे भय है कि वह उसे लौटा कर मेरा निरादर न करें—बस केवल इसी बात से जी डरता है।

राजा—(हंसकर) तुम जिससे निरादर का भय करती हो, वह व्यक्ति स्वयं ही तुम्हारे दर्शन का अभिलाषी हुआ है। सुतरां अभिलाषी व्यक्ति लक्ष्मी प्राप्त करे या न करे, किन्तु लक्ष्मी जिसकी अभिलाषा करती है, वह व्यक्ति कभी दुर्लभ नहीं होता। करभोरु! जिससे अपनी की हुई प्रार्थना का असंभव निरादर होने की आशंका करती है, वह प्रणयाभिलाषी व्यक्ति तुम्हारे निकट ही विद्यमान है। सुन्दरि! तुम जानती होगी कि रत्न किसी को भी नहीं खोजते, किन्तु रत्न को ही सब ढूंढा करते हैं।

दोनों सखी—हे अपने गुणों की निन्दा करने वाली! भला ऐसा कौन होगा, जो शरीर के ताप दूर करने वाली शरद की चाँदनी को निवारण करने के लिये अपने शिर पर वस्त्र तानेगा?

शकु—(हँसकर) तो सखियों की सम्मति के अनुसार ही काम करती हूँ (बैठकर सोचने लगी)

राजा—इस समय इकटक नेत्रों से प्यारी का दर्शन करना चाहिये। क्योंकि प्यारी शकुन्तला छन्द के रचने में उद्यत हुई है। इस समय उसके मुखकी एक मात्र भ्रूलता उन्नमित हुई है अर्थात् भ्रुकुटी वंक हुई है; और गण्डस्थल (गालों) में पुलकावली का संचार होने से उसके द्वारा मेरे ऊपर प्यारी का अनुराग ही प्रकाशित होता है।

शकु—सखियों! छन्द का विषय तो सोच लिया, किन्तु लिखने की सामग्री यहाँ उपस्थित नहीं है।

प्रिय—इस कोमल कमल के पत्ते पर पदच्छेद के लिये जो प्रयोजनीय है, तत् प्रमाण अंशमें नाखून द्वारा लिखने का कार्य समाप्त करदे।

शकु—(वैसा ही करके) सुन तो लो कि वह युक्ति संगत हुआ कि कि नहीं अर्थात् इसमें अर्थ बना कि नहीं?

सखीद्वय—हम सावधान हैं, सुना।

शकु—पत्र पढ़ती है।

(झंझोटी का जिला)

निर्दय तव मनको नहिं जानत।
रैन दिवस मोहि मैन तपावत॥
मन अभिलाष मिलन को ठानत।
यह तन काम तपाय सुखायो।
तुम नेकहु मनमें नहिं आनत॥

राजा—यही तो दर्शन देने का उपयुक्त अवसर है। [सहसा शकुन्तला के निकट जाकर] हे कृशाङ्गी! कामदेव तुमको और मुझको निरात बारम्बार जलाये डालता है। दिवाभाग चन्द्रमा को जिस प्रकार ग्लानियुक्त करता है, कुमुद्वती को वैसा नहीं करता।

दोनों सखी—(प्रसन्न होकर) जो मनोरथ के अभीष्ट फल स्वरूप हैं, उनका मंगल तो है?

(शकुन्तल आदर के लिये उठने की इच्छा करती है)

राजा—परिश्रम की आवश्यकता नहीं, तुम्हारे गात्र संमर्दन से कोमल कमल भी दहला जाता है। अतएव ऐसे भारी ताप से संतप्त अंग उठाने के योग्य नहीं हैं अर्थात् तुम पौढ़ी ही रहो।

शकु—(डरकर आपही आप) हृदय! पूर्ववत् उत्कंठित होकर अब फिर उस प्रकार कुछ क्यों नहीं कहता?

अन—महाराज ! इसी चट्टान पर (शकुन्तला के पास) बैठिये।

[शकुन्तल पूर्वस्थान से कुछ सरक गई]

राजा (बैठकर) आपकी सखी के देहका संताप क्या कुछ शमन होगया है ?

प्रिय—(हँसकर) अब औषधि मिलगई है–प्रशान्त न होगा तो क्या ?

(शकुन्तला लज्जित भाव से बैठती है)

प्रिय—महाभाग ! तुम दोनों युवाओं का परस्पर अनुराग तो प्रत्यक्ष है, पर सखी का स्नेह ही मुझसे फिर कुछ कहलाना चाहता है।

राजा—कल्याणी ! जो इच्छा हो कहो, चुपमत रहो। क्योंकि जो कहने को मन चाहे और कहा न जाय, तो वह मनमें ताप उत्पन्न करता है।

प्रिय—तो आप सुनिये।

राजा—मैं सावधान हूँ।

प्रिय—आश्रम वासियों के विघ्न और क्लेश दूर करना ही राजा का धर्म है।

राजा—इससे अधिक राजा का कोई उत्तम धर्म ही नहीं।

प्रिय—आपको उद्देश्य करके ही भगवान् अनंगदेव ने हमारी प्यारी सखी की यह अवस्था करदी है। अब कृपया प्रियसखी के प्राणधारण का उपाय कीजिये।

राजा—दोनों का ही अनुराग एकसा है। मैं (तुम्हारी बात से) अनुग्रहीत हुआ।

शकु—(अनसूया की ओर देखकर) सखि ! यह राजर्षि रनवास की स्त्रियों के विरह से उत्कण्ठित हैं, इनसे अनुरोध करने की आवश्यकता नहीं है।

राजा—हे मदिरेक्षणे ! हे हृदय समीपवर्त्तिनि ! तुम मेरे हृदय में अधिष्ठान पूर्वक यदि मेरे इस अनन्यासक्त हृदय को दूसरे में आसक्त विचारतो हो, तो कामबाण से हत होकर भी मैं फिर हत हुआ।

अन—महाराज ! हमने सुना कि राजा बहुत रानियों के प्यारे होते हैं। अतएव जिससे प्रिय सखी के बन्धु जनों को शोक नहीं करना पड़े, आप ऐसा ही निवाह कीजियेगा।

राजा—भद्रे ! इस विषय में अधिक कहना वृथा है, मैं बहुतों का प्यारा होने परभी–सागर मेखला मण्डित पृथ्वी और तुम्हारी यह प्रिय सखी यह दोनों ही मेरे वंशकी प्रतिष्ठा स्वरूप है।

दोनों सखि—तो हम सुखी हुईं।

(शकुन्तला का आनन्द प्रकाश)

प्रिय—(हौले) अनसूया ! देखो—देखो-ग्रीष्मकाल में मेघ और वायु के द्वारा व्याकुल मोरनी की जो अवस्था होती है, हमारी प्यारी सखी भी क्षण क्षण में उसी प्रकार मूर्च्छावस्था को प्राप्त होती है।

शकु—हमने निर्जन में मर्यादा तोड़कर जो वार्त्तालाप किया है, उसके लिये इन लोकपालों से क्षमा प्रार्थना करो।

दोनों सखी—(हंस कर) जिस व्यक्ति ने मर्यादा भंग की है, उसी का क्षमा प्रार्थना करनी चाहिये, उसमें दूसरे की क्या हानि है ?

शकु—एकान्त में क्या कुछ नहीं कहा जाता है, अतएव महाराज इस विषय में क्षमा करें।

राजा—(कुछेक हंस कर) हे केले के खंभ की समान जाँघों वाली ! अपने अंगके स्पर्श से पवित्र-सुगन्धित और संताप हारी इस फूलों की सेज के एक पार्श्व में यदि मुझको अपना समझ कर स्थान देने की आज्ञा दो—तो मैं इस अपराध को क्षमा कर सकता हूँ।

प्रिय—(हंसीके साथ) आप क्या ऐसा होनेसे ही सन्तुष्ट होजांयगे ?

शकु—(रोष से) शान्त हो—शान्त हो ! एक तो मेरी आप ही यह दशा हो गई है और इसके ऊपर फिर तुम मेरे साथ हंसी करती हो !

अन—(बाहर की ओर देखकर) प्रियम्वदा ! तपस्वियों के हिरनका यह बच्चा इधर उधर देखता देखता व्याकुल चित्त से क्या ढूँढता फिरता है ! निःसन्देह उसकी मा किसी दूसरे स्थान में चली गई है, अतएव चलूँ मैं उसको मा से मिलादूं।

प्रिय—यह हिरन का बच्चा बड़ा ही चंचल है, तुम अकेली (इस काम को) नहीं कर सकोगी—मैं भी तुम्हारी सहायता करूँगी।

[दोनों का जाने को उद्योग करना]

शकु—सखि ! तुम यहाँ से चली जाओगी—इस विषय में मैं कैसे अनुमोदन करूँ ? क्योंकि मैं अकेली सहायहीन हूँ।

दोनों सखी—जब कि पृथ्वीपालक राजा दुष्यन्त तेरे निकट हैं तो फिर तू अकेली या निःसहाय कैसे हुई ?

(दोनों सखियाँ चली गईं)

शकु—मुझको अकेली छोड़कर दोनों सखियाँ सच मच चली गईं।

राजा—सुन्दरी ! घबराने की आवश्यक्ता नहीं । तुम्हारी सेवा के लिये मैं ही तुम्हारी सखियों की जगह रहा । अब क्या करना होगा? हे करभोरु ! जलकी फुहार से शीतल—सन्ताप हारी कमल के पत्तों का पंखा लेकर क्या हवा करूँ ? अथवा तुम्हारे लाल कमल की समान लोहित वर्ण दोनों पैरों को गोदी में उठाकर इस प्रकार दाबूं कि जिससे तुम प्रसन्न हो जाओ।

शकु—सन्मान योग्य व्यक्ति के निकट अपनपे को अपराधी नहीं करना चाहती।

[यह कह उठकर चलने को होती है।]

राजा—(रोककर) सुन्दरी ! दिनको संताप (दुपहरी की कड़ी धूप) अभी तक भली भाँति दूर नहीं हुआ है और इस पर भी फिर तुम्हारे शरीर की यह दशा है, विशेष कर कमल के पत्तों द्वारा तुम्हारे दोनों स्तन ढक रहे हैं, इधर संताप जनित कष्ट है, अंग भी अत्यन्त कोमल हैं, अतएव फूलों की सेजको छोड़कर किस प्रकार धूपमें जाओगी ?

[यह कहकर बल पूर्वक रोका]

शकु—छोड़िये ! छोड़िये !! मुझ को न पकड़िये । मैं स्वाधीन नहीं हूँ, केवल सखियें ही मेरी रक्षक हैं। आपके ऐसा करने पर फिर मैं क्या करूँगी ?

राजा—धिक् ! बहुत ही लज्जित होना पड़ा।

शकु—मैंने महाराज से कुछ नहीं कहा है, अपने प्रारब्ध की निन्दा कर रही हूँ।

राजा—प्रारब्ध तो तुम्हारे पक्ष में अनुकूल है, तो फिर उसकी निन्दा क्यों करती हो ?

शकु०—निन्दा क्यों नहीं करूँ ? प्रारब्ध ने तो मेरा धैर्य लोप करके मुझको पराये गुणों में लुभा डाला है।

राजा—[आप ही आप] कुमारियाँ अत्यन्त उत्सुकता युक्त होने पर भी प्रियतम की प्रार्थना के विरुद्ध आचरण किया करती हैं। परस्पर आलिंगन के सुख की कामना होने पर भी अपना अंग देने में झिझकती हैं। अवसर न मिलने पर जो केवल काम-बाण से पीड़ित हो होती हैं—सो बात नहीं, प्रत्युत वह समय का विलम्ब देखकर कामदेव को भी बहुत पीड़ा देती हैं।

[शकुन्तला के जाने का उद्योग]

राजा—(स्वगत) अपनी अभिलाषा क्यों नहीं सिद्ध करूँ ?

[पास जाकर शकुन्तला का आँचल पकड़ा]

शकु०—पुरुवंशी! नीति का पालन करो। मेरी विनती रखलो, तपस्वी गण चारों ओर फिर रहे हैं।

राजा—सुन्दरी! गुरुजनों से कोई भय नहीं है। भगवान् कण्व सब आचार धर्म को जानते हैं। इस विषय में कुछ भी उनके अनुताप का कारण नहीं है, क्योंकि सुना है—तपस्वो की कन्याओं में अधिकांश गान्धर्व-विधि के अनुसार व्याही गई हैं; और उसमें पितृगणों की भी सम्मति है [चारों ओर देखकर] यह क्या? मैं तो प्रकट स्थान में आ खड़ा हुआ। (शकुन्तला को छोड़कर कुछ दूर जाना और फिर लौटना)

शकु०—[केवल एक पग जाना और फिर लौटना] हे पुरुवंशी! वासना पूर्ण न करने पर भी संभाषण के कारण परिचित इस अभागिनी शकुन्तला को आप मत भूल जाना।

राजा—सुन्दरी! दिन के समाप्त होजाने पर भी जिस प्रकार छाया वृक्ष की जड़ को नहीं छोड़ती, उसी प्रकार तुम दूर रहकर भी मेरे हृदय को परित्याग नहीं कर सकोगी।

शकु०—(कुछ दूर जाकर आपही आप) हाय! धिक्कार-धिक्कार! यह बात सुनकर अब मेरे चरण एक पग भी आगे नहीं बढ़ते। मत बढ़ो, अब इस कुरबक के वृक्ष की ओट में शरीर को छिपाकर इनका भाव और अनुराग देखूँ।

(उसी भाव से खड़ा होना)

राजा—प्रियतमे! मैं तुम्हारे ही अनुराग रस का रसिक हूँ—मुझको छोड़कर निष्पृह चित्त हो तुम बिल्कुल ही यहाँ से जा रही हो? तुम्हारे हृदय में क्या दया नहीं है? मुझको दुःख के समुद्र में छोड़कर एक दम चलदीं? प्यारी! तुम्हारे संग अभी मेरा गाढ़ आलिंगन नहीं हुआ-तुम्हारे अंग भी अत्यन्त कोमल हैं, किन्तु शिरस के फूल का बन्धन-वृन्त जिस प्रकार कठिन होता है, उसो प्रकार तुम्हारा कोमल चित्त भी क्यों कठिन हुआ है?

शकु०—यह बात सुनकर अब मुझ में जाने की शक्ति नहीं रही।

राजा—इस प्रियाहीन लता-वितान में रहकर ही अब क्या फल होगा? (सामने की ओर देखकर) अब फिर जाने में बाधा पड़गई, यह जो शकुन्तला की कलाई से खसकर कमल का कंगन सामने पड़ा हुआ

है, यह खस की गंध से परिव्याप्त है और मेरे हृदय की वेड़ी स्वरूप है। (सन्मान से कंगन उठा लिया)

शकु०—(अपना हाथ देखकर) अहो ! दुर्बलता के कारण कलाई ढीली होजाने से यह कमल का कंगन खुलकर गिरगया है, किन्तु मैं कुछ भी नहीं जान सकी।

राजा—(छाती पर कमल का कंगन रखकर) अहो ! क्या ही सुख दायक स्पर्श है ? प्यारी ! तुम्हारे मनोहर हाथ से यह कंगन खुलकर यहाँ गिर गया है—यद्यपि यह लीला भरण गहना अचेतन (जड़) पदार्थ है, किन्तु यह सन्तप्त व्यक्ति को शान्ति (धीरज) देता है, पर पाषाणमयी शकुन्तले ! तुम सचेत न होकर भी मुझको वैसी शान्ति या धीरज नहीं देतीं।

शकु०—अब और विलम्ब करने की मुझ में सामर्थ्य नहीं है। जो हो-अब इसी बहाने से उनको फिर दर्शन दूं।

(राजा के सामने जाना)

राजा—(आनन्द से देखकर) अहो ! मेरी जीवितेश्वरी फिर उपस्थित हुई। मेरे विलाप के पीछे दैव मुझ पर प्रसन्न हुआ, इसीलिये इसको पाया है। प्यास से आर्त्त चातक का कण्ठ सूखने पर उसके प्रार्थना करते ही नवीन मेघ ने तत्काल उसके मुख में जल डाल दिया।

शकु०—(पास जाकर) आर्य ! आधा पग जाते ही ध्यान आया कि मेरा कमल-कंगन हाथ से खुलकर गिर गया है, बस इसीलिये मुझको लौटना पड़ा। मेरा हृदय कहता है कि आपने ही वह कंगन उठा लिया है, अतएव शीघ्र उसको दीजिये। विलम्ब होने से ऋषिगण सब घटना जान जायँगे।

राजा—एक नियम (शर्त) मान लेने से कंगन दे सकता हूँ।

शकु०—वह नियम कैसा ?

राजा—मैं स्वयं यथास्थान में वह कंगन पहरा दूंगा, इसमें राजी न होने से उसको नहीं दे सकूंगा।

शकु०—(आप ही आप) क्या करूं ? (प्रकट) यही सही। आपही पहरा दीजिये।

(राजा के बहुत धोरे चली गई)

राजा—आओ ! दोनों इस पत्थर की चट्टान पर बैठें। (दोनों का बैठना) (शकुन्तला का हाथ पकड़ कर) अहो ! क्या ही सुखकर स्पर्श

है ! शिवकी कोपाग्नि द्वारा कन्दर्प तरु के भस्मीभूत होजाने पर क्या देवताओं ने अमृत की वर्षा करके पुनर्वार उसका अंकुर स्वरूप इस हाथ को उत्पन्न किया है ?

शकु०—(स्पर्श के सुख को अनुभव करके) आर्यपुत्र ! शीघ्रता कीजिये । शीघ्रता कीजिये ।

राजा—(आनन्द से आपही आप) अब मैं विश्वास का पात्र हुआ । रमणीगण अपने पति को ही 'आर्यपुत्र' कहकर सम्बोधन किया करती हैं । (प्रकट) सुन्दरी ! कमल का कंगन अच्छी प्रकार से नहीं पहराया जा सका, यदि तुम्हारी राजी हो, तो अच्छी तरह से पहरादूं ?

शकु०—(मधुर हँसी से) आपकी जैसी इच्छा ?

राजा—(छल से बिलम्ब करके) सुन्दरी ! देखो-कलामात्र अवशिष्ट चन्द्रमा गगन तल त्याग कर अपनी शोभा दिखाने के लिये तुम्हारे हाथ में कमल कंगन रूप से उपस्थित हुआ है । यह श्यामवर्ण मनोहर और कुण्डलाकार धर कर दोनों ओर ही एकत्र हुआ है ।

शकु०—आपके कमल रूपी चन्द्रमा को नहीं देखती-क्योंकि वायु-कम्पित कर्णोत्पल की रेणु द्वारा मेरे दोनों नेत्र कलुषित होगये ।

राजा—(हंसकर) तुम्हारे आज्ञा देने पर मुख की फूंक से साफ कर सकता हूँ ?

शकु०—इससे अनुग्रहीत हुई, किन्तु आप को वैसा विश्वास नहीं होता ।

राजा—नहीं, वह आशंका नहीं है । तुम्हारा यह नूतन सेवक सेवा के विषय में स्वामी की आज्ञा के सिवाय कोई काम नहीं करेगा ।

शकु०—अधिक आदर ही अविश्वास का कारण है ।

राजा—(आप ही आप) जब सेवा का ऐसा सुन्दर अवसर उपस्थित है, तब फिर उस अवसर को चूक जाना उचित नहीं है ।

(यह कह शकुन्तला की ठोढी पकड़ मुख उत्तोलन)

(शकुन्तला निवारण करने को उद्यत हुई)

राजा—मदिरेक्षणे ! अविनय में कुछ भय नहीं ।

(शकुन्तला ने कटाक्ष करके लज्जा से मुख झुका लिया) ।

राजा—(अंगुली से शकुन्तला का मुख उठाकर आप ही आप) अहो! प्यारी के सुन्दर होठों में कुछ भी क्षत (खरोंच) नहीं है, मुझको नितान्त ही तृषार्त्त देखकर यह मानों मनोहर भाव से स्फुरित होकर मुझको प्यास बुझाने की आज्ञा देते हैं ।

शकु०—आर्यपुत्र को मानों नेत्रों के निकटवर्त्ती कर्णोत्पल की रेणु दिखाई नहीं देती।

राजा—कर्णोत्पल के निकटवर्त्ती होने से दिखाई नहीं देता।

(यह कहकर मुख वायु द्वारा शुश्रूषा में प्रवृत्त हुआ)

शकु०—अब मेरी आँखें स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त हुई हैं, आर्य पुत्र ने मेरा उपकार किया। किन्तु मैं उसके बदले में कुछ उपकार न कर सकने पर अत्यन्त लज्जित हो रही हूँ।

राजा—सुन्दरी! और क्या उपकार करोगी, तुम्हारे मनोहर सुगन्धि-पूर्ण मुख कमल का जो मैंने आघ्राण किया है, यही मेरे पक्षमें पूरा उपकार हुआ है, क्योंकि कमल की गंध मिलने पर ही भौंरा सन्तुष्ट होजाता है।

शकु—(हंसकर) अथवा संतोष न होनेपर भौंरा क्याकर सकता है?

राजा—इस प्रकार कर सकता है (यह कह कर मुख के चूमने का उद्योग करना)

शकुन्तला का घूँघट काढ़ने की चेष्टा करना।

(नैपथ्य में) हे चकई! अपने संग चकवे से बात चीत न कर यह देख-रात हो आई।

शकु (सुन कर और सट पटा कर) आर्य पुत्र! पिता कण्व की धर्म भगिनी भगवती गौतमी मेरी यह सब घटना जानने के लिये इसी ओर को आती हैं, आप जरा इस वृक्ष शाखा की ओट में हो जाइये।

राजा—यही करता हूं।

(वृक्ष की ओट में होगया)

(पात्र हाथ में लिये गौतमी आई)

गौतमी—वत्से! तुम्हारे अंग के ताप को बढ़ा हुआ सुनकर मैं यहाँ आई हूं। लो यह शांति जल है। (शकुन्तला के अंग की ओर देख और उसको उठाकर) यहाँ क्या केवल देवता सहायनी हुई है?

शकु—अनसूया और प्रियम्बदा मालिनी नदी पर गई हैं।

गौतमी—(शकुन्तला के अंग पर शांत जल छिड़क कर) वत्से! दीर्घ जीवी होओ! अब क्या देह का ताप कुछ घटा है?

(यह कह कर शकुन्तला का अंग छुआ)

शकु—हाँ कुछ घटा है।

गौतमी—पुत्री! अब दिन छिपने को है, आ कुटी को चलें।

शकु—(कष्ट से उठकर मन ही मन) हृदय! तैंने आनन्द से आनन्द कर समय विताया है, अब उसका फल भोग (कुछ चलकर प्रकट)

हे लताकुञ्ज ! तुम मेरा संताप हरने वाली हो-पुनर्वार तुम्हारे इसी स्थान में उपभोग के लिये तुमको न्योता देती हूं (दोनों का प्रस्थान)

राजा—(पूर्व स्थान में आकर निश्वास त्याग कर) अहो ! कैसा आश्चर्य हैं-जो मनोरथ किया जाता है, उसकी सिद्धि में अनेक विघ्न होते हैं। प्यारी शकुन्तला के नयन कमल सुंदर रोमावली से विमण्डित हैं-उसने जब मुझे चुम्बन करने को मना किया और अँगुली द्वारा मनोहर मुखारविन्द ढक कर चुम्बन की आशंका से मुख कंधे की ओर को फिरा लिया-तब मैंने बड़े कष्टसे उघाड़कर उसको पकड़ा था-किंतु चुम्बन नहीं कर सका। अब क्या किया जाय ? जो हो-प्यारी के द्वारा भोगे हुए इस लता कुञ्ज में क्षणभर तक ठहरूं। (चारों ओर देख कर) यही तो चट्टान पर फूलों की सेज बिछ रही है। प्यारी के अंग द्वारा अब यह सेज कुछ मलगिज़ी सी होगई है, यही तो कमल का गहना खुल पड़ा था-यह सब देखकर प्रिया हीन इस वेतस-कुञ्ज से सहसा निकल नहीं सकता। (चिंता करके खेद से) उस प्रियतमा को पाकर भी वृथा समय नष्ट करके समस्त यत्न ही विफल कर लिये, इस लिये मुझको धिक्कार है। फिर यदि उस शोभामयी शकुन्तला के साथ निर्जन में मिलन हो, तो फिर वृथा समय नहीं खोऊँगा। क्योंकि इन्द्रियों का समस्त भोग विषय स्वभाव से ही दुष्प्राप्य है मेरा यह मूर्ख हृदय विघ्न समूह द्वारा क्लिष्ट होकर इस प्रकार प्रियतमा के साथ साक्षात् की अभिलाषा करता है। अब फिर एक बार ही धैर्य हीन होगया।

(नैपथ्य में) महाराज ! संध्या कालीन यज्ञ कार्य आरंभ करते ही प्रदीप्त अग्नि से प्रकाशमान यज्ञ वेदी के चारों ओर हवि छीन लेने का भय उत्पन्न कराती हुई राक्षसों की मेघ-तुल्य कपिलवर्ण वाली छाया (परछांई) अनेक मूर्त्तियों में चारों ओर विचरण करती हैं।

राजा—(सुनकर उद्यम सहित) हे तपस्वियों ! मत डरो २। मैं उपस्थित हूं।

(चला गया)

[तीसरा अंक पूर्ण हुआ]

———

चौथा अंक।

(अनसूया और प्रियम्बदा दोनों सखी फूल बीनती २ आईं)

अन०—प्रियम्वदा ! यद्यपि गन्धर्व-विधि से शकुन्तला का विवाह हुआ और पति भी समान ही मिला—इससे चित्त हर्षित हुआ, पर तो भी चिन्ता न मिटी।

प्रिय—कैसे ?

अन०—ऐसे कि आज वह राजर्षि तपस्वियों का यज्ञ पूर्ण कराय ऋषियों से विदा हो अपने नगर को गये हैं, वहाँ रनवास में पहुंचकर जानें उन्हें शकुन्तला की याद रहेगी या नहीं ? यह नहीं जानती।

प्रिय—सखि ! इस विषय में तुम विश्वास रक्खो, ऐसी आकृति अर्थात् ऐसे महात्मा पुरुष क्या कभी गुणहीन हो सकते हैं ? किन्तु अब चिन्ता यह है कि पिता कण्व तीर्थ यात्रा से आकर जब यह सब घटना (हाल) सुनेंगे, तब वे क्या समझेंगे—? नहीं कह सकती।

अन०—इस बात का तुम मुझ से पूछती हो (सन्देह करती हो) इसमें पिता कण्व की सम्मति है।

प्रिय०—तैंने कैसे समझा ?

अन०—पहिले उनका संकल्प था कि अनुरूप (योग्य) वर के ही हाथ में कन्या को समर्पण करेंगे। यदि दैव ने ही वह कार्य सम्पन्न कर दिया, तो गुरुजन विना प्रयास ही कृतार्थ हुए।

प्रिय—यह बात ठीक है (फूलों की छबरिया देखकर) सखि ! पूजा के निमित्त जो फूल बीने गये हैं, वे काफी होंगे।

अन०—शकुन्तला के सुहागदेव की भी तो पूजा करनी है, इसलिये थोड़े फूल और बीनलें।

प्रिय०—हाँ उचित है (दोनों फूल बीनने लगीं)

(नैपथ्य में) यह मैं आ पहुंचा हूं।

अन०—(कान लगाकर) सखि ! जान पड़ता है कोई अतिथि आया होगा या कदाचित् दरवाजे पर कोई अतिथि आया है।

प्रिय०—क्या है शकुन्तला तो पर्णकुटी में है ही।

अन०—है तो सही, किन्तु इस समय उसके हृदय में हृदय नहीं है अर्थात् उसका चित्त शान्त नहीं है—इसलिये उससे किसी काम का होना असंभव है। हमने जो फूल बीने हैं, उनसे ही काम पूरा होजायगा।

(पुनर्वार नेपथ्य में) अहो! कैसा घमण्ड है! मैं अतिथि आया, मुझको तुच्छ समझकर अपमानित किया। एकाग्रचित्त से तैंने जिस व्यक्ति की चिन्ता करते करते अतिथि रूप से आये हुए इस तपस्वी का सन्मान नहीं किया, मदिरा पान करने से मतवाला पुरुष जिस प्रकार पहिले कोई बात कहकर फिर जरा हो देर में उस बात को भूल जाता है, और याद नहीं कर सकता, तू भी उसी प्रकार उस प्रिय व्यक्ति को भली भांति याद दिला देने पर भी उसको किसी प्रकार भी तेरी याद नहीं आवेगी।

दोनों—(सुनकर दुःखित भाव से स्थित हुईं)

प्रिय०—हाय! धिक् धिक्! मैंने मनमें जिस बात की चिन्ता की थी, वही हुई। वह हृदय होन प्रियसखी शकुन्तला जान पड़ता है, किसी सन्मान-योग्य व्यक्ति के निकट अपराधिनी हुई?

अन०—(आगे देखकर) हाय! किसी ऐसे वैसे के निकट अपराध नहीं किया, वरन जो स्वभाव से ही क्रोधी हैं, वे दुर्वासा-मुनि शाप देकर डगमगाते पैरों से शीघ्र लौटे जाते हैं।

प्रिय०—इनको और अग्नि को छोड़कर और किसमें भस्म करने की सामर्थ है? तू जल्दी जाकर उनके पैरों में गिर और लौटा कर ला-तब तक मैं उनके लिये अर्घ्य संजोती हूं।

अन०—बहुत अच्छा। (अनसूया गई)

प्रिय०—(फूल तोड़ते तोड़ते बार बार पैरों का डगमगाना) हाय! घबराहट के मारे चाल डिगमिगी होने के कारण मेरे हाथ से फूलों को टोकरी गिरी जाती है।

(फिर फूल तोड़ने लगी)

(अनसूया आई)

अन०—सखी! वे तो मानो कोप की साक्षात् मूर्त्ति हैं। किसी अनुनय विनय पर ध्यान नहीं दिया किन्तु मैंने उनकी कुछेक दया प्राप्त की है।

प्रिय०—यही अच्छा हुआ। बता तो सही-तैंने किस प्रकार उनको प्रसन्न किया?

अन०—जब वे किसी प्रकार भी लौटने को राजी न हुए-तब मैंने उनके दोनोंपैरों में लोटकर कहा-'प्रभो! हमारी प्रियसखी बालिका है, वह आपके तपोबल को नहीं जानती। अतएव आपको यह उसका पहला

अपराध क्षमा कर देना उचित है।

प्रिय०—तब फिर ?

अन०—फिर उन्होंने कहा—मेरी बात कभी मिथ्या नहीं हो सकती-किन्तु कोई सुधि दिलाने वाला गहना (अंगूठी) देख सकने पर यह शाप छूट जायगा। यह कहते ही वे अन्तर्धान होगये।

प्रिय०—तो अभी आश्वास की आशा है, क्योंकि जब वह राजर्षि चलने लगे—तो अपनी नाम खुदी अंगूठी उतार कर सुध दिलाने के लिये शकुन्तला को पहरा दी थी—इससे शाप निवृत्ति का सहज उपाय शकुन्तला पर है।

अन०—चलो सखो ! अब शकुन्तला के निमित्त दैवकार्य सम्पन्न करना चाहिये।

(दोनों का इधर उधर देखना)

प्रिय०—अनसूया ! देख देख ! प्यारी सखी शकुन्तला बाँये हाथ पर कपोल धरे चित्र लिखित एकाग्रमन से चिन्ता में डूब रही है, अतएव वह जब अपने को ही नहीं जान सकती—तब फिर अतिथि को तो जान ही कैसे सकती है ?

अन०—सखि ! यह शाप की घटना हम तुम तक ही रहे स्वभाव से कोमल सखी की इससे रक्षा करनी चाहिये।

प्रिय०—ऐसा कौन होगा जो गरम जल से मल्लिका की लहलही लता को सींचेगा ?

(दोनों का जाना)

(निद्रा से उठे कण्व के चेलों का आना)

चेला—(आप ही आप) भगवान् कण्व ने तीर्थ यात्रा से लौटकर प्रभात कालीन होम के समय को निर्द्धारण करने के समय मुझे आज्ञा दी है। अतएव रात्रि के कितने अंश शेष हैं—बाहर निकल कर यह एक बार देखना चाहिये।

(घूमकर और दर्शन करके आनन्द से) रात प्रायःबीत चुकी है, क्योंकि एक ओर तो औषधिनाथ चन्द्रमा अस्ताचल के शिखर को जाता है, दूसरी ओर अरुण सारथीको आगे करके सूर्य देव उदय होते हैं। इस भाव से एक साथ चन्द्र सूर्य रूप दोनों तेज की आपदा और अभ्युदय द्वारा इस जगत् के जीवों को मानों सुख दुःखात्मक अवस्था विशेषमें नियमित किया जाता है। अधिकतर सब ही जानते हैं कि चिरकाल तक आदमी

की एक सी अवस्था नहीं रहती। फिर चन्द्रमा जब नेत्रों से ओट हुए, तब कुमुदिनी की शोभा दर्शनीय न होकर स्मरणीय हो उठती है—सुतरां इस समय मलीन होने से अब नेत्रों को आनन्द दायक नहीं होती। अतएव इस के द्वारा स्पष्ट समझा जाता है कि प्रियजन के विदेश वास का दुःख मनुष्य के पक्ष में अत्यन्त ही असह्य है और इस प्रातः सन्ध्या ने पके हुए कदली फल के ऊपर पड़े हुए सफेद बर्फ को लाल रंगका कर डाला है। मोर नींद लेचुकने पर कुशों की बनी पर्णकुटीके ऊपरी भागसे पृथ्वीतल में उतरते हैं और मृगगण अपने अपने खुर क्षुण्ण वेदि प्रान्तसे उठकर निज निज अंग आगे और पीछे पसार कर खड़े होते हैं। जिसने पर्वत राज सुमेरु अथवा सन्मान योग्यव्यक्ति के मस्तक में किरण और चरण विन्यास पूर्वक त्रिविक्रम विष्णु के विचले धाम गगनतल को आक्रमण किया है—वह चन्द्रमा अब अल्प किरण मालाके सहित आकाशतल से गिरता है। वस्तुतः प्रधान होने पर भी जो व्यक्ति ऊँचे मनुष्योंके शिर चढ़ता है, उसका पतन इसी प्रकार होता है।

(पटको उठाकर अनसूया आती है)

अन०—राजाने अब तक प्रियसखी की कोई बात नहीं मानी। विशेष कर उन्होंने शकुन्तला के प्रति जैसा नीच वर्ताव किया है, इन्द्रिय-सुखसे विमुख मनुष्य के पक्ष में ऐसा वर्त्ताव बिल्कुल ही असँभव है।

चेला—तो अब गुरु जी से जाकर कहना चाहिये कि—होमका समय होगया। (गया)

अन०—(आप ही आप) रात्रि प्रभात होगई अब शीघ्र सेज छोड़कर उठूं। अथवा इतनी जल्दी उठकर ही क्या करूँगी ? प्रातः काल की कर्त्तव्य क्रिया सम्पन्न करने पर मेरे हाथ पैर नहीं
समय निर्दयी काम की अभिलाषा पूरी हुई, क्योंकि उसने ही इस झूँठी प्रतिज्ञा करने वाले मनुष्य के ऊपर (हमारी सखी की) प्रेम-भरी मति उत्पन्न करदो। (याद करके) अथवा उन राजर्षि का ही क्या दोष है? महातपस्वी-दुर्वासाजो का शाप ही इस विषय में बलवान् है। अन्यथा उन राजर्षि ने अकेले में वैसा परामर्श करके इतने दिनों तक कोई खबर ही क्यों नहीं भेजी ? (सोचकर) इस काम को जाने के लिये किस से प्रार्थना की जाय ? तप का क्लेश सहने वाले तपस्वी के अतिरिक्त इस कार्य में और कोई भी नहीं जा सकता। यदि सुध दिलाने वाली अँगूठी लेकर न जाय, तो हम अपराधिन होंगी। दूसरे किसी से भी अँगूठी

लेकर जाने को नहीं कह सकती। पिता कण्व अभी तीर्थ से लौट कर आये हैं, उनसे किस प्रकार कहूँगी कि दुष्यन्त राजा ने शकुन्तला का पाणि-ग्रहण किया है और शकुन्तला में गर्भ के लक्षण दिखाई देते हैं। तब फिर अब इस विषय में क्या करूँ ?

(प्रियम्बदा आई)

प्रिय०—अनसूया ! शकुन्तला के पतिगृह में जाने का कार्य करें। शीघ्रता करो ! शीघ्रता करो !

अन०—(आश्चर्य से) सखी ! तू क्या कहती है ?

प्रिय०—सखो ! सुन मैं शकुंतला के पास यह पूछने को गई थी कि तू रात में सोई तो सुख से ?

अन०—तब फिर ?

प्रिय०—शकुन्तला लाज से शिर झुकाये बैठी थी कि पिता कण्व ने उसको स्नेह पूर्वक आलिंगन करके स्वयं प्रसन्नता पूर्वक कहा—"पुत्रि भाग्य से धुएँ द्वारा व्याकुल दृष्टि वाले यजमान की आहुति जिस प्रकार अग्नि में पड़ती है,उसी प्रकार तुम भी भाग्य से उपयुक्त पात्र में ही पड़ी हो। श्रेष्ठ शिष्य को सुविद्या देने से वह जैसे शोचनीय नहीं होती, तुम भी वैसे ही मेरी शोचनीय नहीं हुई हो वरना आनन्द का कारण हुई हो तो आज ही तुम को शिष्यों के संग पति के समीप भेज दूंगा" ।

अन०—पिता कण्व से यह समाचार किसने कहा ?

प्रिय०—सुना है-पिता कण्व जब अग्निहोत्र गृह में प्रविष्ट होने लगे, तब आकाश वाणी ने संस्कृत वाक्य से उनको ज्ञात कराया था ।

अन०—(आश्चर्य से) किस प्रकार ?

प्रिय०—सुन ! (संस्कृत वाक्य से)

प्रगट होत शशि गर्भ से जिमी पावक भगवन्त ।
प्रजा हेत तिमी तव सुता धरत तेज दुष्यन्त ॥

अन०—(प्रियम्वदा को आलिंगन करके) सखि ! यह दुःख की बात तो अवश्य है, किन्तु आज ही जो प्रियसखी को भेजा जारहा है-इस से मुझे दुःख के साथ उत्कण्ठा हो रही है ।

प्रिय०—सखि ! हम किसी प्रकार से दुःख को सह लेंगीं, किन्तु हमारी दुःखिनी प्रियसखी को इस समय सुख मिले ।

अन०—इसी से मैंने इस आम की शाखा में लटकते हुए नारियल में नितनई नागकेशर की माला रक्खी थी। तू इसे उतार कर कमल के पत्ते

मैं रख-तब तक मैं भी गोरोचन-तीर्थ की मट्टी दूर्वा-किसलय आदि मांगलिक पदार्थों से गात्रानुलेपन (उबटन) बनाऊँ।

प्रिय०—यही कर।

[अनसूया चली गई]

(नैपथ्य में)–गौतमी! शाङ्‌र्गरव–शारद्वत आदि प्रधान प्रधान शिष्यों से कहो कि तुम शकुन्तला को लेकर जाने के लिये प्रस्तुत होजाओ।

प्रिय०—अनसूया! शीघ्रता कर! शीघ्रता कर!! हस्तिनापुर में जो ऋषि जायँगे, वे ही यह बात कहते हैं।

(पवित्र गोरोचन आदि हाथ में लिये अनसूया आई)

अन०—सखि! आओ-हम चलें।

[इधर उधर फिरने लगीं]

प्रिय०—(चारों ओर देख कर) यह देखो-सूर्योदय होते ही शिर से स्नान किये शकुन्तला बैठी है। तपस्विनी तृण-धान्य-चावल स्वस्ति-वाचन द्रव्य हाथ में लिये उसके प्रति आदर दिखाती हुई अशीष दे रही हैं। इस लिये चलो हम भी वहाँ चलें।

(परिजनों के सहित यथा निर्दिष्ट कार्य में नियुक्त शकुन्तला का प्रवेश)

शकु०—भगवती को प्रणाम करती हूं [भूमि में गिर कर प्रणाम करना]

गौतमी—वत्से! पति के बहुमान सूचक देवी शब्द को प्राप्त होओ।

दूसरी - तुम वीर प्रसविनी होओ! अर्थात् वीर माता होओ।

तीसरी—वत्से! तुम पति से बहुत सम्मान पाओ।

(इसी प्रकार अशीष दे गौतमी के सिवाय सब गई)

दोनों सखी—(पास जाकर) सखी! तुम्हारा मंगल स्नान होगया।

शकु० –प्यारी सखियों का मंगल तो है? यहाँ बैठो।

दोनों सखी—(बैठकर) सीधी तरह से बैठो, मैं तुम्हारे अँग में मांगलिक उबटन लगाऊँगी।

शकु०—यही करो-यही आदर का कार्य भी है, क्योंकि फिर जो प्रिय-सखी मेरे अँगों का सिंगार करेंगी-यह मेरे भाग्य में दुर्लभ है [अनुत्याग]

दोनों सखी—सखी! ऐसे मंगल कार्य के समय तुम को आँसू नहीं गिराने चाहियें।

(दोनों का आँसू बहाने बहाते सिंगार करना)

प्रिय०—सखी! तेरी यह सुन्दरता तो अच्छे २ अलंकारों के योग्य है परन्तु तपोवन वनके वल्कलादि अलंकारों द्वारा तो केवल रूप बिगड़ता

है अर्थात् तेरा रूप जैसा अतुलनीय है-उससे यह अलंकार उसके योग्य नहीं हैं ।

(अलंकार हाथ में लिये मुनिकुमार हारीत का प्रवेश)

हारीत—आयुष्मति ! आप यह सब गहने पहरिये ।

गौतमी—(अलंकार देखकर आश्चर्य से) हारीत ! वत्स ! यह सब गहने कहां से मिले ?

हारीत—यह पिता कण्व के प्रभाव से मिले हैं ।

गौतमी—परम सिद्ध तपस्वि-श्रेष्ठ के मन से क्या इन सब गहनों की उत्पत्ति हुई है ?

हारीत—नहीं सुनिये ! भगवान कण्व ने हमको आज्ञा दी कि शकुन्तला के लिये वनस्पतियों से फूल लेआओ । इसके पीछे किसी वृक्षने चन्द्र तुल्य पाण्डुवर्ण-मंगल कार्य में प्रशस्त रेशमी वस्त्रादि दिये, किसी वृक्ष ने पैरों को चित्रित करने लिये महावर टपका दिया । तदनन्तर वनके देवताओं ने अन्यान्य वृक्षों से पल्लव की समान चमकदार मणिबन्ध (कलाई) उठा कर कितने हो वृक्षों से यह सब गहने दिये ।

प्रिय०—(शकुन्तला की ओर देखकर) प्रिय सखि! कोटरोत्पन्न मधुकरी पद्मके मधु की ही इच्छा करती है ।

गौतमी—वत्से ! वन के देवताओं का ऐसा अनुग्रह देखकर जान पड़ता है कि तुम पति के घर जाकर राजलक्ष्मी को भोगोगी ।

शकु०—लजागई ।

हारीत—पूजनीय महर्षि कण्व मालिनी नदी पर आये हैं, मैं उनके पास जाकर वृक्षादि कृत इस उपकार की बात निवेदन करदूं ।

[हारीत चला गया]

अन०—सखि ! मैंने कभी गहने नहीं देखे, तब फिर तुम्हारे अंग में उनको कैसे पहराऊँ ? (क्षणभर सोचकर और शकुन्तला का अंग प्रत्यंग देखकर) तब इस समय एक प्रकार मन से ही ठीक करके तुम्हारे अंग प्रत्यंग में यह सब गहने पहराऊँ ?

शकु०—तेरी चतुराई को मैं खूब जानती हूं ।

दोनों सखी—(दोनों ने शकुन्तला के अंग में गहने सजाये)

(स्नान करके कण्व का प्रवेश)

कण्व—(सोचकर) अब शकुन्तला पति के घर को जायगी, इसलिये मेरे हृदय में बड़ी ही उत्कण्ठा (दुःख) उत्पन्न हुई है । हृदय गद्-गद्

होने से कंठ भी रुँधा जाता है, दोनों नेत्र चिन्ता के मारे पथरासे गये हैं। मैं वनवासी ऋषि हूं, स्नेह के कारण जब मुझ में ही इतनी व्याकुलता उत्पन्न होगई है, तब फिर गृहस्थी लोगों को कन्या के नये वियोग में जो कितना कष्ट होना होगा, वह मैं नहीं जानता।

दोनों सखी—तुमको गहना पहराना समाप्त होचुका, अब दोनों रेशमी वस्त्र पहिरो।

(शकुन्तला उठकर रेशमी वस्त्र का जोड़ा पहरती है)

गौतमी—बेटी! यह तेरे गुरु (पिता कण्व) उपस्थित हैं। इनकी दोनों आँखों से आनन्द के आँसू टपक रहे हैं, यह मानों इस भाँति नयनों के द्वारा ही तुझको आलिंगन करते हैं, अतएव यथोचित आदर मान से तू इनको प्रणाम कर।

शकु०—(लज्जा पूर्वक) पिता! प्रणाम करती हूँ।

कण्व—बेटी! शर्मिष्ठा जैसे राजा ययाति को प्यारी हुई थी, तुम भी अपने पति को वैसी ही प्यारी होओ, और पुरु की समान राजचक्रवर्ती के लक्षणों से युक्त एक पुत्र प्राप्त करो।

गौतमी—भाई! यह तो वर है-अशीष नहीं।

कण्व—वत्से! अग्नि में तत्काल आहुति दी गई है-तुम इस ओर से होकर अग्निदेव की परिक्रमा करलो।

(सब जनीं परिक्रमा करती हैं)

गौतमी—बेटी! जो अग्नि वेदी के सामने और पार्श्व के यथोचित स्थान में रक्षित है और जो अग्नि काठ के ढेर को जलाती है, वह यज्ञकी अग्नि देवोद्देश में आहुत वस्तु की गंध द्वारा पाप दूर करके तुमको पवित्र करे।

(शकुन्तला अग्नि की परिक्रमा करने लगी)

कण्व—बेटी! अब जाओ [दूसरी तरफ देखकर] शार्ङ्गरव और शारद्वत कहाँ हैं?

(दोनों चेले आगये)

दोनों चेले—मुनिवर! लो हम यह आगये।

कण्व-वत्सद्वय! तुम अपनी बहन को मार्ग दिखाने के लिये संग जाओ।

दोनों चेले—आप इधर आइये।

(यह कहकर सब का चलना)

कण्व—हे वनके देवता और आश्रम के वृक्षों! तुममें विनाजल

सिंचन किये जो शकुन्तला पहले जल पीने तक की इच्छा नहीं करती थी, गहनों से प्रेम करने पर भी स्नेहवश जो तुम्हारा एक पत्ता तक नहीं तोड़ती थी और तुममें फूल खिलने पर जिसको परमानन्द होता था, वही शकुन्तला आज स्वामी के घरको जारही है। अतएव तुम सब इस विषय में आज्ञा दो।

(उसी समय आकाश मार्ग में शब्द हुआ)

इस शकुन्तला के जाने का मार्ग कमलिनी दलसे हरित वर्ण हो। सरोवरों द्वारा मनोहर हो। छाया प्रधान तरुराजि द्वारा सूर्य की किरणें शान्त हों, वायु-चालित पद्म-पराग रेणु युक्त अनुकूल और मन्द मन्द-गामी होकर मंगल दायक हो।

(सबने विस्मित होकर उधर ही कान दिया)

शार्ङ्ग०—(कोकिला का कूजन सुनकर) भगवन ! यह वनवासी बन्धु वृक्ष शकुन्तला के जाने से रोदन करते हैं, क्योंकि कोकिला के कूजन-मिसवे आपकी बात का उत्तर देते हैं।

गौतमी—बेटी ! पिताको समान स्नेह शील वनके देवताओंने तुम्हारे जाने की आज्ञा देदी। अतएव तुम भगवती वन देवियों को प्रणाम करो।

शकु०—(प्रणाम के पीछे हौले से) प्रियम्वदा ! यद्यपि मैं आर्यपुत्र को देखने के लिये उत्कण्ठित होरही हूँ। किंतु तपोवन को छोड़ने में मेरे दोनों पैर किसी प्रकार आगे नहीं उठते।

प्रिय०—सखि ! तुम जो केवल आश्रम के वियोग से ही व्याकुल हुई ऐसा मत समझना वरन अपने विरह में ज़रा आश्रम की अवस्था भी तो देख। यह हिरनियें कुशों का ग्रास मुख से उगल रही हैं, मोरनी अब पूर्व की समान आनन्द में भरकर नहीं नाचतीं और लताएँ परिणत पत्तो गिराने के बहाने मानों तेरे विरह में आँसू डाल रही हैं।

शकु०—(याद करके) अपनी लता भगिनी माधवी के साथ बात चीत करूँगी।

कण्व—बेटी ! उसके ऊपर तो तेरा असीम प्रेम भाव है, उसको मैं खूब जानता हूं और यह देख वह माधवी लता तेरी दाहिनी ओर है।

शकु०—(लता समीप जाकर आलिंगन पूर्वक) बहन लतिके ! अपनी शाखा रूपी बाहु द्वारा मुझको आलिंगन करो। आज मैं तुम्हारे पास से अधिक दूर होने को चली हूं। (कण्व की ओर देखकर) तात ! आप मुझको जिस प्रकार स्नेह के नेत्रों से देखते हैं, इनके प्रति भी उसी प्रकार स्नेह दिखावें।

कण्व—बेटी ! मैंने योग्यवर के साथ तेरा विवाह करने का पहले ही संकल्प किया था, किन्तु तैंने अपने गुण से ही अपनी समान पति को पा लिया। अब मैं तेरी इच्छानुसार इस मनोहर आम्र वृक्ष के साथ माधवी लता का विवाह कर दूंगा।

शकु०—(सखियों के पास जाकर) मैं तुम दोनोंके हाथमें इस माधवी लता को सौंपती हूं।

दोनों सखी—प्यारी शकुन्तला! हम दोनों को किसके हाथ में सौंप चली ?

[आँसू डाल दिये]

कण्व—अनसूया ! प्रियम्वदा। इस समय तुमको रोना उचित नहीं हैं-वरन अब तो शकुन्तला को धीर बँधाना चाहिये।

(यह कह कर सब जाते हैं)

शकु०—(देखकर) पिता ! इस पर्णकुटी की बगल में गर्भ के भार से अलसगति वाली जो हिरणी विचरण करती हैं--उसके निर्विघ्न बच्चा जनने पर किसी वार्त्तावह (हलकारे) के द्वारा मुझको समाचार देना। यह बात भूल मत जाना।

कण्व—वत्से ! मैं कभी नहीं भूलूँगा।

शकु०—(इशारे से) अरे ! यह कौन है ?मेरे दोनों पैरों में आघात करके बारम्बार वस्त्रके आँचल को लिपटता है (मुख फिरा कर देखना)

कण्व –बेटी कुशके काँटे से जिसका मुख चिरजाने पर तू व्रणहारक हिंगोट का तेल उसके मुखमें लगाती थी और जिसे समे के चावलों की किनकी खिला खिलाकर बड़ा किया; सो अब वही तेरा पाला-पोसा पुत्र मृग छौना तेरे पैरों को रोकता है।

शकु०—वत्स! जोकि मैं तेरा संग छोड़ रही हूँ,इस कारण क्या तू मेरा अनुगामी होता है ? अर्थात् मेरे साथ चलना चाहता है ? तेरी माता तुझे जनकर मर गई। तब मैंने जिस प्रकार तुझको लालित-पालित और बड़ा किया है, वैसे ही अब तुझको छोड़ कर जारही हूं। तेरी चिन्ता (देख-भाल) अब से यह मेरे पिता करेंगे। इसलिये अब तू यहाँ से लौट जा।

(रोती रोती चलती है)

कण्व—बेटी संविषमत-मार्ग देख देख कर चल ! तेरे पक्ष्म-भूषित दोनों नेत्रों द्वारा लगातार आँसू गिरने से तेरी दृष्टि रुक गई है। अतएव धीरज से आँसुओं की झड़ी को रोक। नहीं तो बिना देख भाल कर चलने से ऊँचे नीचे मार्ग में पैरों का फिसल जाना संभव है।

दोनों चेले—भगवन्! शास्त्र में यही लिखा है कि जलाशय के समीप तक अपने प्रियजनों को पहुँचाना चाहिये। तब फिर आप तो इस सरोवर के तटतक आचुके। अतएव जो आज्ञा (संदेशा) देनी हो, वह बतलाकर अब आप लौट जाइये।

कण्व—तो आओ! कुछ देर इस बड़ के पेड़की छायामें बैठकर विश्राम लें [सबका बैठना] उन सन्मान-योग्य महाराज दुष्यन्त के निकट कैसा संदेशा भेजा जाय? [सोचने लगे]

अन०—सखि! इस तपोवन में सचेतन ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है कि जो तेरे विरह से कातर न हुआ हो! यह देख-चकवा कमलिनी पत्रमें छिपा बैठा है, उसकी प्यारी चकवी कुछ पूछती है, किन्तु चकवा उसकी बात का उत्तर न देकर मुखमें कमल दवाये तेरी ओर को ही देख रहा है।

कण्व—पुत्र शार्ङ्गरव! तुम मेरे कहनेके अनुसार शकुन्तला को आगे करके राजा दुष्यन्त से यह बात कहना।

शार्ङ्ग०—आज्ञा दीजिये।

कण्व—तपस्याचरण ही हमारा एक मात्र धन है। आपका वंश भी ऊँचा है और इस शकुन्तला ने अपने किसी स्वजन से बिना ही पूछे गछे आपके ऊपर प्रणय बन्धन किया है, इन सब बातों को भी भली भाँति विचार कर उसको अन्यान्य स्त्रियों में समदृष्टि से देखना। इसकी अपेक्षा अधिकतर मर्यादा लाभ करना भाग्य के आधीन है, रमणियों के आत्मीय जन उसके प्रार्थी नहीं हैं।

शार्ङ्ग०—आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हूँ।

कण्व—(शकुन्तला की ओर देखकर) बेटी! अब तुझको भी कुछ उपदेश देना उचित है। हम सत्य ही वनवासी हैं, किंतु लौकिक व्यवहार को भली भाँति जानते हैं।

शार्ङ्ग०—भगवन्! बुद्धिमान् पुरुषों से कोई बात छिपी नहीं रहती।

कण्व—शकुन्तला! तू यहाँ से पति के घर जाकर (सास ससुर स्वामी आदि) गुरु जनों की सेवा करना। सौतों से प्रियसखी के समान वर्ताव करना। यदि पति कभी तेरी भर्त्सना करे-तो तू क्रोध करके उसके प्रतिकूल काम मत करना और पति के उपभोग के प्रति उत्साह हीन होकर दासियों के ऊपर दया का भाव दिखाना। इस प्रकार का आचरण करने पर ही रमणी गृहिणी पद वाच्य होती है अर्थात् भार्या कहलाती है। जो नारी इसके विपरीत आचरण करती है; वह कुल में क्लेश उत्पन्न करती है। इस विषय में गौतमी की क्या सम्मति है?

गौतमी—बहुओं को ऐसा ही उपदेश देना उचित है। बेटी! इस उपदेश को भूलना मत। हृदय में भरे रहना।

कण्व—पुत्रि! मुझ से और सखियों से आलिंगन करो।

शकु०—तात! क्या यहाँ से ही सखियाँ लौट जायँगी?

कण्व—बेटी! यह भी विवाह के योग्य हो गईं हैं। इस लिये तुम्हारे संग इन का वहाँ जाना ठीक नहीं है। गौतमी तुम्हारे साथ जायगी।

शकु०—(पिता से मिल कर) अब मैं पिता की गोदी से न्यारी होकर मलय पर्वत से उखाड़ी हुई चन्दन लता की समान देशान्तर में कैसे प्राण धारण करूँगी?

कण्व—बेटी! इतनी व्याकुल क्यों होती है? श्रेष्ठ वंशोत्पन्न स्वामी के प्रशंसनीय गृहिणी पद में अधिष्ठित होकर असीम ऐश्वर्य द्वारा गुरुतर अनगिन्त कामों में सदा लगी रहने पर पूर्व दिशा जैसे सूर्य को उत्पन्न करती है, उसी प्रकार वंश को पवित्र करने वाले महातेज सम्पन्न अतुलनीय पुत्र उत्पन्न करने के पीछे तू हमारे विरह का दुःख भूल जायगी।

शकु०—(पिता के दोनों पैरों में गिर कर) तात! प्रणाम करती हूं।

कण्व—वत्से! मेरे मन की जो बासना है तुम्हारी वही पूरी हो।

शकु०—(दोनों सखियों के पास जाकर) आओ तुम दोनों जनीं मुझ से एक साथ ही मिल लो।

दोनों सखी—सहचरी! यदि वे राजर्षि तुझे नहीं पहचान सकें तो उन का नाम खुदी यह अंगूठी उनको दिखा देना।

शकु०—सखियों तुम्हारी इस शिक्षा से तो मेरा हृदय काँपा जाता है।

दोनों सखी—प्यारी! डर की कोई बात नहीं। किंतु जहाँ स्नेह होता है—वहाँ आशंका भी होती है।

शार्ङ्ग०—भगवन्! अब दिन पहर से अधिक बीत गया-इस को शीघ्रता करने की आज्ञा दीजिये।

शकु०—(फिर पिता से मिल कर और आश्रम की ओर देख कर) पिता! अब कब इस आश्रम में आऊँगी?

कण्व—वत्से! अब तू बहुत दिनों तक इस दिगन्त प्रसारिणी पृथ्वी की सपत्नी (सौत) बन कर रह। फिर एक मात्र अधीश्वर पुत्र उत्पन्न करने पर उस पुत्र के हाथ में राज्य का भार सौंप कर पति समेत मुक्ति

की कामना से फिर यहाँ आकर तपोवन को सुशोभित करेगी ।

गौतमी—बेटी ! तेरे जाने का समय बीता जाता है । तू स्वयं ही इनसे लौट जाने को कह । व्यर्थ विलम्ब होने पर भी यह नहीं लौटेंगे, सुतरां तू लौटादे ।

कण्व—वत्से ! मुझ को तपस्या में प्रवृत्त होना पड़ेगा-इस कारण मैं अब देर नहीं कर सकता ।

शकु०—तात ! तपस्या में निरत रहने पर ही आप की उत्कंठा दूर होगी । किन्तु मैं निरन्तर उत्कण्ठा के वशीभूत रही ।

कण्व—बेटी ! तुम्हारी बात सुनकर मैं कुछ भी स्थिर नहीं कर सकता मानों मैं जड़की नाईं होगया हूं । (कुछ देर पीछे लम्बा श्वाँस लेकर) वत्से ! तू पहले पर्णकुटी के दरवाजे पर जो नीबार बोती थी, उसके अंकुर निकल आये हैं । उनको देख कर मेरा शोक और भी घनीभूत हो बढ़ता जाता है । अतएव अब जा । मार्ग में तेरा कल्याण हो ।

(शकुन्तला-गौतमी--शार्ङ्गरव और शारद्वत का प्रस्थान)

दोनों सखी—(क्षण भर चिंता करके) हाधिक । हाधिक् ! शकुन्तला वन की ओट में छिप गई । हाय सखी ! अब क्या फिर हमारे सुख के वे दिन लौटेंगे ?

कण्व—(श्वाँस छोड़ कर) अनसूया ! प्रियम्बदा । तुम्हारी सखी तो चली गई । अब शोक को रोक कर मेरे पीछे पीछे चली आओ ।

दोनों सखी—पिता ! हम शकुंतला शून्य कुटी में किस प्रकार प्रवेश करेंगी ?

कण्व—स्नेह वृत्ति की रीति ही यह है (सानन्द घूम कर) शकुन्तला को स्वामीके घर भेजकर अब मैं निश्चिंत होगया । क्योंकि कन्या पराथी धरोहर रूपी धन के तुल्य है । वह धन धन के स्वामी को लौटा देने से जैसा आनंद बोध होता है, शकुंतला को स्वामी के घर भेज कर आज मुझको उसी प्रकार आनंद मालूम हो रहा है । अंतरात्मा पवित्र हो रहा है ।

(सब गये)

(इति चतुर्थ अंक)

पांचवां अंक।

कञ्चुकी का प्रवेश।

कञ्चुकी—(विस्मय और खेद से) अहो! मैं बुढापे की कैसी दशा में पहुंच गया हूं। रनवास की रखवाली करना ही मेरा काम है। राजा के रनवास में एक बेंत का डण्डा लेकर मुझको खड़ा रहना पड़ता है। बहुत दिन बीत गये। अब जाने आने में मेरे पैर डग मगाते हैं, इसलिये वह बेंत का डण्डा ही वर्तमान में मेरा सहारा होरहाहै। अब अन्तःपुरमें बैठे हुए राजा के पास जाकर अपने कर्त्तव्य और कालक्षेप के अयोग्य सब बातों को निवेदन करूं। (कुछ दूर जाने पर) हां समझा, कण्व-शिष्य तपस्वियों ने राजा के दर्शन करने की इच्छा की है। कैसा आश्चर्य है! बुझने वाले दीपक की लोय जिस प्रकार अकस्मात प्रदीप्त (प्रकाशित) हो उठती है और फिर पलभर में अन्धकार से आच्छन्न होजाती है, बूढे आदमी की बुद्धि भी वैसी ही होती है। (मैं सभी बातें भूल गया था) (चलकर और देखकर) यही तो महाराज हैं, यूथ संचालन में थककर धूप के ताप से संतप्त हाथी जिस प्रकार शीतल गुफा में बैठता है, यह भी उसी प्रकार पुत्र की समान प्रजा का शासन और राज्य का कार्य देखते हुए थकावट होने से निर्जन (एकान्त) में बैठे हैं। सत्य ही राजा के पक्ष में धर्म कर्म लंघन करने योग्य नहीं हैं। किन्तु तो भी मेरे मन में यह आशंका उत्पन्न हुई है कि महाराज क्षण भर को विचारासन से उठे हैं, तब फिर इसी क्षण उनको कण्व के चेलों का आगमन-संवाद कैसे दूं? अथवा लोकपालों को विश्राम ही कहां मिलता है? क्योंकि सूर्यदेव केवल एक बार मात्र रथ में घोड़े जोतकर निरन्तर भ्रमण करते हैं, हवा दिन रात चलती है, शेषनाग निरन्तर पृथ्वी के बोझ को उठाते हैं, मुहूर्त्त भर के लिये भी विश्राम नहीं। प्रजा के कमाये धन का छठा अंश भोगने वाला राजा भी इसी प्रकार अविश्राम रूपी धर्म में नियुक्त होरहा है।

(यह कहकर चलना)

कितने ही परिजनों समेत राजा और विदूषक आया।

राजा—(खेद से) सब ही पुरुष अभिलाषित सम्पत्ति मिल जाने से सुखी होते हैं, किन्तु राजाओं को राज्य का मिलना और उनकी प्रयोजन

सिद्धि प्रतिक्षण क्लेशदायक ही होती है। क्योंकि राजाओं की जो प्रतिष्ठा (सुख्याति) होती है, वह केवल विचार के सम्बन्ध में मनुष्य क्या क्या कहते हैं, इस उत्सुकता को ही निवारण करती है। राज्य के पालन करने की वृत्ति भी केवल क्लेशकारक ही है। अपने हाथ में आतपत्र का दण्डा रखने से जिस प्रकार वह परिश्रम का ही कारण होता है, राज्य के शासन करने की वृत्ति भी वैसी ही है। कष्ट की तुलना में इससे वैसी शांति नहीं मिलती।

नैपथ्य में दो वैतालिक—महाराज की जय हो! जय हो।

पहला वैतालिक—जैसे वृक्ष असह्य ताप अनुभव करके भी छाया दान द्वारा असीम क्लेश सहते हैं, वैसेही आप अपने सुखमें निर्मोह होकर प्रजा की सुख स्वछन्दता के लिये प्रतिदिन कष्ट स्वीकार करते हैं. अथवा आपका स्वभाव ही ऐसा है।

दूसरा वै०—आप दण्ड धारण करके कुमार्ग में चलने वालों को नियमित करते हैं। प्रजा के झगड़ों को निबटा कर उनकी रक्षा का विधान करते हैं और विपुल ऐश्वर्य (धन) शाली प्रजा में धन का बटवारा करने के लिये ज्ञाति विद्रोह उपस्थित होने पर आप ही उस की मीमांसा (फैसला) करके सब में बन्धु-कृत्य सम्पादन करते हैं।

राजा—(सुनकर आश्चर्य से) थकावट को प्राप्त होने पर भी इन सब बातों से चित्त मानो नया सा हुआ जाता है।

विदू०—(हँस कर महाराज! बैल को गोयूथपति कहने से ही क्या उसका परिश्रम घट जाता है?

राजा—(मधुर हास्य से) अब आसन पर बैठो। कुछ देर विश्राम किया जाय?

(दोनों ओर परिजन गण यथायोग्य स्थानों में बैठ गये नैपथ्य में वीणा की ध्वनि)

विदू०—(उसी ओर को कान लगा कर) मित्र! संगीत शाला की ओर कान लगा कर एक बार सुनो। तान युक्त वीणा की ध्वनि सुनी जाती है, जान पड़ता है-हँसपदी देवी वर्ण परिचय करती हैं।

राजा—चुप रह मैं सुनूँ।

कंचुकी—(राजा की ओर देख कर) इस समय जान पड़ता है कि महाराज किसी दूसरे विषय में चित्त लगा रहे हैं। इस लिये अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिये।

(एकान्त में अवस्थान नैपथ्य में संगीत)

(राग सहाना)

भ्रमर तुम अभिनव मधु के मीत।
सरस आम की मृदुल मंजरी तासो राखी रीत।
नित चुम्बन हित आवत नेहि ढिग अधिक बढ़ाई प्रीत।
अब सरोज वश ताहि भुलाया बहु दिन हुए व्यतीत।
'मिश्र' तुम्हारी दशा देख यह होत न जिय परतीत।

राजा—आहा! कैसा प्रेम भरित गीत है।

विदू०—सखे! आप क्या इस गीत के पदों का अर्थ समझ गये हैं?

राजा—(मधुर हँसी से) इसने केवल एक बार ही प्रेम में बाँध लिया। देवी वसुमती के अतिरिक्त इस हंसपदिका के निकट भो मैं तिरस्कृत हुआ। जो हो--मित्र! माधव्य! तू मेरे अनुरोध से हंसपदिका के पास जाकर कह कि मैं खूब अपमानित हुआ हूं।

विदू०—आपकी जैसी आज्ञा! (उठ कर) वीतराग (तपस्वी) व्यक्ति सूनो वनस्थली के बीच तपस्या में निरत होने पर यदि अप्सरा के द्वारा मोहित होजाय--तो फिर जैसे उसके छूटने का उपाय नहीं रहता, हंसपदिका के पास जाने से मेरी भी वही दशा होगी। आप का आज्ञा-वाही होकर वहां पहुंच जाने पर हंसपदिका की आज्ञा से उसकी आज्ञा में रहने वाली परिचारिका (दासियां) मेरी चुटिया पकड़ कर ऐसा पीटेंगी कि फिर शीघ्र मेरे छूटने की आशा नहीं रहेगी।

राजा—मित्र! रसिक के वेश में जाकर चतुराई से मेरी बात जता देना।

विदू०—अब उपाय क्या है? जाने मेरी क्या गति होने वाली है? (गया)

राजा—(आप ही आप) यद्यपि मुझे किसी प्रेमी का वियोग नहीं है, किंतु तो भी यह गान सुन कर मेरे हृदय में बलवती उत्कंठा उत्पन्न हो आई अथवा मनुष्य सुख से रह कर भी जो मनोहर पदार्थ देखकर और कानों को सुख दायक शब्द सुनकर व्याकुल होता है, वह केवल अज्ञान वशतः जन्मान्तरोण बद्ध मूल स्नेह को मन में याद करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

(यह कह कर उत्कंठित भाव से अवस्थान)

कञ्चुकी—(आगे आकर) स्वामी की जय हो! जय हो! यह हिमालय पर्वत की तराई के रहनेवाले कई तपस्वो कण्व मुनि का संदेशा लेकर स्त्रियों सहित आये हैं, उनके लिये महाराज जैसी आज्ञा दें?

राजा—(आश्चर्य से) क्या कण्व का संदेशा लेकर तपस्वी स्त्रियों सहित आये हैं ?

कंचुकी—हाँ महाराज !

राजा—तो हमारी आज्ञानुसार उपाध्याय सोमरात से कहो कि वे शास्त्र-विहित विधान से आश्रमवासियों को सत्कृत करके स्वयं ले आवें और मैं भी तब तक तपस्वियों से मिलने योग्य स्थान में बैठता हूँ।

कंचुकी—महाराज की जो अनुमति है।

(कंचुकी का प्रस्थान)

राजा—(उठकर प्रतिहारी के प्रति) वेत्रवति ! मुझको अग्नि शरण गृह की गैल बताओ।

प्रतिहारी—महाराज ! यह मार्ग है-इधर आइये। (इधर उधर फिर कर) महाराज ! यह सामने अग्निहोत्र गृह का अलिन्द (बाहिरी दरवाजे के सामने का भू भाग) अभी सफाई करने से परम शोभा को प्राप्त हो रहा है, होम की धेनु भी उसके निकट विद्यमान है, आप इस गृह में चलकर सुशोभित हों।

राजा—(सेवकों के कन्धों पर सहारा देता हुआ राजा आरोहण करता है) वेत्रवति ! भगवान् कण्व ने मेरे निकट तपस्वियों को क्यों भेजा है ? तब क्या उनके यज्ञारम्भ करने से राक्षसगण व्रत निष्ठ मुनियों के कार्य में विघ्न उत्पन्न करते हैं ? अथवा धर्मारण्याचारियों के प्रति किसी ने बुरा वर्त्ताव किया है अथवा मेरे किसी अपरिचित आदमी ने क्या बड़ी बड़ी लताओं के फूल फल तोड़ डाले हैं ? इस प्रकार मेरे चित्त में अनेक तर्क उत्पन्न होने से वह अत्यन्त व्याकुल हो उठा है।

प्रतिहारी—आप अत्यन्त सत्कर्मी हैं, जान पड़ता है आप से भेंट करने और आपका अभिनन्दन करने के लिये ही यह तपस्वी आये होंगे।

गौतमी, पुरोहित, कंचुकी, शकुन्तला और दोनों कण्व शिष्यों का प्रवेश।

कंचुकी—आप लोग इधर आइये ! इधर आइये !

शार्ङ्ग०—मित्र शारद्वत ! यह महाराज परम भाग्यशाली हैं, यह धर्म की मर्यादा को उल्लंघन नहीं करते। इस स्थान में किसी वर्ण का कोई आदमी कुमार्ग पर नहीं चलता। तो भी मेरे सदा सूने वनमें बसने के कारण यह मनुष्यों से परिपूर्ण राज भवन मुझे अग्नि प्रदीप्त गृह की समान जान पड़ता है।

शार०—शार्ङ्गरव ! मैं जानता हूं, नगर में प्रवेश करने से ही तुम्हारी ऐसी दशा होरही है। स्नान किया हुआ आदमी जिस प्रकार तेल लगाये व्यक्ति को, पवित्र व्यक्ति जैसे अपवित्र को, जागता हुआ आदमी जैसे सोते हुए को और स्वाधीन व्यक्ति जिस प्रकार वन्दी को समझता है, विषयों में आसक्त व्यक्ति को भी वह उसी प्रकार समझता है।

पुरो०—आप सरीखे पुरुष महान् हैं।

शकु०—(दुर्निमित्त देखकर) अरे ! मेरी दाहिनी आँख क्यों फड़कती है ?

गौतमी—बेटी ! तुम्हारा अमंगल दूर होगा, पतिकुल के देवता (अशकुनों को मेटकर) तुम्हें सुखी करेंगे। (चलती है)

पुरो०—(राजा को वताकर) हे तपस्वियों ! वर्णाश्रम की रक्षा करने वाले महाराज पहिले से ही आसन छोड़कर आपकी वाट देखरहे हैं, आप उनका दर्शन कीजिये।

शार्ङ्ग—महात्मन् ! राजा के पक्ष में ऐसी विनय असम्भव नहीं है, ऐसा होने पर भी हम इस विषय में उदासीन हैं, हम बड़ाई या बुराई कुछ भी नहीं करते, क्योंकि फल लगने से पेड़ झुक जाते हैं, नये बादल जल से पूर्ण होने पर झुक जाते हैं, और धनैश्वर्य आदि सम्पत्ति की वृद्धि होने पर साधु जन झुक जाते हैं अर्थात् उद्धत नहीं होते, सच्चे परोपकारी का स्वभाव भी ऐसा ही होता है।

प्रति०—देव ! तपस्वियों के मुख पर प्रसन्नता दिखाई देती है।

राजा—(शकुन्तला को देखकर संभ्रम से तपस्वियों के प्रति) आप के साथ घूँघट काढ़े हुए यह स्त्री कौन है ? इसकी लावण्यता खिल रही है, पवित्र पाण्डु वर्ण पत्र राशि में नवीन पल्लव जिस प्रकार शोभा पाता है, उसी प्रकार यह भी तपस्वियों में विराजमान है।

प्रति०—देव ! इसको भली भाँति से जान लेने के लिये मुझे बड़ा ही कौतूहल होरहा है, कौतूहल वश अपना तर्क भूला नहीं जाता [मैं कुछ भी स्थिर नहीं कर सकता] जो हो, यह स्त्री बहुत ही मनोहर देखने योग्य है।

राजा—रहने दे, दूसरे की स्त्री को देखना न चाहिये।

शकु०—(अपने हृदय पर हाथ रखकर आपही आप) हृदय ! ऐसा क्यों काँपता है ? आर्य पुत्र के प्रेम बन्धन को याद करके धीरज रख।

पुरो०—(आगे बढ़कर) महाराज का कल्याण हो। इन तपस्वियों का भली भाँति आदर मान हो चुका; अब इनके गुरु का क्या सँदेशा है, सो आप सुनिये।

राजा—मैं सुनने को सावधान हूं।

दोनों शिष्य—(अपने दोनों हाथ उठाकर) राजन् आप विजयी हो।

राजा—आप सब को प्रणाम करता हूँ।

दोनों शिष्य—आपके मनकी कामना सिद्ध हो।

राजा—ऋषियों की तपस्या तो निर्विघ्न सम्पादित होती है ?

दोनों शि०—जब कि आप साधुजनों के रक्षक हैं, तब फिर धर्म कर्म में विघ्न कहाँ? सूर्यदेव जब अपनी किरणोंका जाल फैलाते हैं,तब अंधकार का आविर्भाव कैसे होसकता है ?

राजा—(आप ही आप) हमारा राजा सम्बोधन सार्थक हुआ (प्रकट) पूज्यपाद कण्व तो कुशल से हैं ?

शाङ्ग०—राजन् ! सिद्ध पुरुषों का मंगल उनकी इच्छा के आधीन है। उन्होंने आपकी कुशल पूछ कर कहा हैं।

राजा—भगवान् कण्व ने क्या आज्ञा दी है।

शाङ्ग—उन्होंने कहा है-'आपने एकान्त में गन्धर्व-विधिके द्वारा मेरी इस कन्या को भार्या रूपमें ग्रहण किया है। आप दोनोंके इस विवाह कार्य से प्रसन्न होकर मैंने उसका अनुमोदन किया है अर्थात् उसको ठीक मान लिया है। क्योंकि आप उपयुक्त पात्रों में अग्रणी हैं और उधर शकुन्तला भी मूर्त्तिमती सत् क्रिया के समान है,अतएव इन अनुरूप गुण संपन्न वधू-वर का मिलन कराकर प्रजापति ब्रह्माजी ने निन्दा का काम नहीं किया है, अब यह शकुन्तला गर्भवती होगई है। अतएव धर्माचरण के लिये आप इसको ग्रहण कीजिये।

गौतमी—आर्य ! मैं भी कुछ कहना चाहती हूँ, किंतु उचित अवसर नहीं मिलता। इस शकुन्तलाने पूज्य पितादि से विवाह के समय नहीं पूछा और आप भी अपने स्वजनों से कोई बात नहीं पूछ सके, अतएव आपसे या शकुन्तला से कण्व इस विषयमें क्या कहते ? आपने जो किया ठीक ही किया है।

शकु०—(आप ही आप) देखूँ-आर्यपुत्र इसका क्या उत्तर देते हैं ?

राजा—(सशंक भाव से सुनकर) अरे ! यह सब क्या कहते हैं ? मुझको तो यह एक स्वाँग सा मालूम होरहा है।

शकु०—(मनमें) यह सब बातें तो मेरे पक्ष में अग्नि के समान कष्ट दायक हैं।

शाङ्ग०—क्या आप इसको स्वाँग कहते हैं? आप लोग व्यवहार जानने में कुशल हैं। देखो-रमणी सती होने पर भी यदि सदा पिता के घर रहे

तो लोग उसको कलंकिनी समझते हैं-इस लिये स्त्री पति को प्रिय हो; या अप्रिय हो, आत्मीय जन उसका पति के घर ही रहना चाहते हैं।

राजा—तो क्या मेरे साथ इसका विवाह हुआ है ?

शकु०—(विषाद से आप ही आप) हृदय ! तैंने जो आशंका की थी-वही उपस्थित हुई।

शाङ्ग—क्या अपने किये काम में अरुचि होने से राजा को धर्म त्यागना चाहिये ?

राजा—आप इस प्रकार असत्कल्पना का प्रश्न क्यों उठाते हैं ?

शाङ्ग—(क्रोध से) ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त पुरुषों के चित्त में प्रायः यह विकार होता ही है।

राजा—इस बात से आपने मेरा बड़ा अपमान किया है।

गौतमी—(शकुन्तला से) बेटी ! मुहूर्त मात्र को लज्जा छोड़ दे। मैं तेरा घूँघट उघाड़े देती हूं, तो तेरे पति तुझ को पहचान लेंगे।

(घूंघट खोल देना)

राजा—(शकुन्तला को भली भाँति देख कर आप ही आप) इस अम्लान कान्तिवाले सुंदर रूप को जो मैंने पहले ग्रहण किया था, चित्त लगा कर सोचने पर भी तो यह बात मुझ को याद नहीं आती। भौंरा जैसे मध्य भाग में तुषार सम्पन्न कुन्द पुष्प को शीघ्र भोगने वा त्यागने में समर्थ नहीं होता, मेरी भी वैसी ही अवस्था हो रही है।

(मन ही मन विचारता हुआ स्थित होता है)

प्रति०—(मन में ही) अहो ! महाराज की धर्म पालकता ! नहीं तो ऐसे अनायास प्राप्त हुए रूप (नारीरत्न) को देख कर दूसरा कौन इस भाँति सोच विचार कर सकता था ?

शाङ्ग—राजन् ! मौन क्यों धारण कर रहे हो ?

राजा– ऋषियों ! बहुत विचार कर देख लिया, पर याद नहीं आती कि इसके साथ कभी मेरा विवाह हुआ है। तब फिर मैं किस प्रकार इस गर्भवती स्त्री को ग्रहण करके अपनपे को अक्षत्रिय रूप में परिणत करूँ ?

शकु०—हाधिक् ! हाधिक् ! विवाह के विषय में ही संशय है-अब मेरी वह बहुत दिनों की आशालता एक बार ही निर्मूल हो गई।

शाङ्ग—अच्छा-मत याद पड़ो-किन्तु आपने जो इस तापस कुमारी को स्पर्श किया है, ऋषि श्रेष्ठ कण्व ने इस को जान कर जब इसका अनुमोदन किया है, तब क्या इस में शिथिलता करना आपको उचित है ?

चोरी किया हुआ पदार्थ जिस प्रकार चोर के घर भेज दिया जाय, महा-मुनि कण्व ने भी आपको यह अपनी कन्या दी है।

शारद्व०—शार्ङ्गरव ! अब तुम ठहरो। शकुंतला ! हमको जो कुछ कहना था, वह सब कह चुके। यह सन्मान योग्य राजा तो इसी प्रकार कहे जाते हैं-अब जिस से इनको विश्वास हो जाय-तू कोई ऐसा उत्तर दे।

शकु—(आप ही आप) ऐसा प्रेम भी जब ऐसी अवस्था में बदल गया-तो अब सुधि दिवाने से ही क्या फल होगा ? अथवा (लोका-पवाद से बचने को) कुछ कहूं (प्रकट) आर्यपुत्र ! (इस प्रकार आधा कह कर रुक जाती है) अथवा अब इस प्रकार सदाचार का भी संशय विद्यमान् है। हे पौरव ! पहले आप तपोवन में मेरा चित्त प्रीति प्रवण दर्शन से यथा नियम हरण पूर्वक अब ऐसे निठुर वचन क्यों कहते हैं ? यह क्या आपको उचित है ?

राजा—(दोनों कानों पर हाथ रख कर) ठहरो ! ठहरो ! जो नदी किनारों को ढहाती है, वह जिस प्रकार निर्मल जल को कलुषित करती है और सब वृक्षों को भी गिराती है। आप भी उसी प्रकार मेरे सदाचार को कलुषित करके मुझ को भी निपतित करने की इच्छा करती हैं ?

शकु०—अच्छा यदि आप सत्य ही मुझ को परनारी समझ कर आशंका करते हैं, तो मैं किसी प्रकार का अभिज्ञान (निशानी) दिखा कर उस आशंका को दूर किये देती हूँ।

राजा—यह बात सब से अच्छी है।

शकु०—(अँगुली देख कर) हाधिक् ! हाधिक् ! मेरी अँगुली में अँगूठी नहीं है।

(विषाद भाव से गौतमी की ओर देखना)

गौतमी—बेटी ! तैंने शक्रावतार के समीप शची तीर्थ के जल से आचमन किया-उस समय निःसंदेह तेरी अँगुली से अँगूठी निकल कर नदी के प्रवाह में गिर गई होगी।

राजा—(मधुर हास्य करके) इसी लिये मनुष्य कहते हैं कि नारी जाति त्वरित बुद्धि कहाती है।

शकु०—इस घटना में तो विधाता का दुरतिक्रमणीय प्रभाव देखा जाता है। अब किसी दूसरे अभिज्ञान का विषय प्रकाशित करूँ।

राजा—अच्छा-अब उसको भी सुनूंगा।

शकु—एक दिन आप वेतस लता कुञ्ज में बैठे थे। आप के हाथ-स्थित नलिनी पत्र के दोने में जल था।

राजा—अच्छा कहो-सुन रहा हूं।

शकु—उसी समय मेरा कृत्रिमपुत्र दीर्घापाङ्ग नामक हरिण का बच्चा आन कर उपस्थित हुआ। तब पहले यह हरिण का बच्चा जल पियेगा, इस प्रकार दया दिखाकर आपने वह जल ले पीने के लिये उसके मुख के धोरे रख दिया। किन्तु आपको अपरिचित देख कर उसने आपके हाथ से जल नहीं पिया-किन्तु मैंने उसके आगे वही जल का पात्र रक्खा, तो उसने प्रसन्नता से जल पिया। तब आपने हंसकर कहा था, "सब आत्मीजनों के प्रतिही विश्वास स्थापन करते हैं-क्योंकि तुम दोनों ही वनवासी हो"

राजा—इसी प्रकार अपना प्रयोजन सिद्ध करने वाली स्त्रियों की बनावटी बातों से कामियों के मन खिंच जाते हैं।

गौतमी—हे महाभाग ! आप इस प्रकार की बात न कहिये। यह शकुन्तला तपस्वी के आश्रम में बड़ी हुई है-अतः शठता किसका नाम है उसको यह बिन्दु मात्र भी नहीं जानती।

राजा—हे वृद्ध तापसी ! मनुष्य के अतिरिक्त तिर्यक जातिकी स्त्रियां भी बिना ही शिक्षा चातुरी के निपुणता प्रकाशित करती हैं। इस विषयमें और क्या कहूं-देखो-जब तक बच्चे आकाशमें नहीं उड़ सकते-कोकिला तबतक उनको अन्य पक्षी (कौवे) के द्वारा लालन पालन करा लेती है।

शकु—(रोष से) हे अनार्य ! सब ही अपने चित्त के भाव का अनुमान करके दूसरे को देखते हैं। धर्म-वेश का ढक्कन लगा कर तुनकों से ढके कुए की समान आपकी नाईं शठता प्रकाश करने में और किसकी इच्छा होती है ?

राजा—(आपही आप) वनवासिनी होनेके कारण इसका रोष विभ्रम शून्य (शृंगारादि भाव शून्य) देख रहा हूँ। क्योंकि यह कुटिल भाव से दृष्टि नहीं डालती। इसकी दोनों आँखें भी लाल हो उठी हैं और वचन भी निठुरता प्रकाशक हैं-अधिकतर मुझ सरीखे व्यक्ति को लक्ष्य करके ऐसे वचन कहने भी असंगत हैं। मैं इस विषय में कुछ भी नहीं समझ सकता। फिर बिना कारण ही मुझ पर इस नारी का क्रोध प्रकाश करना भी असंभव है और मेरे साथ जो इसका विवाह हुआ है यह भी याद नहीं आता। तो क्या यह रमणी कामाग्नि से दग्ध हुई है ? क्याही आश्चर्य है ? कामका माहात्म्य कालज्ञ लोकों को भी विकल करता है (प्रकट) कल्याणि ! किसी ने कभी भी तो नहीं देखा कि दुष्यन्त के चरित्र में काला धब्बा लग रहा है।

शकु—राजन् ! आपके साथ जो मेरा विवाह हुआ है—उसको धर्म के अतिरिक्त और किसी ने नहीं देखा। इस प्रकार लज्जा को तिलांजलि देकर क्या कोई स्त्री पराये पुरुष की वासना करती है ? महाराज ! तो क्या मैं स्वेच्छाचारिणी वारवनिता की समान आपके निकट आई हूं ?

गौतमी—बेटी ! तुम इस समय मुख में मधु और अन्तर में जिसके गरल है—ऐसे पुरुवंशीय पुरुष के पाले पड़ गई हो।

शकु—(आँचल से मुख ढक कर रोने लगी)

शार्ङ्ग—चंचलता वश जिस तिस से प्रीति जोड़ने पर वह प्रीति ही इस समय ज्वलन्त अग्नि तुल्य होकर दग्ध करती है। अतएव बिना भली भाँति परीक्षा किये एकान्त में मित्रता जोड़ लेना उचित नहीं है। जिस का हृदय देखा भाला नहीं है, उसके साथ प्रेम बन्धन करने पर वह प्रेम शत्रु भाव धारण करके विद्वेष में बदल जाता है।

राजा—ऋषियो ! आप क्या इस विषय में विश्वास करके बिना अपराध मेरी निन्दा करते हैं ?

शार्ङ्ग०—(असूया से सभासदों के प्रति) आप सब ने इन राजा की बात को सुन तो लिया ? जन्म से जिसने शठता नहीं सीखी—उसकी बात प्रमाण नहीं हुई और जो बचपन से दूसरे को छलने की विद्या का अभ्यासी है, उसी की बात प्रमाण (सत्य) हुई।

राजा—हे सत्यवादी मुनियो ! अच्छा मान लिया कि मैं ही छलिया हूं—मेरी बात विश्वास के योग्य नहीं है—किन्तु कहता हूं—कि मुनियों के साथ प्रतारणा (धोखा) करने से मुझ को क्या लाभ है ?

शार्ङ्ग०—अधःपतन ! (घोर विपत्ति)

राजा—अधःपतन वाक्य नितांत अश्रद्धेय है अर्थात् पुरुवंशी विपत्ति चाहते हैं, इस बात की किसी को श्रद्धा नहीं हो सकती।

शार्ङ्ग०—महाराज ! अब उत्तर प्रत्युत्तर की आवश्यकता नहीं है; हमने गुरुदेव की आज्ञा पालन करदी। अब जाते हैं। तो भी यह आपकी धर्मपत्नी है, इस को त्यागते हो—त्यागो और ग्रहण करते हो तो ग्रहण करो। इस विषय में अब हमको कुछ कहना नहीं है, क्योंकि रमणी के प्रति पति का ही सब प्रकार से प्रभुत्व है। गौतमी ! आप आगे-आगे चलिये।

[सब जने चलने को उद्यत होते हैं]

शकु०—एक तो इस समय मैं इस धूर्त्त से छली गई—अब क्या तुम लोग भी मुझ को छोड़ जाओगे ?

[पीछे पीछे शकुन्तला का जाना]

गौतमी—(खड़ी हो पीछा फिर कर देखती हुई) पुत्र शार्ङ्गरव ! करुण स्वर से रोती हुई शकुन्तला हमारे पीछे आरही है-जिस निर्मोही व्यक्ति ने अपनी सहधर्मिणी (पत्नी) को परित्याग किया,दया के योग्य रमणी उसके पास रहकर क्या करेगी ?

शकु०—डर से काँपती है।

शार्ङ्ग०—(लौटकर) शकुन्तला ! राजा ने जो कहा, वह तो सुन ही लिया। यदि तू वैसी ही (व्यभिचारिणी) है-तो फिर दुःखी होकर क्या करेगी ? (तू कुल से भ्रष्ट हुई) और यदि अपने आपको पवित्र और सती समझती है, तो पति कुल में रहकर दासी वृत्ति करना भी तेरे पक्ष में उचित है-अतएव तू ठहर-मैं चलता हूं।

राजा—तपोधन ! इसको धोखे से छोड़ कर कहां जाते हो ? आप निश्चय जानिये-चन्द्रमा कुमुदिनी को और सूर्य कमल को ही खिलाता है, अतएव जितेन्द्रिय पुरुष पराई स्त्री का मुख देखने से विमुख रहते हैं।

शार्ङ्ग०—महाराज ! अन्यान्य कार्यों में लगे रहने से पहली बातों को भूलजाना संभव है, आप जहाँ अधर्म के भय से डरते हैं-वहाँ आपका स्त्री त्याग किस प्रकार से युक्ति संगत होसकता है ?

राजा—इसकी भलाई-बुराई के विषय में आपसे ही पूछता हूं-अच्छा, (मानलो कि) मैं ही भूलजाने के कारण विमुग्ध हो गया हूं अथवा यह स्त्री ही मिथ्या कहती है। इस प्रकार सन्देह के स्थल में मैं क्या नारी त्यागी बनूँ अथवा पराई स्त्री को स्पर्श करके अपने आत्मा को कलुषित करूँ ?

पुरो०—(विचार करके) यदि ऐसा ही है-तो इस प्रकार कीजिये।

राजा—गुरो ! आप उपदेश दीजिये।

पुरो०—जब तक यह मुनि कन्या सन्तान उत्पन्न न करे-तब तक मेरे घर में रहे।

राजा—सो कैसे ?

पुरो०—महाराज ! ज्योतिषविद्या-विशारदगणों ने पहले ही कह दिया है, कि-सब से आगे आप के एक चक्रवर्ती लक्षण वाला पुत्र उत्पन्न होगा। यह ऋषि दौहित्र (धेवता) यदि उसी लक्षण सम्पन्न हो-तो आप इस को आनन्द से रनवास में ले जायँ और यदि इसके विपरीत हो-तो इस के पिता के पास भेज देना।

राजा—गुरुवर की जैसी इच्छा।

पुरो०—(उठकर) पुत्रि ! इधर आओ- मेरेपीछे पीछे चलो।

शकु०—भगवती वसुधे ! मुझको स्थान दो।

(पुरोहित-गौतमी और तपस्वियों सहित शकुन्तला का रोते-रोते जाना)

(राजा दुर्वासा के शाप से कुछ भी स्मरण न कर सकने पर शकुन्तला विषयक चिन्ता करने लगा)

(नेपथ्य में आश्चर्य ! आश्चर्य !!)

राजा—(उसी ओर को कान लगा कर) अब यह क्या ?

पुरोहित का प्रवेश।

पुरो०—(आश्चर्य से) देव ! बड़ी ही अचंभे की बात होगई है।

राजा—सो कैसी ?

पुरो०—कण्व-शिष्यों के चले जाने पर वह रमणी अपने भाग्य को कोसती हुई विलाप करने लगी।

राजा—फिर ?

पुरो०—राजन् ! उसी समय अप्सरा की समान आकृति वाली कोई तेजस्विनी रमणी-मूर्त्ति आकर उसको कन्धेपर चढ़ाकर अन्तर्धान होगई।

(यह सुन कर सब आश्चर्य करते हैं)

राजा—भगवन् ! यह बात पहले ही छोड़ दी गई थी, अब वृथा पश्चात्ताप का क्या प्रयोजन है ? खोज करने पर भी उसका मिलना कठिन है।

पुरो०—आपकी जय हो।

(पुरोहित का प्रस्थान)

राजा—वेत्रवति ! इस समय मैं बहुत ही अधीर होगया हूँ। मुझको विश्राम गृह का मार्ग बता।

प्रति—महाराज ! इधर आवें। इधर आवें।

(प्रस्थान)

राजा—(चलते चलते आपही आप) ऋषिबाला से विवाह करने की बात तो याद ही नहीं आती। किन्तु मेरा अन्तःकरण जिसप्रकार अनुतप्त और खिन्न होरहा है। इससे मानो प्रतीति होतो है, कि यह रमणी मेरी व्याहता स्त्री है।

(सब का जाना)

पाँचवाँ अंक समाप्त ॥

—o—

छठा अंक।
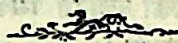
प्रवेशक *

(एक मुश्कें बँधे हुए व्यक्ति को लेकर दो सिपाही और राजा का साला कोतवाल आता है)

दोनों सिपाही—(मुश्कें बँधे आदमी को पीटते हुए) रे तस्कर ! बता-यह महामणि रत्न खचित अत्यन्त चमकदार नाम खुदी हुई राजा की अँगूठी तैंने कहाँ से पाई ?

पुरुष—(डरसे) आप लोग प्रसन्न हों, मैंने ऐसा कुकाज (चोरी) नहीं किया है।

पहला सि०—अबे ! तू एक ब्राह्मण है न ? इसीसे महाराज ने तुझको दान की होगी।

पुरुष—आप लोग सुनें ! मैं एक धींवर हूँ। शक्रावतार में मेरा घर है।

दूसरा सि—रे चोर ! हम क्या तेरी जाति और रोजगार को पूछते हैं ?

कोतवाल—सूचक ! उसको धीरे २ सब बात कहने दो, बीच में रोक टोक मत करो।

दोनों सि०—अच्छा यही सही ! कहबे आगे कह ?

धींवर—मैं वहाँ जाल में मछलियाँ पकड़ने के उपाय से जीविका चलाकर अपने कुनवे का पेट पालता हूँ।

कोतवाल—(हँसकर) मुझको अब अच्छी तरह से मालूम होगया कि तेरी जीविका का उपाय बहुत ही पवित्र है।

धींवर—महाशय ! यह बात न कहिये। क्योंकि जिसका जो काम है, वह निन्दित (बुरा) होने पर भी छोड़ना उचित नहीं है, क्योंकि (देखो) श्रोत्रिय ब्राह्मण दयावान् होते हुए भी वैदिक विधान के अनुष्ठान कालमें पशु हनन कार्य में निर्दय और दारुण होजाते हैं।

कोतवाल—अच्छा फिर ?

---

* कभी कभी एक अंक के समाप्त होने पर अन्य अंक आरंभ होने से पहले केवल नीच पात्र के मुखसे अतीत वा भावी विषय सूचित होता है। नाटक के इस अंक का नाम प्रवेशक है। प्रवेशक तत्परवर्त्ती अंक का प्रस्तावना स्वरूप है।

धींवर—एक दिन मैंने एक रोहित मछली पकड़ी। उसके जब टुकड़े टुकड़े करके काटे, तब उसके भीतर यह चमकदार अँगूठी दिखाई दी। फिर उसको यहाँ बेचने के लिये ले आया। अब आपने मुझको बन्दी कर लिया है। इसी प्रकार से मुझको अँगूठी मिली है। अब मुझे मारना चाहो-मारो। काटना चाहो-काटो।

कोतवाल—(अँगूठी को सूँघकर) जालुक! यह जो मछलीके भीतर थी-इसमें सन्देह नहीं, क्योंकि अब भी इसमें से माँसकी गन्ध निकल रही है। धींवर ने इस अँगूठी के मिलने का जो ब्योरा कहा-वह सच्चा हो सकता है। जो हो, अब विचार करके देखना चाहिये। चलो हम राजा के पास चलें।

दोनों सि—चलवे चोर चल (सब का जाना)

कोतवाल—सूचक! मैं राजमहल से जब तक नहीं लौटूँ, तबतक तुम लोग चुपचाप सीधीतरह इस गोपुरद्वार पर मेरी प्रतीक्षा करो।

दोनों सि—प्रभु की प्रसन्नता प्राप्त होने के लिये राज भवनमें जाइये।

कोतवाल—(चला गया)

जालुक—अवसर समझ कर ही राजा के पास जाना चाहिये।

धींवर—विचार कर दण्ड दीजिये।

सूचक—इस गँठ कटे चोर को मारने के लिये मेरे हाथ खुजा रहे हैं।

धींवर—बिनापराध के ही मत मारिये।

जालुक—(चारों ओर देखकर) यही तो हमारे स्वामी राजदण्ड हाथमें लिये आरहे हैं, अब यह धींवर का लड़का अपने इष्ट देवता और कुटुम्ब को याद करले अथवा गीध-गीदड़ आदि के भोजन स्वरूप अपने को समझे।

(कोतवाल का प्रवेश)

कोतवाल—जल्दी-जल्दी इसको (इतना कहकर रुका)

धींवर—हाय! ऐसे मरा। (शोक प्रकाश)

कोतवाल—धींवर को छोड़ दो। इस अँगूठी के निकलने की बातको हमारे स्वामी ने स्वीकार कर लिया है।

सूचक—आप की जो आज्ञा। यह बच्चा यमराज के घर जाकर फिर लौट आये। (धींवर की मुश्कें खोल दीं)

धींवर—मालिक! अब से मैंने अपने जीवन को आपके हाथ बेंच दिया [दोनों पैरों में गिरना]

कोतवाल—अबे उठ! उठ!! मेरे प्रभु ने तुझ को अँगूठी का मूल्य स्वरूप बहुत सा इनाम दिया है, उसको ले।(धींवरको स्वर्ण कटक देता है)

धींवर-(आनन्द से लेकर) मैं अत्यन्त अनुग्रहीत हुआ।

जालुक—राजन्! यह अनुग्रह नहीं, वरन इसका शूली से उतारकर हाथी की पीठ पर चढ़ा दिया गया है।

सूचक-आवृती! इस प्रकार पुरस्कार प्रदान करने से जाना जाता है कि यह अँगूठी बड़े मोल की है, और यह राजा के परम आदर की चीज़ है।

कोत०-मैं समझता हूँ कि अंगूठी बड़े मोल की होने से राजा को इतना आनन्द नहीं है।

दोनों सि०-कैसे?

कोत०-अंगूठी के देखते ही राजा को अपने किसी बड़े प्रीतम की सुधि आगई, क्योंकि वे स्वभाव से गंभीर होनेपर भी कुछेक देर उत्कंठाकुल होकर चिन्ता में निमग्न थे।

सूचक—आपने महाराज को प्रसन्न और विषादित दोनों कामों से युक्त किया।

जालुक—मेरे विचार से यह मत्स्य शत्रु है।

(डाह से धींवर की ओर देखता है)

धींवर-भट्टारक! इस पुरस्कार (इनाम) का आधा अंश आप की मदिरा का मूल्य होगा अर्थात् आधा धन आपको शराब पीने के लिये दिया जायगा।

जालुक-धींधर! आज से तुम हमारे परम बन्धु हुए। पहिले बन्धुता स्थापन करने में सुरा को साक्षी किया जाता है, अतएव चलो सब मिल कर कलाल की हट्टी पर चलें।

(सब का चला जाना)

(इति प्रवेशक)

आकाश-यान पर बैठी मिश्रकेशी का प्रवेश।

मिश्रके०—अप्सराओं की आज्ञानुसार क्रम क्रमसे सभी कार्य सम्पादन किया। अब देवता और साधुओं के स्नान का समय उपस्थित है, सुतरां अब इस राजर्षि के वृत्तान्त को देखूं अथवा मेनका मेरी दूसरी प्राण स्वरूप हैं, उसने अपनी कन्या शकुन्तला को धीरज देने के लिये पहिले ही मुझ से कहा है (चारों ओर देखकर) वसन्तागम से उत्सव के दिन उपस्थित होगये, किन्तु तो भी राजभवन उत्सव से शून्य की नाईं क्यों दीखता है? मैं तो समाधि के प्रभाव से सब ही बात जान

सकती हूँ, किन्तु सखी शकुन्तला के आदर दर्शनार्थ अनुरोध की रक्षा करना मेरा अवश्य कर्त्तव्य है। जो हो, उद्यान रक्षकों के पार्श्व में खड़ी होकर तिरस्करिणी विद्या के बल से छिपकर सब घटना देखूँ।

(विमान से उतरकर वहाँ बैठती है। आम की मंजरी को देखते २ एक चेटी और उसके पीछे दूसरी चेटी आती है)

पहिली चे०-यह क्या मधुमास आगया, कुछेक लोहित*तथा हरिद्वर्ण वृन्त युक्त आम की मँजरी वसन्त के जीवन की समान दिखाई देती है। मेरा अटल विश्वास है कि वसन्तोत्सव में यह आम की मंजरी कल्याणकारक होगी।

दूसरी चे०—परभूतिके! अकेली क्या परामर्श करती है?

पहिली चे०-मधुकरिके! आम की मंजरी को देखकर परभूतिका उन्मत्त हो उठी है।

दूसरी चे०-(सहर्ष समीप जाकर) क्या मधुमास (वसन्तकाल) उपस्थित हुआ है?

पहिली चे०-मधुकरिके! चपलता वश तुम्हारे गाने का भी यह उपयुक्त समय है।

दूसरी चे०-सखि! मुझको पकड़ अर्थात् मुझे सहारा देकर उचका दे, तो मैं पैर के अग्रभाग से खड़ी होकर एक आमकी मंजरी ग्रहण-पूर्वक भगवान् कामदेव की पूजा करूँगी।

पहिली चे०-तो मुझे पूजा के फल में से आधा दे, तब सहारा दूंगी।

दूसरी चे०-आली! जो तू यह न कहती, तो क्या आधा फल न देती? क्योंकि हम दोनों जनियों का देह एक है, केवल प्रजापति ने दो भाग में बाँट दिया है (सखी का सहारा लेकर आमकी मंजरी तोड़ती है) अहो! यह आम की मंजरी (कली) यद्यपि अभी खिली नहीं है, तो भी टूटने के स्थान से कैसी सुहावनी महक आ रही है (अंजली बनाय मंजरी की भेंट लेकर) "नमो भगवते मकरध्वजाय" हे आम की मंजरी! मैं तुझको धनुर्हस्त कामदेव के निमित्त अर्पण करती हूं, तुम उनके पंचबाण में एक बाण स्वरूप होकर पथिक-युवती जनों को लक्ष्य करना।

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—(रोष से) अरी बावलियो! तुमको कुछ भी बुद्धि नहीं है, महाराज ने वसन्तोत्सव करने को निषेध कर दिया है, तो भी तुम आम की कली तोड़ने में प्रवृत्त होरही हो।

* किसी किसी पुस्तक में मिश्रकेशी के बदले सानुमती का नाम पाया जाताहै।

दोनों—(डरकर) आर्य ! प्रसन्न हूजिये, महाराज के निषेध का हाल हमको मालूम नहीं था।

कंचुकी—हाँ, तुमने क्या सुना नहीं कि बसन्त ऋतु में सब वृक्ष और उन पर सहारा लेनेवाले पक्षीगणों ने भी महाराज की आज्ञा शिरो धार्य की है ? देखो, आम की कली बहुत दिनों से उत्पन्न होगई है, किन्तु पराग उत्पन्न नहीं हुआ। कुरवक के फूल सज्जित भाव से बहिर्गत होकर भी कोरकावस्था में ही हैं और शिशिर ऋतु विगत होने पर भी पुंस्कोकिल के कण्ठ स्वरूप कंठ में ही विलीन होरही है, अतएव मुझको जान पड़ता है, कामदेव भी डरकर तरकस से बाणों को आधा खैंचकर उसी भावसे अवस्थान करता है।

मिश्रकेशी-(आप ही आप) राजर्षि का प्रभाव ऐसा ही है।

पहिली चे०-आर्य ! कुछ दिनों से हम महाराज के साले मित्रावसु की भेजी महारानी के चरणों में आई हैं, हमें इस कुमुदवन के पालन का काम मिला है, अतएव विदेशी होने से हमको यह वृत्तान्त ज्ञात नहीं हुआ।

कंचुकी—अब हुआ सो हुआ, फिर ऐसा काम मत करना।

दोनों—(कौतूहल से) आर्य ! हमें इस बात के जानने की इच्छा है, जो यह हमारे सुनने के योग्य हो, तो कहो, महाराज ने वसन्तोत्सव क्यों वर्ज दिया है ?

मिश्रकेशी—(आप ही आप) राजाओं को तो स्वभाव से ही उत्सव भला लगता है, इसमें कोई बड़ा कारण होगा, जो ऐसी आज्ञा दी गई है।

कंचुकी—जबकि इस बात को सब कोई जान चुके हैं-फिर इसके कहने में क्या बाधा है!? (प्रकट) क्या शकुन्तला के त्याग की बात तुम्हारे कानों तक नहीं पहुंची ?

दोनों—श्रेष्ठ ! हाँ, राजा के साले के मुखसे अँगूठी मिलने तक की बात हमने सुनली है।

कंचुकी—तब तो थोड़ा कहने से ही समझ जाओगी। अच्छा सुनो-अँगूठी के देखते ही जब महाराज को याद आई कि पहले निर्जन में-मैंने शकुन्तला से विवाह किया है और मोह से फिर उसको परित्याग भी किया है-तब से महाराज अनुतापाग्नि से अतिशय दग्ध होरहे हैं। इस समय समस्त रमणीय पदार्थों को ही वे बुरा समझते हैं। अब मंत्री भी पहले की समान उनकी सेवा नहींकरते, रात में उनको नींद नहीं आती, पलँग के दोनों ओर करवटें बदलते हुए रात बिता देते हैं। फिर जब दयावश रनवास की स्त्रियों को यथोचित्त उत्तर देने को उद्यत होते हैं,

तो उनके मुख से शकुन्तला का नाम उच्चारित होता है; इस प्रकार की घटना के पीछे बहुत देर तक लज्जा से मुख नीचा किये बैठे रहते हैं।

मिश्र—(आपही आप) यह मेरे लिये बड़ी प्रसन्नता की बात है।

कंचुकी—इस निरंकुश वैमनस्य के लिये ही महाराज ने उत्सव मनाना वर्ज दिया है।

दोनों—यह तो उचित ही किया हैं।

(नैपथ्यमें इधर आइये। इधर आइये। महाराज !

कंचुकी—(उसी ओर को कान लगा कर) महाराज तो इधर को ही आ रहे हैं—इसलिये अपने चित्र कार्य के सम्पन्न करने को जाओ।

दोनों चेटी—यही हो। (जाती हैं)

(तापस वेषधारी राजा विदूषक और प्रतिहारी आया)

कंचुकी—(राजा को देख कर आप ही आप) सच है—जिसकी आकृति मनोहर होती है, वह सभी अवस्था में मनोहर लगता है—यद्यपि महाराज दुःख से बहुत ही उदास हैं, किन्तु तो भी उनका दर्शन कैसा मनोहर लगता है। इनको भाँति भाँति के गहने पहरने का चाव है-पर अब उनका पहरना छोड़ दिया है—केवल वांये हाथ में एक कंगन मात्र पहर रहे हैं, पर वह भी अब ढीला होरहा है, गरम गरम लम्बे श्वासोंकी वायु से होठ पपड़ा गये हैं और चिन्ता के कारण रात में नींद न आने से दोनों नेत्र लाल हो आये हैं—इस प्रकार यह अत्यन्त दुर्बल होने पर भी निज गुण के प्रभाव से शापित अस्त्र की समान विराजमान हैं।

मिश्र०—(राजा को देखकर मन मन में) राजा के त्याग देने पर शकुन्तला का अपमान अवश्य हुआ है किन्तु तो भी शकुंतला इन के वियोग में दुःखी होरही है—सो यह ठीक ही है।

राजा—(चिंता के साथ धीरे धीरे चल कर) पहले उस मृगनयनी प्रियतमा ने मुझ को अनेक प्रकार से समझाया था, पर उस समय मेरा यह हत-हृदय मानों मोह निद्रा में निमग्न था, अब दुःख संताप सहने के लिये ही जागा है।

मिश्र०—(मन ही मन सोच कर) शकुंतला का निगोड़ा भाग्य ही ऐसा है, नहीं तो जिनके हृदय में ऐसा प्रेम है, वे क्या उसको छोड़ सकते थे ?

विदू०—(धीरे से) ओफ ! महाराज फिर शकुंतला शकुंतला कर के बात व्याधि द्वारा ग्रसित हुए, नहीं समझ सकता कि अब किस प्रकार इनकी चिकित्सा करानी होगी।

कंचुकी—(पास जाकर) महाराज की जय हो। महाराज की जय हो। समस्त प्रमद वन को सावधानी से देखा गया है अब आप अपनी इच्छानुसार उसके विनोद स्थानों में विश्राम करें।

राजा—प्रति हारी ! तुम हमारे वचन से जाकर मन्त्रि श्रेष्ठ पिशुन से कहो कि रात में बहुत जागने के कारण आज मैं धर्मासन पर बैठ कर समस्त राज्य के कामों को नहीं देख सकूंगा--इस से आप प्रजा संबंधी जो कार्य हो, उस को आप पत्र में लिख कर मेरे पास भेज देवें।

प्रति—महाराज की जो आज्ञा। (गया)

राजा—पार्वतायन ! तुम भी अपने काम से लगो।

कंचुकी--महाराज की जो आज्ञा। (प्रस्थान)

विदू०—यह स्थान तो आपने निर्मांक्षिक कर दिया अर्थात् ऐसा सूता कर दिया कि यहां मक्खी तक न रही। अब शीत और गरमी को निवारण करने वाली मनोहर इस प्रमदा कुंज में बैठ कर जी बहलाइये।

राजा—(लम्बा श्वाँस लेकर) मित्र ! मनुष्य जो यह कहा करते हैं कि छिद्र देखने पर ही अनर्थ आन कर उपस्थित होते हैं, सो झूंठ नहीं है। देखो-अंतः करण मोह रूपी अंधकार से ढक जाने पर मुनि कन्या के सहित जो प्रेम की बातें हुई थीं, उनको भूल गया था ज्योंही वह मोह रूपी अंधकार दूर हुआ कि त्योंही कामदेव ने मुझ पर प्रहार करने के लिये अपने धनुष में आमकी मंजरी का वाण चढ़ाया। अपनी नाम खुदी अँगूठो देख कर जब मुझ को सब बातें याद आगईं कि तैसे ही प्यारी को देखने की उत्कण्ठा हुई, किन्तु अकारण ही परित्याग करने के हेतु मैं अनुताप से रोने लगा—उसी समय फिर न जाने कहाँ से यह काल स्वरूप वसंत ऋतु आगई।

विदू०—सखे ! आप क्षण काल ठहरिये-मैं अपनी लाठी से इस काम देव को चकनाचूर किये देता हूं।

राजा—(कुछ हँस कर) हाँ, मैंने तेरा ब्रह्मतेज देख लिया है-तो बताओ मित्र ! अब कहाँ बैठ कर प्यारी की उनहार वाली लताओं को देख कर नेत्र शीतल करूँ ?

विदू—आपने तो निकट वर्त्तिनी परिचारिका लिपिकरी को आज्ञा दी थी कि हम यह समय माधवीलता में बितावेंगे —इस समय वहीं अपने हाथ से खेंचा हुआ शकुन्तला का चित्र ले आना।

राजा—इस प्रकार चित्र दर्शनादि, इस समय अन्तःकरण को शान्ति देने वाला कार्य है, इस लिये माधवी लता के उसी मार्ग को बता।

विदू०-इधर आइये ! इधर आइये !!

(दोनों चलते हैं ।)

मिश्र०-पीछे-पीछे जाती है ।

विदू०—लो यही तो वह मणियों से जड़ित शिला की चौकी बिछा हुआ सुशोभित माधवीलता-मण्डप है, यह सूना-मनोहर और कल्याण-कारी है, नैसर्गिक वायु प्रवाहित होकर मानो कुशल प्रश्न करने के लिये आपके निकट उपस्थित हुआ है—अतएव आप उसके भीतर बैठकर आनन्द कीजिये ।

(दोनों वहां जाकर बैठ गये)

मिश्र०—(आप ही आप) मैं भी इस लतामंडप में बैठ कर अपनी प्यारी सखी का चित्र देखूँगी और फिर भर्त्ता के प्रेम की अधिकाई उस से जाकर कहूंगी ।

(लता की ओट में बैठ गये)

राजा—(लम्बा श्वाँस लेकर) मित्र ! मैंने तुम से जो कहा था, प्रथम के देखने से लेकर शकुन्तला की वह सभी बातें मुझ को याद आरही हैं, जिस समय मैंने शकुन्तला को परित्याग किया, उस समय तू मेरे पास नहीं था, किन्तु उस के पहले भी तैंने शकुन्तला का नाम इत्यादि कुछ वर्णन नहीं किया । मैं तो भूल ही गया था–तो क्या मेरी ही नाईं तू भी भूल गया था ?

मिश्र—(स्वगत) इसी लिए राजा को चाहिये कि सहृदय सहायक व्यक्ति को क्षणभर के निमित्त भी न छोड़ें ।

विदू०—मैं नहीं भूला हूँ–परन्तु सब बातें कहने के पीछे आपने यह भी कहा था कि काल्पनिक बात हमने केवल जी बहलाने को ही कही थी यथार्थ में नहीं–मैंने भी अपनी अज्ञानता से वैसा ही समझ लिया था अथवा इस विषय में होनहार ही प्रबल है ।

मिश्र०—(स्वगत) यह ऐसे ही है ।

राजा—(कुछ देर तक सोचकर) सखे ! मेरी रक्षा करो अर्थात् दुःख से छुटाओ ।

विदू०—मित्र यह क्या आपको उचित है ? सत्पुरुष कभी शोक से अधीर नहीं होते–देखिये; पवन के प्रबल वेग से भी पर्वत चलायमान नहीं होता, स्थिर भाव से ही रहता है ।

राजा—सखे ! जिस समय शकुन्तला को परित्याग किया–तब उस का हृदय जैसा कातर हुआ था, उस की वह अवस्था याद करने से मैं

बहुत ही कातर होगया हूँ, अब मेरे प्राण रहने का कोई उपाय नहीं है जिस समय मैंने उसको त्यागा-तब वह शार्ङ्गरव आदि आत्मीयजनों के साथ जाने को तत्पर हुई। फिर गुरु की नाईं सन्मान योग्य गुरु-शिष्य शार्ङ्गरव ने 'ठहर' कहा-तब उसने निश्चल भाव से रुककर इस निर्दयी मेरी ओर जिस करुणा भरी दृष्टि से देखा था, वह जहर बुझे काँटे की समान मेरे समस्त अंगों में पीड़ा दे रही है। सखे! अब मेरे बचने की आशा नहीं है।

मिश्र—(स्वगत) अहो! इनको इस प्रकार से शकुन्तला के वशीभूत देखकर मुझको भी सन्ताप उत्पन्न होता है।

विदू०—इस विषय में मेरे मनमें तो ऐसा आता है कि उसको कोई आकाशचारी देवता उठाकर लेगया।

राजा—मित्र! दूसरा कौन उस पतिव्रता को छू सकता है। किन्तु हां,मेनका तुम्हारी सखीकी माता है, यह बात मैंने शकुन्तला की सखियों के ही मुखसे सुनी है। तो मेरे मनमें ऐसी आशंका होती है कि वह मेनका ही अपने किसी मनुष्य द्वारा उसको लेगई होगी।

मिश्र—(आप ही आप) प्यारी के विरह के शोक से उत्पन्न मोह के उपस्थित होने पर भी इस राजा की अनुभव शक्ति देखकर मुझको अचंभा होता है।

विदू०—महाराज! यदि यही बात है, तो आप धीरज रखिये। समय पर उसके संग मिलन होने की आशा है।

राजा—कैसे ?

विदू०—पिता-माता कभी कन्या को सदा पति वियोग से दुःखी नहीं देख सकते।

राजा—मित्र! शकुन्तला के साथ जो मेरा विवाह हुआ है, वह अब मुझको स्वप्न कैसी बात मालूम होरही है, मानों ऐन्द्रजालिक माया या भ्रान्ति हो अथवा मेरे पुण्य के बलसे ही ऐसा हुआ है। जो हो, अब जो वह मुझे फिर न मिली-तो चौमासे में जलके वेगसे जिस प्रकार पहले नदी का एक किनारा ढय जाता है और फिर दूसरा भी ढय पड़ता है, मेरा मनोरथ भी उसी प्रकार विलीन होजायगा।

विदू०—महाराज! ऐसा नहीं होगा। यह अँगूठी ही इसका दृष्टान्त है। निःसन्देह उसके साथ मिलन अचिन्तनीय रूप से होगा।

राजा—(अंगूठी देखकर विषाद से) यह अँगूठी ऐसे स्थान से गिरी है, जहाँ फिर पहुंचना कठिन है, इस कारण यह शोच करने योग्य है। हे

अँगूठी ! फल देखने से जाना जाता है कि तेरा पुण्य बहुत ही थोड़ा है, क्योंकि तू प्यारी के लाल लाल नख और मनोहर अँगुलियों में स्थान पाकर भी गिर पड़ी।

मिश्र – (आप ही आप) यदि अँगूठी दूसरे के हाथ में पहुंच जाती, तो वह शोचने के योग्य होती। सखि ! अब तू बहुत दूर होगई है, केवल मात्र मैं ही श्रवण सुख अनुभव करती हूं।

विदू०–राजन् ! आपने अपना नाम खुदी हुई यह अँगूठी किस अभिप्राय से उसके हाथ में पहिराई थी ?

मिश्र—(आप ही आप) इस व्यक्ति ने मेरे कौतूहल के अनुरूप ही यह प्रश्न किया है।

राजा—मित्र ! सुनो, जब मैं तपोवन से राजधानी को लौटने लगा, तब प्यारी ने डब डबाई हुई आँखों के द्वारा मुझ से कहा—'आर्यपुत्र ! अब कितने विलम्ब में मुझको स्मरण करोगे ?

विदू०–इसके पीछे फिर ?

राजा—फिर मैंने प्यारी के कमल सरीखे हाथ पकड़ कर कहा।

विदू०—क्या कहा ?

राजा—' तुम इस तपोवन में रहकर एक एक दिन मेरे नाम का एक एक अक्षर गिनना, जब अक्षरों की गिन्ती समाप्त हो जायगी, तब मेरे रनवास के रहने वाले लोग आकर तुमको ले जायँगे। मोह के वश होकर मुझ निर्दयी ने फिर वह काम नहीं किया।

मिश्र—रनवास में लेजाने के समय ही विधाता ने धोखा दिया।

विदू—महाराज ! आखिर यह अँगूठी धींवर से काटी हुई रोहू मछली के पेट में पहुँची कैसे ?

राजा—शचीतीर्थ में स्नान करने के समय मेरी प्यारी की अँगुली से निकल कर गंगाजी के प्रवाह में गिर पड़ी थी।

विदू—हां,यह हो सकता है।

मिश्र—(आप ही आप) महाराज अधर्म से डरते हैं, बस इसी कारण तपस्विनी शकुन्तला के संग विवाह होने के विषय में महाराज को संदेह उत्पन्न होगया था, अथवा ऐसा अनुराग क्या कभी अभिज्ञान (मुँदरी) की प्रतीक्षा करता है ? फिर यह विंस्मरण (याद भूलना) कैसे हुआ–कुछ समझ नहीं सकती।

राजा—तो मैं इस अँगूठी को ही बुरा कहता हूँ !

विदू—(कुछेक हँसी से) महाराज ! तब तो मैं भी अपनी इस

लाठी की निन्दा करता हूं कि जब मैं इतना सीधा साधा हूँ, तब फिर मेरी चोज़ होकर तू इतनी टेढ़ी क्यों है ?

राजा—(विदूषक की बात पर ध्यान न देकर) हे अँगूठी ! प्रियतमा के हाथ कोमल और बन्धु की अँगुली से सुशोभित हैं–तू उस हाथ से जल के भीतर क्यों गिरी ? अरे ! यह अँगूठी तो अचेतन पदार्थ है–गुण दोष के विचारने की शक्ति नहीं रखती–किन्तु मैं खूब चेतना सम्पन्न जीव हूं, तब मैंने प्यारी का निरादर क्यों किया ?

मिश्र—(आप ही आप) मैं जो कुछ कहना चाहती थी, राजा ने आप ही उसको प्रकाशित कर दिया।

विदू०—महाराज ! मुझ को तो भूँख बहुत ही सता रही है।

राजा—(विदूषक की बात का अनादर करके) प्यारी ! तुम को अकारण ही परित्याग करके मेरा हृदय अनुताप की आग से जल रहा है, अब फिर दर्शन देकर मुझ पर दया करो।

(चित्रपट हाथ में लिये चतुरिका नाम्नी चेटी आई)

चेटी—यह चित्र लिखित स्वामिनी हैं।

(यह कह कर चित्रपट देती है)

राजा—(देख कर) अहो ! चित्र लिखित होने पर भी प्यारी के रूप की मधुरता कैसी मनोहर है ? इसकी दोनों आँखें आकर्णगामी अपांग विस्तृत हैं, विलास वश भ्रूलता मनोहारिणी है–दाँतों की पाँति हास्य की छटा से सुशोभित है, होंठ बदरी फल की समान कान्ति से परिपूर्ण हैं–अतएव प्यारी का पसीने की बूँदों से युक्त मुख मण्डल इन सब के द्वारा मनोहर शोभामय और विलासित है, चित्र लिखित होने पर भी मानों प्यारी मुझ से बातें कर रही है।

विदू०—(देख कर) साधु ! साधु ! साधु ! आपने महारानी का जो मनोहर भाव-भरित चित्र दिखाया, उस पर मेरी दृष्टि स्तनादि गुप्त स्थानों में नहीं पड़ती। अधिक क्या कहूं मेरी इच्छा होती है कि इनके साथ बात चीत करूँ ?

मिश्र०—(आप ही आप) इस राजा के चित्रपट अंकित करने की चतुराई अत्यन्त चमत्कारिक है। मुझको जान पड़ता है कि मानों प्रियसखी मेरे सामने ही विराजमान होरही है।

राजा—चित्रपट में जो जो बात सम्यक् प्रकारसे चित्रित नहीं होती, चित्रकार उस उस बात को दूसरी भाँति से चित्रित करते हैं तो भी प्रियतमा की लावण्यता कुछेक इस चित्र पट में अंकित हुई है। यद्यपि

चित्रपट समतल है, किन्तु तोभी दोनों स्तन उन्नत की समान और नाभि देश ऊँचा-नीचा जान पड़ता है; तैलाक्त वर्ण के शक्ति गुण वशतः अंग की कोमलता मानों स्थायी रूप से दिखाई देती है। जान पड़ता है कि प्यारी मानों मेरे वदन की ओर देख रही है और मृदु हास्य सहित न मालूम मुझ को क्या कहने को उद्यत हुई है ?

मिश्र०—(आप ही आप) इस प्रकार अनुताप बढ़ने वाले स्नेह के अनुरूप ही हैं।

राजा—(लम्बा श्वांस लेकर) जो प्यारी साक्षात् उतस्थित थी, उस को उस समय त्याग कर अब मैं चित्र-लिखित प्यारी के प्रति बहुत मान दिखा रहा हूं। मित्र ! मैं कैसा निर्बोध, कैसा मूर्ख हूं--जो मार्ग में अमित जल पूर्ण नदियों को त्याग कर अब इस मरीचिका के जल का आश्रय किया है।

विदू०—सखे ! चित्रपट पर तो मुझे तीन भगवती दीखती हैं और तीनों ही देखने योग्य हैं, किंतु इन में श्रीमती शकुंतला जी की कौन सी मूर्त्ति है ?

मिश्र—(स्वगत) यह आदमी सखीके रूप को कुछ भी नहीं समझ सकता—इसके नेत्रों का होना बिफल है, क्योंकि यह आदमी शकुन्तला को नहीं पहचान सकता।

राजा—तो तुम किसको शकुन्तला समझते हो ?

विदू—(इधर उधर को मुख फिराकर) मैं समझता हूँ कि बेनी ढीली होकर जिसके बालों से फूल गिरते हैं, जिसके मुख पर पसीने की बूँदे मोतियों की समान झलक रहीं हैं, दोनों कंधे ऊँचे होने से दोनों हाथ ढीले और नीवो बन्धन सरक रहा है, इन सब कारणों से परिश्रमके द्वारा जो कातर जान पड़ती है और जो जल सींचनेके लिये कोमल नई कोंपलों वाले आमके बिरवे के धोरे खड़ी है, यही वे सन्मान योग्य शकुन्तला जी हैं। यह दोनों उनकी प्रियसखी हैं।

राजा—तुम बड़े बुद्धिमान हो। देखो—यहाँ मेरे भी स्वेदादि सात्विक भाव के सब चिह्न वर्त्तमान हैं और भी देखो-पसीने युक्त अँगुली के सन्निवेश से प्रान्त भाग में समस्त रेखा मिली हुई दीखती हैं, स्फीति-भाव के कारण गालों से आँसुओं की बूँदे गिरती हैं। (चेटी की ओर देखकर) चातुरिके ! चाहें इस विनोद भूमि को मैंने सम्यक् प्रकार अंकित किया हो वा न किया हो-तो भी आधा अंश चित्रित किया है, अतएव तुम वर्णकवर्त्तिका (चित्रनिर्माण की सामग्री विशेष) ले आओ।

चेटी–आर्य माधव्य ! जब तक मैं लौट कर न आऊं–तब तक तुम इस चित्रपट को लिये रहो।

राजा—मैं ही तब तक लिये रहूंगा (चित्र लिया)

(चेटी का प्रस्थान)

विदू०—महाराज ! इसमें और क्या अंकित किया जायगा ?

मिश्र०—(आप ही आप) मुझको जान पड़ता है कि जो स्थल मेरी प्यारी सखी को प्रिय थे–महाराज ने उन्हीं को अंकित करने की इच्छा की है।

राजा—सखे ! सुनो, जिसकी रेतीली भूमि में हंस के जोड़े बैठे हैं, उस मालिनी नदीको अंकित करना उचित है। फिर इस मालिनीके दोनों पार्श्व में गौरी गुरु हिमालय का हरिण सेवित पवित्रता कारक प्रत्यन्त पर्वत भी लिखना चाहिये। जिनकी शाखाओंमें सूखने के लिये मुनियोंके चीर लटकते रहते हैं, उन वृक्षों के नीचे हिरनियाँ कृष्णसार हिरन के सींगसे अपनी अपनी बाईं आँख को खुजाती हैं–मैं उनको भी अंकित करना चाहता हूँ।

विदू—(आप ही आप) सखा की जो सम्मति दीखती है–उससे तो जान पड़ता है कि यह लम्बी दाढ़ी वाले बल्कल धारी तपस्वियों से इस चित्र को भर डालेंगे।

राजा—मित्र ! शकुन्तला का मनोमत वेश विन्यास करने पर भी भूल होगई है।

विदू—वह कैसी ?

मिश्र—(आप ही आप) जो वनवास और कन्या भाव के सदृश है–जान पड़ता है–वही चित्रित करने को भूल गये हैं।

राजा—जिसका बन्धन–सूत्र कर्णपुर में सन्निवेशित है, वह फलान्वित केशर युक्त शिरीष–पुष्प चित्रित नहीं किया गया है. और फिर दोनों स्तनों के मध्य भाग में शरदके चन्द्र किरण की नाईं कोमल मृणाल–सूत्र भी अंकित करने से रह गया है।

विदू—यह सन्मान के योग्य शकुन्तला लाल कमल की समान सुशोभित हाथ से अपने मुखको छिपाये चकित सी क्यों हो रही ? (विचार पूर्वक देख कर हँसी से) क्यों महाराज ! यह दासी पुत्र फूलों के रसका चोर भौंरा भगवती शकुन्तला के मुख पर मंडराता है।

राजा—इस निर्लज्ज को दूर करो।

विदू—राजन् ! आप ही दुष्टों को दण्ड देने वाले हैं—इसलिये आप ही इसको निवारण कर सकते हैं।

राजा—सत्य कहते हो। अरे फूल वाली लता के प्यारे पाहुने ! तू यहाँ खेद उठाकर बैठने का श्रम क्यों कर रहा है ? यह पुष्पलता नहीं वरन इस पुष्पलता में बैठी हुई तेरे प्रति अनुरागवती मधुकरी (भौंरी) प्यास से दुःखित होकर भी तेरी प्रतीक्षा कर रही है, तुझे छोड़कर वह किसी प्रकार भी मधुपान करने में प्रवृत्त नहीं होती। इसलिये तुझको यहाँ से शीघ्र चला जाना चाहिये।

मिश्र०—(आप ही आप) इन्होंने तो बड़ी ही उत्तम रीति से निवारण किया।

विदू०—भौंरे की जाति बड़ी ढीठ होती है, निवारण करने पर भी नहीं मानता। फिर लौट आता है।

राजा—(रोष से) मधुकर ! तैंने मेरी आज्ञा नहीं मानी ? तो सुन ! मैं विरहानल से प्यारी के अम्लान नव पल्लव-तुल्य स्पृहणीय जिन बिम्बाधरों का सदय भाव से चुम्बन करता हूँ, तू यदि उन अधरों में निर्दय भाव से दंशन करेगा, तो मैं अभी तुझको पद्म के भीतर बन्द कर दूंगा !

विदू०—देखता हूं, आपने जो इसको कड़ा दण्ड दिया, उससे यह भौंरा क्यों न डरेगा ? (हँसकर मन ही मन) यह तो उन्मत्त की समान हो ही गये हैं, इनके साथ रहने से तो मुझे भी उन्मत्त बनना पड़ा।

राजा—क्या मना करने पर भी तू नहीं हटा ?

मिश्र०—(आप ही आप) क्या आश्चर्य है ? यह प्रवास विप्रलम्भ नामक रस धीर व्यक्ति को भी विकृत कर देता है।

विदू०—राजन् ! यह चित्रपट है ?

राजा—कैसा चित्र ?

मिश्र०—मैंने भी इसको अब चित्र जाना। जैसी बात है, उसके अनुसार ही राजा चिन्ता का अनुगामी हो रहा है, सुतरां-चित्रपट में अंकित छवि देखकर इन्होंने जो उसको असली समझा, इसमें फिर अचम्भा ही क्या है ?

राजा—यह सब क्या केवल दोष के लिये ही अनुष्ठित हुआ है ? मैं एकाग्र चित्त से प्यारी का साक्षात् दर्शन कर रहा था, तैंने याद दिला कर प्यारी को फिर चित्राङ्कित कर दिया, अर्थात् वह चित्र में परिणत होगई [आँसू डाल दिये]

मिश्र—(मन ही मन) विरही जनों को यह मार्ग पूर्वापर के विरुद्ध ही मालूम होता है। अर्थात् विरही को सब ओर दुःख ही दुःख दीखता है।

राजा—मित्र ! मैं निरन्तर इस कष्ट को किस प्रकार अनुभव करूँ ? अब प्यारी से स्वप्न में भी मिलने की आशा नहीं है, क्योंकि लगातार जागने के कारण वह मार्ग भी बन्द होगया, और अनवरत आँसू बहने से चित्र-लिखित प्यारी को देख भी नहीं सकता।

मिश्र०—(आप ही आप) आपने प्रियसखी को सहचरी के समक्ष ही प्यारी के त्याग जनित दुःख को सर्वथा धो डाला।

चतुरिका आई।

चतु०—महाराज की जय हो ! महाराज की जय हो !! मैं रुई और रंग का डिब्बा लिये यहाँ आ रही थी।

राजा—सो फिर क्या हुआ ?

चेटी—पिङ्गलिका ने महारानी वसुमती देवी के निकट यह बात प्रकाशित करदी—तब उन्होंने 'आर्यपुत्र के निकट मैं ही जाऊंगी' कहकर वह सब सामग्री बल पूर्वक छीनली।

विदू०—तुम देवी के निकट से कैसे भाग निकलीं ?

चेटी—देवी के दुपट्टे का आँचल लता-विटप में उरझ गया था, पिंगलिका जब उसको छुड़ाने लगी, तभी मैं भाग आई।

राजा—मित्र ! यह वसुमती देवी अत्यन्त ही गर्वीली हैं, वह आ रही हैं, अतएव अब तू इस चित्र को छिपा रख।

विदू०—यही क्यों नहीं कहते कि तू मुझको भी छिपाले ? (चित्र हाथ में लेकर) यदि आप रनवास रूपी कूट फाँसी से छूट जायँ, तो मुझे इस मेघाच्छन्न नामक प्रासाद से ऊँची आवाज देकर बुलालेवें। मैं वहां इस चित्र को छिपा दूँगा और वहाँ पारावत के अतिरिक्त इस बात को और कोई नहीं जान सकेगा।

(बड़े वेग से विदूषक गया)

मिश्र०—(आप ही आप)यद्यपि अब महाराज का चित्त अन्य रमणी में आसक्त है, किन्तु तो भी यह पहले नेह की रक्षा करते हैं। महाराज का प्रेम अटल दीखता है।

प्रतिहारी का प्रवेश।

प्रति०—महाराज की जय हो ! महाराज की जय हो !!

राजा—प्रतिहारी ! तैंने मार्ग में महारानी वसुमती को तो नहीं देखा ?

प्रति०—देखा था-पर स्वामी ! वह मेरे हाथ में एक पत्र देकर पीछे को लौट गईं।

राजा—काम के गौरव (समय) को वे जानती हैं, बस-उन्हों ने वही किया कि जिस से मेरे कार्य में विघ्न न पड़े।

प्रति०—देव ! श्रेष्ठ मन्त्री ने आपसे यह कहला भेजा है-कि राजकाज की बहुतायत से आज (नगर का) केवल एक ही कार्य देख सका हूं-सो इस पत्र में लिखा है—श्रीमान देखलें।

राजा—पत्र को यहाँ रक्खो।

प्रति०—पत्र को समीप में रखदिया।

राजा—(पत्र पढ़ता है) महाराज को ज्ञात हो कि नौका डूबजाने से समुद्र में नाव के द्वारा व्यापार करने वाले धनवृद्ध नामक वैश्य ने प्राण-त्याग किया है। उसके कोई सन्तान नहीं है और उसके असंख्य कोटि-रत्न विद्यमान् हैं, उनका अधिकारी इस समय राजा ही है, अतएव जो करना चाहिये-उसके लिये महाराज आज्ञा देवें!

राजा—(विषाद से) निःसन्तान होना बड़ा ही क्लेश दायक है। अच्छा-प्रतिहारी ! जब कि वह वैश्य बड़ा धनवान् है, तो उसके घर में बहुत सी स्त्रियों का रहना संभव है—अतएव खोज करो कि उसकी कोई स्त्री गर्भवती है ?

प्रति०—सुना है-अयोध्या के सेठ की एक बेटी जो उसकी पत्नी है-वह गर्भवती है और अभी उसका पुंसवन कार्य सम्पन्न हुआ है।

राजा—जाओ-हमारे मंत्री से यह बात कहदो कि वह गर्भस्थ बालक ही पिता के धन का अधिकारी होगा।

प्रति०—स्वामी की जो आज्ञा। (गया)

राजा—एक बार ठहरो तो।

प्रति०—(फिर लौट कर) लीजिये यह मैं आगया।

राजा—सन्तान है वा नहीं-इसके जानने की भी क्या आवश्यकता है ? स्नेह परवश बान्धवों के द्वारा जिन प्रजाजनों का वियोग होता है, वह पाप रहित होने से दुष्यन्त (राजा) उन का बन्धु घोषित होगा।

प्रति०—यह ढँढोरा पिटवा देना चाहिये। (गया)

(प्रतिहारी बाहर जाकर फिर आया)

राजा—(दीर्घ और उष्ण श्वाँस छोड़कर) हा ! जिस वंश में आगे को सन्तान नहीं होती, उसकी सम्पदा पराये घर में चली जाती है, इसी भाँति मेरे पीछे भी पुरुवंश को राजलक्ष्मी भी अकाल में बोई भूमि के समान रह जायगी।

प्रति०—ऐसा अमंगल कभी न हो।

राजा—जब कि मैंने उपस्थित हुए मंगल (सुख) का तिरस्कार किया, तो मुझे धिक्कार है !

मिश्र—(आप ही आप) प्रियसखी को हृदय में धारण करके ही महाराज ने यह अपनी निन्दा की है-इसमें संदेह नहीं।

राजा--हाय! यथा समय बीज बोईहुई फल देनेवाली पृथ्वीके समान वंश की गौरव स्वरूपिणी भार्या को मैंने परित्याग किया। हा ! एक वार भी मैंने नहीं सोचा कि इसमें मैंने अपने अनुरूप पुत्र उत्पन्न होने का बीज बोया है।

मिश्र—(स्वगत) अब आपकी सन्तान अटूट होगी।

चेटी—(प्रतिहारी से) आर्य ! मंत्री ने यह पत्र भेज कर क्या विचार किया। देख-इससे राजा के नेत्रों से अश्रु-जल निकलने लगा। यह अपनी बुद्धि से धैर्य धारण करके इस शोक को नहीं छोड़ेंगे-इसलिये तू आर्य माधव्य को बुलाला, वही इस शोक को निवारण कर सकता है-वह मेघाच्छन्नगृह में अवस्थित है।

प्रति—बात तो तुमने ठीक ही कही है। (गया)

राजा—दुष्यन्त के पिण्डभोजी पितर इस समय अपने मनमें संशय करते होंगे,क्योंकि मेरे मरने पर मेरे वंश में वेद की संहिता के अनुसार कौन व्यक्ति पिण्ड दान करेगा ? अतएव मैं पुत्र हीन होकर कातर हृदय से आँसू बहाता हुआ जो तर्पण जल प्रदान करता हूं-उसी को मेरे पितृ पुरुष दुर्लभ समझ कर ग्रहण करते हैं।

मिश्र—(आप ही आप) हाधिक् ! दीपक के विद्यमान् होते हुए भी आज इस राजर्षि को अंधकार दीख रहा है

चेटी—महाराज ! आप संताप मत कीजिये। आप तरुण अवस्था वाले हैं, इसलिये अपरापर देवियों के उदर अनुरूप सन्तान उत्पन्न करके पूर्व पुरुषों से उऋण हूजिये [स्वगत] जान पड़ता है--इन्होंने मेरी बात नही मानी। अतएव औषधि होने पर भय दूर हो जायगा।

राजा—(शोक प्रकाश पूर्वक) अप्रशस्त (संकीर्ण) स्थान में जिस प्रकार सरस्वती नदी का वेग विलीन होता है, मेरे निःसन्तान होने पर जड़ से ही जिसकी सन्तति अविच्छिन्न है,वह यह पुरुवंश भी उसी प्रकार अस्त हुआ।

मूर्च्छा।

चेटी—(घबराहट से) महाराज ! सावधान हूजिये। सावधान हूजिये

मिश्र—(आप ही आप) मैं क्या अभी इनका स्वास्थ्य ठीक करदूं ? देवताओं की माता अदिति ने शकुन्तला को धीरज देते देते कहा था कि देवता लोग यज्ञका भाग मिलने के लिये उत्कंठित हुए हैं; वे ऐसा काम करेंगे-जिससे तेरा पति शीघ्र तुझे प्रसन्न करे। यह बात भी तो सुनी है, इस लिये यहाँ अब क्षण भर का भी विलम्ब नहीं करना चाहिये। इस समय यह समाचार देकर शकुन्तला को धोर वधाऊँ।

(आकाश में उड़ गई)

(नैपथ्य में) क्या ब्राह्मण को रक्षा करने वाला कोई नहीं है ?

राजा—(चेतना प्राप्त होने पर कान लगा कर) यह क्या ? यह तो माधव्य के कंठ स्वर की नाई आर्त्तनाद सुनाई आता है न ?

चेटी—शान्त प्रकृति वाला माधव्य चित्रपट हाथ में लेकर चेटी के संग गया है।

राजा—चतुरिके ! तुम जाओ मेरी आज्ञा से देवी का तिरस्कार कर के कहना कि वे परिजनों को निवारण क्यों नहीं करतीं।

(चेटी चली गई)

(नैपथ्य में फिर वही शब्द हुआ)

राजा—निःसन्देह माधव्य ब्राह्मण भयभीत होकर आर्त्तनाद कर रहा है, क्योंकि डरजाने से ही उसके कंठ का स्वर बिगड़ गया है। यहां कौन है ?

(कञ्चुकी आया)

कंचुकी—देव ! आज्ञा दीजिये।

राजा—देखो ! माधव्य ब्राह्मण क्यों आर्तनाद करता है ?

कंचुकी—देखता हूँ—क्या हुआ ?

(कञ्चुकी चला गया)

(घबराया हुआ कञ्चुकी फिर आया)

राजा—पार्वतायन ! कोई डर की बात तो नहीं है ?

कंचुकी—वैसा कोई डर नहीं है।

राजा—तो फिर इतना काँपते क्यों हो ? यद्यपि बुढापे के कारण तुम पहले से ही काँपते हो किन्तु इस समय उसकी अपेक्षा अधिक तर कम्प जान पड़ता है। पवन जिस प्रकार पीपल के पत्ते को कम्पायमान करता है। तुम भी उसी प्रकार काँपते हुए दिखाई दे रहे हो।

कंचुकी—महाराज ! सुहज्जन की रक्षा कीजिये।

राजा—किससे रक्षा करूँ ?

कंचुकी—महाक्लेश से।

राजा—खोलकर कहो ?

कंचुकी—मेघाच्छन्न नामक जो तुम्हारी दिग्दर्शन की अट्टालिका है।

राजा—है-फिर इससे क्या ?

कंचुकी—उस अट्टालिका के ऊपरी भाग में बैठकर समस्त पारावत (कबूतर) विश्राम पाते हैं, उसी प्रासाद के शिखर से कोई एक गुप्त मूर्त्ति पिशाचादि आकर आपके मित्र माधव्य को निग्रह करते करते लेगया है।

राजा—(सुनते ही सहसा उठकर) अब भी मेरे घर में फिर भूत का डर ? अथवा राजाओं को प्रायः ही अनेक विघ्न उपस्थित होते हैं, पहले तो अपनी ही भूल से भाँति भाँति की दुर्घटना उपस्थित होती हैं, उन्हीं का प्रतीकार नहीं कर सकता। फिर प्रजामें जो कौन मार्ग अवलम्बन करके क्या करता है, उसको तो रोक ही कौन सकता है ?

(नैपथ्य में फिर) अरे ! जल्दी दौड़ कर आओ। जल्दी दौड़ो।

राजा—(सुनकर वेगसे चलता हुआ) मित्र ! डरोमत ! डरोमत !!

(नैपथ्य में) अरे ! डरूँ कैसे नहीं ? नहीं जान पड़ता, जन कौन आकर मेरी गर्दन के तीन टुकड़े किये देता है ?

राजा—(चारों ओर देखकर) धनुष ! धनुष !!

(धनुष हाथमें लिये प्रतिहारी आया)

प्रति०—महाराज की जय हो ! यह धनुषबाण और हस्तवार (१) मैं ले आया हूं।

(राजा का सशब्द शरासन ग्रहण करना)

(नैपथ्य में) यह मैं तेरे गले के नवीन (ताजे) रुधिर की इच्छा करता हूँ; व्याघ्र जैसे पशुओं को बध करता है, वैसे ही मैं तुझको बध करूँगा और तू छट पटायेगा। अब दुष्यन्त राजा दुःखी जनों का भय दूर करने के लिये सशब्द शरासन ग्रहण करके तेरी सहायता करे।

राजा—(रोष से) क्या मुझको उद्देश्य करके कहता है ? आ ठहर ! ठहर !! रे नीच राक्षस ! अब भी तू मेरी दृष्टि के सामने नहीं आता ? (धनुष उठाकर) पार्वतायन ! मुझको सोपान मार्ग दिखाओ ?

---

(१) जो धनुष की प्रत्यंचा की फटकार से भुजा को बचाने के लिये पहुंचे पर धारण किया जाता है, उस अस्त्र को हस्तावर कहते हैं।

कंचुकी—देव ! इस ओर। इस ओर।

(यह कहकर शीघ्र राजा के समीप गया)

राजा—(चारों ओर देखकर) अरे ! यह स्थान तो सूना दिखाई देता है। कोई भी तो नहीं है ?

(नैपथ्य में) रक्षा करो ! रक्षा करो !! मैं आपको देख रहा हूँ, किन्तु आप मुझे नहीं देखपाते। बिल्ली जब चूहे को पकड़ती है, तो जैसे फिर चूहे के जीवन की आशा नहीं रहती, मैंने भी उसी प्रकार जीवन की आशा छोड़ दी है।

राजा—हे तिरस्कारिणी विद्या गर्वित ! मेरा अस्त्र क्या अब भी तुझ को नहीं देख सकेगा ? खड़ा रहा सखाके सम्बन्ध से तेरा विश्वास नहीं होता। ले यह मैं बाण छोड़ता हूँ। तू बध के योग्य है,यह बाण तुझको मार कर रक्षणीय माधव्य ब्राह्मण की रक्षा करेगा। प्रसिद्ध है कि हंस जल मिले दूध से जलका अंश त्याग कर दूध के अंश को ही ग्रहण करता है, मैं भी उसी प्रकार तुझको मार कर माधव्य की रक्षा करूँगा।

(बाण को छोड़ता है)

(इन्द्र–सारथी मातलि और विदूषक आया)

मातलि—आयुष्मन् ! देवेन्द्र ने दानवों को आपके शर–सन्धान का लक्ष्य(निशाना)बनाया है,आप उन दानवों परही इस शरासन को खेंचिये। सुहृद के प्रति साधु पुरुषों की प्रसाद स्निग्ध दृष्टि ही पड़ती है, दारुण वाण कभी नहीं गिरते।

राजा—(सिटपिटा कर बाण का प्रति संहार करके) हे देवेन्द्र-सारथे मातलि ! आप निर्विघ्न तो आये ?

विदू०—मनस्विन् ! मनुष्य पशुओं को जिस भाव से मारते हैं, इस व्यक्ति ने मुझको उसी भाव से मारना आरम्भ किया था, इसीसे फिर आप कुशल प्रश्न कर रहे हैं।

मातलि—(कुछेक हँसकर) आयुष्मन् ! देवेन्द्र ने जिस लिये मुझको आपके निकट भेजा है, वह सुनिये

राजा—सावधान हूँ कहिये !

मातलि—कालनेमि की सन्तान दानवगण अत्यन्त दुर्द्धर्ष हो उठे हैं।

राजा—देवर्षि नारद जी के मुखसे यह बात पहिले सुनी थी।

मातलि—वे हो सब दानव आपकेसखा देवराज से अवध्य हैं। इस प्रकार निर्दिष्ट है कि, आप ही युद्ध में उनका संहार कर सकते हैं।

विचार कर देखिये कि रात्रि के अंधकार को दूर करने की सामर्थ्य सूर्य में नहीं होती, किन्तु चन्द्रमा सहज में ही उस अंधकार को दूर कर सकता है। अब आप अस्त्र शस्त्रों के सहित देवरथ में आरूढ़ होकर विजय प्राप्त करने के लिये यात्रा कीजिये।

राजा—देवेन्द्र के इस वहु-सन्मान से मैं अनुग्रहीत हुआ । अब पूछता हूं कि आपने माधव्य के प्रति ऐसा व्यवहार क्यों किया ?

मातलि०—(कुछेक हँसकर) वह बात भी कहता हूं। किसी कारण से आपका अन्तःकरण संतप्त होरहा था और इसीलिये आपका चित्त सुस्थ नहीं था, यह देखने पर आपको कुपित करने के लिये इसके प्रति ऐसा व्यवहार किया था। काठ की रगड़ से जिस प्रकार काष्ठ-स्थित अग्नि प्रज्वलित हो उठती है, और सोता हुआ साँप जैसे ताड़िन होनेपर ही अपना फन उठाता है, उसी प्रकार उत्तेजित होनेपर तेजस्वो पुरुष भी अधिकतर तेजस्वी हो उठते हैं।

राजा—आपने काम तो युक्ति संगत ही किया है। (विदूषक के प्रति) मित्र ! देवेन्द्र की आज्ञा उल्लंघन करने के योग्य नहीं है, अतएव तुम जाओ मेरे कहे अनुसार यह विषय प्रकट करके मन्त्री से कहना कि केवल आपकी बुद्धि ही प्रजा की रक्षा करे और मेरा यह शरासन दूसरे कामों में नियुक्त रहे।

विदू०—आपकी जैसी आज्ञा [गया]

मातलि—आयुष्मन् ! रथ पर आरूढ़ हूजिये।

राजा—(रथ पर चढ़ता है)

[सब का जाना]

[छठा अंक समाप्त]

—-*—-

सातवाँ अंक।

(राजा दुष्यन्त और मातलि रथ पर बैठे आकाश से उतरते हैं)

राजा—मातले ! देवराज इन्द्र की आज्ञा का पालन करके भी मैं अपने आपको इतने बड़े सत्कार के योग्य नहीं समझता हूं कि जितना देवराज ने मेरा सत्कार किया है।

मातलि—(कुछेक हँसकर) दोनों को ही यह संकोच उपस्थित हुआ है, क्योंकि आप देवेंद्र का ऐसा महोपकार साधन करके उनके किये सन्मान को देखकर उसे हल्का समझते हैं, और उधर देवेन्द्र भी आपके इस सन्मान एवं आपके किये महोपकार को स्मरण करके निज कृत सन्मान उस युक्त नहीं मान रहे हैं।

राजा—मातले! नहीं–नहीं, ऐसा नहीं है। देवेन्द्र ने विदा के समय जैसा सन्मानादि किया, वह मनोरथ के भी परे है। उन्होंने मुझको देवताओं के सामने आधे आसन पर बैठाला और निकट खड़े हुए पुत्र जयन्त को प्रार्थी देखकर भी मधुर हँसी से हरिचन्दनाङ्कित वक्षःस्थलस्थ मन्दार को माला मेरे गले में पहिरादी।

मातलि—महाराज! देवराज के निकट से आप कौनसा द्रव्य (सन्मान) पाने के योग्य नहीं हैं? देखिये–देवराज के पक्ष में कण्टक-स्वरूप दानवों को आपने इस समय नतपर्व शर द्वारा नाश कर डाला। पूर्वकाल में भी इसीप्रकार अनेक वैरियों को निर्मूल किया था।

राजा—उस विषय में देवराज की ही महिमा है, नियुक्त किये भृत्यगण जिस कार्य में सिद्धि करते हैं, वह केवल प्रभु की महिमा के गुण से ही सम्पन्न करते हैं। हजार किरणों वाले सूर्य यदि अरुण को आगे नहीं रखते, तो क्या वे अन्धकार का नाश करने में समर्थ होते?

मातलि—आप सरीखे महात्माओं के पक्ष में यही बात शोभा देती है। (कुछ दूर जानेपर) आयुष्मन! आप सुरलोक प्रतिष्ठित यश–सौभाग्य को देखिये अर्थात् स्वर्गलोक तक पहुंची हुई अपने यश की महिमा को देखिये! देवताओं ने संगीत के उपयुक्त अर्थ सहित पदों की रचना करके सुरबालाओं के अंग राग समन्वित वर्णों द्वारा कल्पित वस्त्र पर आपका चरित्र लिख रक्खा है।

राजा—मातले! दानवों को मारने के उत्साह में प्रथम दिन इस ओर से जाते हुए हमने स्वर्ग का मार्ग भली प्रकार नहीं देखा था, बताओ तो अब हम वायु के किस मार्ग में चलते हैं?

मातलि—महाराज! जो वायु आकाश मार्ग में स्थित रहकर मन्दाकिनी को धारण कर रहा है, जो चक्राकार आवर्त्तन के द्वारा ज्योतिष्क-मण्डल की किरणमाला को घोड़ों के मुख की लगाम के समान धारण कर रहा है और जिसमें किसी रज के मिलने की संभावना नहीं है; यह उसी प्रवह नामक वायु का मार्ग है। वामनदेव के दूसरे पग द्वारा इस मार्ग को आक्रमण करने से यह पवित्र होगया है।

राजा—मातले! इसी लिये मेरी नेत्रादि बाह्य इन्द्रिय और मन के सहित अन्तरात्मा प्रफुल्लित होउठा है। (रथ के पहियों को देखकर) अब हम मेघ-मण्डल के आकाश मार्ग में उतर आये।

मातलि—आयुष्मन्! यह आपने कैसे समझा?

राजा—इस पहाड़ की गुफा से चातक पक्षी निकल कर पहियों में लगीं जलकी बूंदों के लालच से पहियों के ऊपर आ आकर गिरते हैं और रथ में जुते हुए घोड़े विद्युल्लिप्त होकर अन्त भाग में जल युक्त मेघ-माला के ऊपर जाने की सूचना देते हैं।

मातलि—बहुत ही थोड़ा समय बीतने पर आप अपने अधिकार के स्थान में आनकर उपस्थित हुए।

राजा—(नीचे की ओर देखकर) मातले! वेगसे उतरने के कारण मनुष्य लोक अत्यन्त ही विचित्र सा जान पड़ता है। क्योंकि पहाड़ मानों मस्तक उठाकर ऊपर को उठते हैं। पृथ्वी मानों पहाड़ों के शिखरसे नीचे को खिसकी जाती है और वृक्ष कंधों तक प्रकाशित होकर मानों अपने पत्तों से बाहर निकलते हैं। दूरी के कारण नदी के जल का जो जो भाग विच्छिन्न मालूम होता था—अब वह पास ही दिखाई देताहै, जान पड़ता है मानों कोई मनुष्य समस्त भुवन को फेंक कर हमारे पार्श्व में लाता है।

मातलि—आयुष्मन्! आपने ठीक ही देखा है।

राजा—(भूमि को सादर देखकर) अहो! यह पृथ्वी का दृश्य अति मनोहर है। हे मातले! कहो तो पूर्व और पश्चिम सागर के बीच यह कौनसा पर्वत है, जिसमें संध्या के मेघ से अर्गला की समान सुनहरी धारा निकलती दीखती है।

मातलि—आयुष्मन्! यह किम्पुरुष पर्वत है, इसका नाम हेमकूट है। यह तपस्वियों का वास स्थान है, ब्रह्मा जी के मानस पुत्र मरीचि से जिन प्रजापति की उत्पत्ति हुई है, वे देवता तथा असुरों के जन्मदाता कश्यप जी इस पर्वत में पत्नी सहित तपस्या में लग रहे हैं।

राजा—तो कल्याण प्राप्त करने के लिये इस समय को नहीं चूकना चाहिये। मैं चाहता हूं कि भगवान् महर्षि की परिक्रमा करके जाऊं?

मातलि—आयुष्मन्! यह मुख्य कर्त्तव्य है (उतर कर). लो यह मैं उतर लिया।

राजा—(अचंभे में से) आपका रथ उतर आया, किन्तु मैं कुछ भी नहीं जानसका। जिस समय रथ भूमि पर आया—तब कुछ भी शब्द न

हुआ, धूरि तक भी दिखाई न दी और भूमि पर आकर भी उद्गति शून्य हुआ है।

मातलि ! महाराज ! आपके और देवराज के रथ में केवल इतना ही अन्तर है।

राजा—मरीचिनन्दन कश्यपजी का आश्रम कहाँ है ?

मातलि—(हाथ से दिखाकर) जिनके देह का आधा अँश बाँवियों में ढक गया है, सूर्य की कैंचली दूसरा यज्ञसूत्र (जनेऊ) है, पुरानी व सूखी लताएँ वलयाकार भाव से जिन के गले को अतिशय पोड़ित करती हैं, जिनके कन्धों तक लटकते हुए जटा-जाल में पक्षियों ने अनगिन्त घौंसले बना लिये हैं, जो सूर्य के समान दृष्टि रखकर स्थाणुकी समान अचलभाव से अवस्थित रहते हैं, उन भगवान् कश्यपजी का आश्रम इसी स्थान में है।

राजा—(देखकर) ऐसा कठोर तप करने वाले महर्षिको नमस्कार है।

मातलि—(घोड़ों की रास खेंच कर) महाराज ! यह मन्दार के वृक्ष वृद्धि को प्राप्त होकर विराजित हैं--यहीं प्रजापति कश्यपजी का आश्रम है-यह लो हम आश्रम में आगये।

राजा—अहो ! यह स्थान स्वर्ग से भी अधिक प्रसन्नता देने वाला है, मैं मानों अमृत के सरोवर में निमग्न हुआ हूँ।

मातलि—(रथ को खड़ा करके) महाराज ! अब उतरें।

राजा—(उतर कर) आप क्या सोचते हैं ?

मातलि—यह रथ इस समय संकेत विशेष के द्वारा नियमित होरहाहै, अतएव मैं भी उतरता हूँ (उतर कर) आयुष्मन् ! इस ओर से आइये ! इस ओर से आइये ! पूजनीय तपस्वियों के आश्रम का दर्शन कीजिये।

राजा—विस्मय सहित आश्रम स्थल और तप-फल दोनों का ही दर्शन करता हूँ। जहाँ भाँति-भाँति के भोग देसकने वाले कल्पवृक्ष हैं, उसी वन भूमि में यह वायु संयमादि के द्वारा प्राणायाम करते हैं; कनक पद्म की रेणु के गिरने से जो जल पोले रँग का होगया है, यह धर्मानुष्ठान के लिये उसी जल में स्नानादि क्रिया सम्पन्न करते हैं और रत्नशिलामय गुहाओं में जो दिव्यांगना वास करती हैं, उनके समीपवर्त्ती होने पर भी यह इन्द्रिय संयम पूर्वक अवस्थान करते हैं। अन्यान्य ऋषिगण जिस स्थान को प्राप्त करने के हेतु तपस्या करते हैं, और यह मुनि यहाँ रहकर तपस्या करते हैं-अतएव इनके तप का फल जो कितना श्रेष्ठ है, उसको आप ही विचारिये।

मातलि—महापुरुषों की कामना लगातार उन्नति की ओर ही बढ़ती है (इधर उधर घूम कर आकाश की ओर) हे वृद्ध शाकल्य ! कहो भगवान् कश्यप जी इस समय क्या कर रहे हैं ? (सुन कर) क्या कहते हो, दाक्षायणी अदिति के पुण्य क्रिया आचरण पूर्वक प्रश्न करने पर महर्षि कश्यप जी उनसे उसी के विषय में कह रहे हैं, अतएव उस प्रसंग के अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिये। (राजा की ओर देखकर) आप इस अशोक वृक्ष की जड़ में बैठिये, मैं देवराज के पिता के पास जाकर आप के आने का सम्वाद देता हूं।

राजा—आप की जो इच्छा।

(यह कह कर उसी स्थान में अवस्थान)

(मातलि गया)

राजा—(दाहिनी भुजा का फड़कना देखकर) हे भुजा ! तू वृथा ही क्यों फड़कती है ? इच्छा सिद्ध होने की संभावना तो कुछ भी दिखाई नहीं देती। पहिले जिस सुख दायक विषय का निरादर किया जाता है, अन्त में वही दुःख का रूप धारण करता है।

(नैपथ्य में) अरे ! चंचलता मत करे, जहाँ तहाँ अपने स्वभाव को प्रकाशित कर।

राजा—(उसी ओर को कान लगाकर) वह स्थान तो विनय का है, वहां चपलता करने का किसको निषेध होरहा है ? (शब्दानुसार देखकर अचंभे से) अहो ! यह तो युवा की समान पराक्रमी एक बालक है, दो तापस-बालाओं ने इसको बल पूर्वक पकड़ रक्खा है। एक सिंह के बच्चे ने भली-भाँति सिंहनी का स्तन (दूध) नहीं पिया है—इस अवस्था में उसका शिर पकड़ कर खैंचता हुआ यह बालक उसको कष्ट दे रहा है।

(सिंह को घसीटता एक बालक आया और दो तपस्विनी उसे बरजती हुई आईं)

बालक—अरे सिंह ! तू अपना मुख खोल, मैं तेरे दाँत गिनूँगा ?

पहिली तपस्विनी ! रे ढीठ बालक ! यह जन्तु हमारी सन्तान के समान है—तू इसको कष्ट क्यों देता है ? तेरा दर्प बहुत बढ़ गया है। ऋषियों ने तेरा नाम 'सर्वदमन' ठीक ही रक्खा है ?

राजा—इस बालक को देखकर इसके ऊपर और सपुत्र की समान मेरे हृदय में स्नेह उत्पन्न होता है। (सोच कर) जो कि मैं निःसन्तान हूँ, इसीलिये मेरे हृदय में वात्सल्य भाव उदय होता है।

दूसरी तपस्विनी—यदि तू सिंहनी के बच्चे को नहीं छोड़ देगा, तो सिंहनी तुझको निःसन्देह परास्त करेगी।

बालक—(हँसकर) ओः ! इससे तो मैं बहुत ही डरगया। (यह कह कर मुँह चिढ़ाता है)

राजा-(आश्चर्य से) यह बालक तो महातेज का बीज स्वरूप मालूम होता है। इस समय काष्ठ की प्रतीक्षा करके स्फुलिंग (आग के पतंगे) की अवस्था में विद्यमान् है।

पहली तपस्विनी-इस सिंह के बच्चे छोड़ दे, मैं तुझे दूसरा खिलोना देती हूँ।

बालक—कहाँ ? कैसा दोगी ? दो।

(हाथ फैलाता है)

राजा-(बालक का हाथ देखकर) इस बालक में पराक्रम की ही अधिकता नहीं है, वरन यह चक्रवर्त्ती के लक्षणों वाला है। लोभनीय द्रव्य के अति लोभ वश हाथ फैलाने से देखा जाता है, कि इसके हाथ की अंगुलियां संयतभाव से गठित हैं, जिसका दल भली भाँति दिखाई नहीं देता, ऐसे उष्ण कालीन विकसित कमल की समान यह अंगुलियाँ लालरंग की दिखाई देती हैं।

दूसरी तपस्विनी-सुव्रते ! छोड़ दो—केवल बातों से ही यह बालक शान्त नहीं होगा। संकोचन नामक मुनि कुमार ने मृत्तिका द्वारा अनेक वर्ण के जो मोर बनाये हैं, तुम पर्णकुटी से उनको लाकर इसे देदो।

प्रथम तपस्विनी—यही करना चाहिये।

[गई]

बालक—तबतक मैं इस सिंह के बच्चे से ही खेलूं ?

तपस्विनी—(देखकर कुछेक हास्य सहित) इसको छोड़ दो।

राजा-यह बालक उद्दण्ड होनेपर भी इसकेप्रति मेरे हृदयमें मोह उत्पन्न होता है (दीर्घश्वाँस लेकर)अकारण हँसने से जिसके दाँतोंको पंक्ति कुन्द कलीसी दिखाई देती हैं, जिसके तोतले बोल कानोंको सुख दायक हैं, जो गोदी में चढ़ने से अत्यन्त आनन्द प्रकाश करता है, उस पुत्रको धारण करके मनुष्य उसके अंगमें लगी धूरि के द्वारा मलीन होकर भी अपने आपको धन्य समझते हैं।

दूसरी तापसी—(अंगुली से घुड़क कर) अरे ! तू मेरे कहने पर ध्यान नहीं देता ? (इधर उधर देखकर) मुनिकुमारों में यहां कोई है ?

(राजाको देखकर) महाशय! आप आइये! इस बालक ने सिंह के बच्चे के केशर (बाल) इस प्रकार पकड़ रक्खे हैं कि उसके हाथ को छुड़ा देना बड़ा ही कठिन होरहा है, अतएव आप छुड़ा दीजिये।

राजा—(बालक के पास जाकर कुछेक हँसी से) अरे मुनिकुमार! तेरा यह व्यवहार आश्रम (धर्म) के विरुद्ध है, तेरे पिता संयम शील ऋषि हैं, फिर तू ऐसा क्यों हुआ है? देख आत्मनिष्ठ (सौगन्धादि) गुण होने पर भी काले नाग के बच्चे द्वारा शीतल सौगन्धादि गुणयुक्त चन्दन का वृक्ष भी दूषित होता है।

दूसरी तपस्विनी—भद्र! यह मुनिकुमार नहीं है।

राजा—इसका जैसा आकार है, वैसा ही काम भी है। स्थानके विचार से ही मैंने इसको मुनिकुमार समझा था, (बालकका हाथ छुड़ाकर स्पर्श सुख अनुभव करता हुआ आप ही आप) यह किस पुरुषके वंशाङ्कुर को स्पर्श करके मुझे ऐसा सुख मालूम हुआ? यह बालक जिसके अंग से उत्पन्न हुआ है, वह कृतार्थ व्यक्ति जो कितना आनन्द लेता है, वाणी से उसको प्रकाशित नहीं किया जा सकता।

दूसरी तपस्विनी—(राजा और सर्वदमन को देखकर) क्या ही आश्चर्य है! क्या ही आश्चर्य है।

राजा—आर्ये! कैसा आश्चर्य है?

दूसरी तपस्विनी—इस बालक से आपका कोई सम्बन्ध नहीं है, तथापि आप दोनों में बहुत ही समानता है-इसीलिये अचंभा होता है। फिर इस बालक का स्वभाव आश्रम के विरुद्ध है, और आप भी अपरिचित हैं, तो भी इस बालक ने आपकी बात से शान्त भाव धारण कर लिया।

राजा—(हाथ से बालक को छूकर) आर्ये! यह बालक यदि ऋषि-कुमार नहीं है, तब फिर इसने किस वंशमें जन्म लिया है।

दूसरी तपस्विनी-पुरुवंश में इसका जन्म है।

राजा—हमारा-इसका एक वंश है—इसी कारण यह तापसी हमारी आकृतिके साथ इस बालक का सादृश्य विचार रही हैं। (प्रकट) पुरुवंशियों की चरमावस्था के अनुरूप इस प्रकार कुलकी रीति निर्दिष्ट है कि पहली अवस्था में वह पृथ्वी का पालन एकान्त महल में वास करके फिर अन्तिम (वृद्ध) अवस्था में तापसव्रत धारण पूर्वक वृक्षकी जड़को ही गृह रूपमें स्थिर करके वहां वास करें। तब यहां मनुष्य निजप्रति के द्वारा कैसे आया?

दूसरी तपस्विनी—आपने जो कहा–वह सत्य है, किन्तु अपत्य संबंध के कारण इस बालक की माता ने देवगुरु के इस आश्रम में इसको जन्मा है।

राजा--(आप ही आप) यह दूसरी बात आशा की प्रकट करने वाली है (प्रकट) इस बालक की माता जिसकी भार्या है, उस राजर्षि का नाम क्या है ?

दूसरी तपस्विनी–उस धर्मपत्नी के त्यागने वाले का नाम कौन लेवे ?

राजा—(स्वगत) जाना पड़ता है–मुझ को ही लक्ष्य करके यह बात कही जारही है ? तो इस बालक की माता का नाम पूछूं । (सोचकर) पराई स्त्री के विषय की कोई बात पूछना अनुचित है।

पहली तपस्विनी—(मृत्तिका निर्मित मोर हाथ में लिये हुए आई) सर्वदमन ! यह शकुन्त लावण्य देख।

बालक—(बड़ी लालसा से देखकर) मेरी माता शकुन्तला कहां है ?

(दोनों तपस्विनी हंसने लगीं)

पहली तपस्विनी—नाम याद करादेने से माता का स्नेही पुत्र प्रवुद्ध हुआ है।

दूसरी तपस्विनी—मैंने तो तुझ से यह कहा था कि इस मिट्टी के मोर की सुन्दरता देख।

राजा—(आप ही आप) शकुन्तला क्या इसकी माता का नाम है ? अथवा एक नाम की अनेक होती हैं, किम्वा मृगतृष्णा की नाईं मुझे दुःख देने को यह नाम पुकारा गया हो ?

बालक—यह चंचल मोर मुझे बहुत अच्छा लगता है।

(खिलोना ले लिया)

पहली तापसी—(बालक का अङ्ग देखकर) हाय ! हाय ! इस बालक की कलाई का रक्षा बंधन कहाँ गया ?

राजा—व्याकुल मत हो—जब यह सिंह के बच्चे से खेल रहा था, तब इसके हाथ से गंडा गिर गया–सो यह पड़ा है।

(गंडा उठाने को हाथ बढ़ाया)

दोनों तपस्विनी—हैं हैं, इस गंडे को मत छूना ! मत छूना ! (राजा के उठा लेने पर दोनों चकित होकर छाती में कराघात करती हुईं परस्पर एक दूसरे का मुख देखने लगीं)

राजा—आपने मुझे इसके उठाने का निषेध क्यों किया ?

पहली तपस्विनी—महाशय ! सुनिये । यह अपराजिता नाम वाली देव महौषधि है । जब इस बालक के जातकर्म किये गये-तब भगवान् कश्यपजी ने इस को दिया था । यह यदि भूमि पर गिर पड़े, तो माता, पिता और इस बालक के अतिरिक्त चौथा कोई नहीं उठावे ।

राजा--यदि (चौथा) उठावे तो ?

पहली तपस्विनी—तो यह सर्प होकर उसको डसेगा ।

राजा--आपने कभी इस बात का प्रत्यक्ष देखा है ?

दोनों तपस्विनी--बहुत बार ।

राजा—(सानन्द मन ही मन) तो अब मनोरथ पूर्ण होने से मैं क्यों न आनन्द मनाऊँ ?

(यह कह कर बालक को आलिंगन करता है)

दूसरी तपस्विनी—सुव्रते ! चलो-हम यह सुख समाचार नियम-निरत शकुन्तला को सुनावें । [दोनों गईं]

बालक—छोड़ो ! छोड़ो ! मैं माता के पास जाता हूं ।

राजा—वत्स ! मुझ समेत ही जननी को आनन्दित करना ।

बालक—राजा दुष्यन्त मेरे पिता हैं, तुम नहीं हो ?

राजा—यह विवाद ही मुझ को विश्वास उत्पन्न कराता है ।

(एक वेणी धारण किये हुए शकुन्तला आई)

शकुन्तला—(आप ही आप) विकार के अवसर में भी सर्वदमन के गंडे ने रूप न पलटा, यह सुनकर मुझे अपने भाग्य में आशा नहीं है । अथवा यदि मिश्रकेशी का कहना सत्य हो-तो यह संभव हो सकता है ।

(परिक्रमण)

राजा—शकुन्तला को देखकर हर्ष-अनुताप और विषाद के सहित (आप ही आप) यही तो वह माननी शकुन्तला है। धूसर रंग के दो वस्त्र पहर रही है—कठिन व्रत अवलम्बन करने से इसका मुख-मण्डल क्षीण होगया है । शिर पर एक वेणीमात्र लटक रही है । हाय ! मेरे निर्दय होकर इस विशुद्धाचारिणी शकुन्तला को परित्याग करने से यह दीर्घकाल व्यापी विरह व्रत धारण कर रही है ।

शकु—(राजा को अनुतापानल से विवर्ण देख कर वितर्क के सहित आप ही आप)

यह यदि आर्य पुत्र नहीं हैं-तो कौन हैं, जिसने रक्षा बंधन पहरे हुए मेरे बालक को अंग लगाकर दूषित कर दिया ?

बालक—(माता के पास जाकर) मैया ! यह कौन पुरुष है, जो मुझको पुत्र कह कर हृदय से लगाता है ?

राजा—(शकुन्तला के सामने जाकर) प्यारी ! मैंने तुम्हारे संग निठुरता तो की,-किन्तु इस का फल अच्छा हुआ ? इसी लिये अब मैं तुम से परिचित होने की इच्छा करता हूँ ।

शकु—(आप ही आप) हृदय ! अब धीरज धर अब मुझे विश्वास होगया कि दैव ने ईर्षा त्याग कर मुझ पर दया दिखाई है, यह आर्यपुत्र ही जान पड़ते हैं ।

राजा—प्रिय ! पहली बातों की चित्त में याद आने से अब मोह का अन्धकार दूर होगया है, क्योंकि संस्कार के बिना जिसके ओष्ठपुट ने पाटल वर्ण धारण किया है--आज तुम्हारे उसी मुखका दर्शन किया ।

बालक—मा ! यह कौन हैं ?

शकु—भाग्य से पूछ बेटा ! (रोती है)

राजा—सुन्दरि ! मेरे त्याग देने से तुम्हारे हृदय में जो क्लेश उत्पन्न हुआ है, अब उसको दूर करदो । क्योंकि उस समय मुझमें न मालूम कैसा एक महामोह उपस्थित होगया था ? तुम निश्चय जानना कि शुभ कारक विषय में प्रबल सम्मोह का कार्य इसी प्रकार होता है कि वह मोह से अंधा आदमी शिर स्थित माला को भी सर्प समझ कर पृथ्वीपर डाल देता है ।

(यह कहकर शकुन्तला के चरणों में गिर गया)

शकु—आर्यपुत्र ! अब आपने इस क्लेश भागिनी को कैसे याद किया?

राजा—प्यारी ! पहले तुम्हारे हृदय--शोक का काँटा निकाल कर फिर सब बातें प्रकाशित करूँगा । हे सौम्याङ्गी ! आँसुओं की बूँदों ने तुम्हारे होठों को पीड़ित करके टपकने पर भी पहले मैंने मोह से अंधा होकर जिसकी उपेक्षा की थी, आज तुम्हारा कुटिल पक्ष्म संलग्न वह अश्रुजल पोंछ कर अब अपने चित्त का शोक दूर करूँगा । (आँसू टपकते हैं)

शकु—(आँसू पोंछने के समय अँगूठी देखकर) आर्यपुत्र ! यह तो वही अँगूठा है ?

राजा—प्रिये ! वही अँगूठी है, बड़ी ही आश्चर्य जनक रीति से यह मेरे हाथ में आई है और इसी के कारण मुझको सब बातें भी याद आई हैं ।

शकु—मैंने जब आर्यपुत्र के हृदय में विश्वास उत्पन्न कराने की चेष्टा की--तब इसी अँगूठीने न मिलकर यह दारुण काण्ड उपस्थित किया था ।

राजा—तो अब कनक लताऋतु-समागम के चिह्न स्वरूप पुष्प को धारण करें अर्थात् इसको आप अपनी अँगुली में पहरलें।

शकु—मुझे अब इसका विश्वास नहीं रहा। अस्तु आर्यपुत्र ही पहरे रहें।

(मातलि आया)

मातलि—बड़े ही 'सुखानन्द' की बात है कि महाराज ने धर्मपत्नी का समागम प्राप्त और पुत्र का मुखारविन्द देख कर अभ्युदय लाभ किया।

राजा—आप सुहृद हैं-आपके सम्पादन करने से ही आज मेरा मनोरथ पूर्ण फल दायक हुआ।

मातलि—(कुछेक हँसकर) ईश्वर से कौनसी बात छिपी रह सकती है? आइये! भगवान् कश्यप जी आपको देखने की इच्छा करते हैं।

राजा—प्यारी! तुम पुत्र का हाथ पकड़ लो। मैं तुम्हें आगे करके भगवान् कश्यप जी का दर्शन करना चाहता हूँ।

शकु—आर्यपुत्र के साथ गुरुजनों के समीप जाते हुए मुझको लज्जा लगती है।

राजा—ऐसे शुभ कालमें यह काम अनुचित नहीं है। प्यारी! चलो।

(सब चलते हैं)

(आसन पर बैठे मरीचि और अदिति दिखाई दिये।)

मरीचि—(राजा को देखकर) हे दक्षसुता! यही राजा दुष्यन्त हैं, यही पृथ्वीके अधीश्वर हैं, आपके पुत्रोंके कल्याणार्थ युद्ध में यह सबसे आगे रहते हैं। इनके ही शासन-प्रभावसे देवराज इन्द्रके सब कार्य सम्पन्न होते हैं, सुतरां उसका बहु कोणश युक्त वज्र केवल एक गहनासा हो रहा है।

अदिति—इनका आकार देखकर प्रभावकी बात मालूम हो जाती है।

मातलि—आयुष्मन्! यह देवताओं के माता पिता अपने पुत्रके तुल्य प्यार की दृष्टि से आपको देख रहे हैं, इनके धोरे चलिये।

राजा—मातलि! ऋषिगण जिस दम्पति को बाहर आत्मा में विभक्त तेजः पदार्थ और आदित्य रूपसे तेजः पदार्थ का कारण वर्णन करते हैं। जिन्होंने त्रैलोक्य के रक्षक यज्ञभागेश्वर (विष्णु) को उत्पन्न किया है, जो विधाता हो कर भी श्रेष्ठों में गिने गये हैं, परम पुरुष श्री हरि जिनके घर वामन रूप से अवतीर्ण हुए थे, और दक्ष एवं मरीचि से जिनकी उत्पत्ति है, वे यही दम्पति (स्त्री पुरुष) सृष्टिके कारण हैं।

मातलि— आपने बिल्कुल सत्य बात कही।

राजा—(दोनों को प्रणाम करके) इन्द्रका आज्ञानुवर्त्ती यह दुष्यन्त आप दोनों को प्रणाम करता है।

मातलि—दीर्घजीवी रहकर पृथ्वी का पालन कीजिये।

अदिति—तुम रण में अजय होओ।

राजा—आप दोनों के चरणों की वन्दना करता हूं।

(पुत्र समेत शकुन्तला का प्रणाम करना)

मरीचि—बेटी ! तुम्हारे पति इन्द्र की समान और पुत्र जयन्त की समान हैं, तब फिर तुमको दूसरा आशीर्वाद क्या दूं ? शची की नाईं अवैधव्य रूप नारायण को प्राप्त होओ।

अदिति—पति से वहुतसा सन्मान पाने वाली होओ, यह पुत्र भी दोनों कुलों को अलंकृत करे। आओ सब कोई बैठें।

(सब प्रजापति कश्यपजी के सामने वैठते हैं)

मरीचि—(एक एक को देख कर) पतिव्रता सती यह शकुन्तला, इसका यह सुशील पुत्र और यह आप राजाओं में श्रेष्ठ दुष्यन्त आप तीनों का यह मिलन श्रद्धा-वित्त और विधि इन तीनों के मिलन की समान है; सुतरां यह अत्यन्त आनंद की बात है।

राजा—भगवन् ! पहले अभीष्ट की सिद्धि और पीछे दर्शन आपका अनुग्रह इस प्रकार विचित्र ही हुआ है। क्योंकि पहले पुष्पोद्गम (फूल) पीछे फल, पहले बादल पीछे वर्षा कारण और कार्य के भाव का सम्बंध सर्वत्र इसी प्रकार देखा जाता है। किंतु आप के अनुग्रह से पहले ही स्त्री पुत्र प्राप्ति रूप सम्पत्ति का आविर्भाव हुआ।

मातलि—जगत् को उत्पन्न करने वाले महात्माजन इसी प्रकार प्रसन्नता प्रकाश करते हैं।

राजा—भगवन् ! आप की आज्ञाकारिणी इस शकुंतला से मैंने गंधर्व विधि के द्वारा विवाह किया था-इसके कुछ दिन पीछे यह अपने मनुष्यों के साथ मेरे पास आई,किंतु याद भूल जाने से मैंने इस को त्याग दिया, अतएव आपके गोत्रोत्पन्न ऋषियोंके निकट मैं अपराधी हुआ; फिर अँगूठी के देखने से मुझको सब बातें याद आगईं। तब जो मैंने इस के साथ विवाह किया है-यह स्मरण हो आया। यह सब बातें मुझको एक

अचंभा सा मालूम हो रही हैं। जिस प्रकार किसी हाथी के प्रकृष्ट और स्पष्ट रीति से दिखाई देकर गमन करने पर उसके विषय में संशय उत्पन्न हो और उसके पद चिह्न देख कर हाथी का होना जाना जाय, मेरे चित्त का विकार भी ठीक वैसा ही है।

मरीचि—पुत्र! तुम अपने अपराध की आशंका से मत डरो-ऐसा भ्रम होना तुम्हारे पक्ष में कुछ असंगत नहीं है-लो सब बात सुनलो।

राजा—मैं सावधान हूँ-कहिये।

मरीचि—जिस समय तुमने शकुंतला को परित्याग किया, तब अप्सरा योनि उतर कर व्याकुल शकुन्तला को ले दाक्षायणी के निकट उपस्थित हुई। उसी समय ध्यान योग से मैंने समस्त घटना जान ली। समझ लिया कि दुर्वासा ऋषि के शाप से यह दया की पात्र शकुन्तला सह धर्माचारी शकुंतला तुम से त्यागी गई। इसके पीछे अँगूठो के देखने से वह शाप छूटा।

राजा—(लम्बा श्वाँस लेकर) अब मैं अपवाद (कलंक) से छूट गया।

शकु०—विना ही कारण आर्यपुत्र ने मुझको नहीं त्यागा, यही 'सुखानन्द' का बात है। महर्षि ने जो मुझको शाप दिया था, वह मुझको याद नहीं है। उस समय मैं शून्य हृदय से अवस्थित थी। कदाचित् उस शाप को सुन कर भो न सुन सकी हूं। क्योंकि मेरी सखियों ने यत्न से कह दिया था-कि यदि राजर्षि को तेरी याद न आ सके, तो निशानी स्वरूप अँगूठी दिखा देना।

मरीचि—(शकुन्तला की ओर देखकर) बेटी! अब तुमने सब बात जानली। अतएव अब अपने पतिके ऊपर हृदय में क्रोध मत रखना। दुर्वासाऋषि के शापवश ही याद भूल जाने पर इन्होंने तुमसे स्नेह छोड़ दिया था, इसी कारण तुमको परित्याग का दुःख सहना पड़ा। अब इनका भ्रम जाता रहा है, अतएव अब तुम इनके साथ रहने योग्य हो। देखो, दर्पण में जब मलीनता रहती है, तब उसमें परछाँही साफ नहीं दीखतो। निर्मल होने से ही परछाँही साफ दीखती है।

राजा—आप सत्य ही कहते हैं।

मरीचि—वत्स! हमने विधानानुसार जिसके जात कर्मादि संस्कार किये हैं। वह यही शकुन्तला-नन्दन है, क्या तुमने इसका अभिनन्दन किया है?

राजा—भगवन्! इस पुत्रमें ही हमारा वंश प्रतिष्ठित है (हाथ फैला कर बालक को लेना)

मरीचि—इस बालक को होनहार चक्रवर्ती राजा समझो। यह बालक इस तपोवन में बलपूर्वक समस्त जन्तुओं को दमन करता था, इसीलिये इसका नाम 'सर्वदमन' हुआ है। अतएव यह बालक पहले ही भूमिके स्पर्श से शून्य है। अतएव विघ्न रहित गतिसे सागर पार होकर सात द्वीपवाली पृथ्वी को विजय करेगा, फिर प्रजाओं का पालन करके 'भरत' के नाम से प्रसिद्ध होगा।

राजा—आपने जिसके संस्कार किये हैं, वह क्या नहीं कर सकता अर्थात् सब कुछ ही कर सकता है।

अदिति—कन्या के प्रिय समागम रूप भाग्योदय की बात विस्तार सहित ऋषिवर कण्व को सुनानी चाहिये। कन्या को प्यार करने वाली मेनका मेरी सेवामें लगी रहने से यहाँ ही है।

शकु०—(स्वगत) भगवती ने मेरे ही मनकी बात कही है।

मरीचि—महर्षि कण्वने तपके प्रभाव से इस सब घटना को जान लिया है।

राजा—तो जान पड़ता है-वे मुझ पर कुपित नहीं होंगे?

मरीचि—तो भी हमें पुत्रवती कन्या के प्रिय समागम का सम्वाद महर्षि को ज्ञात कराना उचित है। यहाँ कोई है?

(एक शिष्य आया)

शिष्य—भगवन्! मैं उपस्थित हूं।

मरीचि-पुत्र गालव! तुम आकाशमार्ग से महर्षि कण्व के निकट उपस्थित होकर कहो कि, पुत्रवती शकुन्तला दुर्वासा ऋषि के शाप से छूट गई है और राजा दुष्यन्त ने भी पहली बातों के याद आजाने से उस को ग्रहण कर लिया है।

शिष्य-गुरुदेव की जो आज्ञा। (गया)

मरीचि-(राजा को सम्बोधन करके) वत्स! अब आप पुत्र तथा स्त्री के साथ देवराज इन्द्र के रथ में चढ़ कर अपनी राजधानी में चले जाइये।

राजा-(प्रणाम पूर्वक) भगवान् की जो आज्ञा।

मरीचि—अब देवेन्द्र तुम्हारी प्रजाओंको प्रचुर परिमाणमें वृष्टि प्रदान करें। आप भी यज्ञों का विस्तार करके इन वज्रधारी को संतुष्ट करें। इस प्रकार शत युग तक परस्पर विनिमय द्वारा दोनों लोकों के हित की चेष्टा करके श्लाघनीय कर्मानुष्ठान पूर्वक दोनों विजयी होकर सुख भोगो।

राजा—भगवन्! अपनी शक्ति के अनुसार कल्याण के लिये यत्न करूँगा।

मरीचि—वत्स! और तुम्हारा क्या उपकार करूँ?

राजा—नाथ! इससे अधिक और क्या उपकार होसकता है? तो भी इस प्रकार होवे-राजा लोग प्रजाका हित साधन करने में निरत हों, समस्त लोक सुप्रशस्त सरस्वती को आदरसे ग्रहण करें और परम शक्तिमान् आत्मयोनि नील लोहित देव पुनर्जन्म दूर करके हमको मुक्ति प्रदान करें।

सबका प्रस्थान।

इति श्री महाकवि कालिदास विरचित अभिज्ञान शाकुन्तल का भाषानुवाद समाप्त।
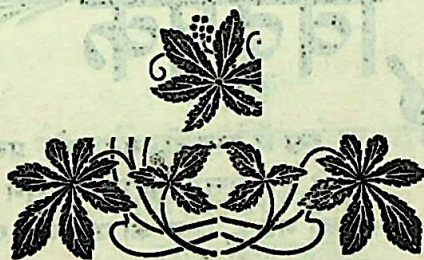
हंसाने की अद्वितीय पुस्तक।

हँसोड़।

हँसाते-हँसाते लोट पोट कर देने वाले चुटकुलों का संग्रह मूल्य ॥) मात्र।

इस में सैकड़ों मन को प्रसन्न करने वाली उत्तमोत्तम कहानियाँ चुन चुन कर रक्खी गई हैं, जिन को एक बार पढ़ लेने पर समस्त आयु भूलना असम्भव है। एक कहानी सुनाई जाय बस मिनटों तक हँसी का बाज़ार गरम रहेगा। अपने विषय की यह भी अद्वितीय पुस्तक है। मूल्य ॥।)

हँसोड़, विदूषक दोनों पुस्तकें साथ मँगाने से १≈) में मिलेंगी।

मँगाने का पता-हिमालय डिपो मुरादाबाद।

ॐ हरिः

महाकवि कालिदासकृत ।

मालविकाग्निमित्र

(नाटक-भाषानुवाद)

प्रकाशक—

पं० हरिशंकर शिवशंकर शर्मा,

अध्यक्ष—हिमालय डिपो,

तथा—'हिमालय-प्रेस'

मुरादाबाद यू० पी०
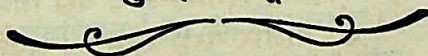
नाटकोल्लिखित पोत्रगण ।

अग्निमित्र——	विदिशा नगरी का राजा ।
वाहतक——	प्रधान मंत्री ।
विदूषक——	राजा का मित्र ।
अमात्य——	राजमंत्री ।
गणदास हरदत्त	दो नाटकाचार्य ।

कंचुकी, माधवसेन, सूत्रधार, परिपार्श्विक, जयसेन (प्रतिहारी) वैतालिक, सारस नामक कुब्ज परिजन इत्यादि ।

——o——

पात्री गण ।

मालविका	—	मालवराज माधवसेन की बहन ।
धारिणी (देवी)	—	विदिशा की रानी ।
इरावती	—	दूसरी रानी ।
परिव्राजिका	—	माधवसेन के मंत्री सुमति की विधवा बहन।
वकुल वलिका	—	मालविका की सखी ।
निपुणिका	—	इरावती की दासी ।
समादितिका	—	परिव्राजिका की दासी ।

मधुकरिका, मदनिका, चेटि आदि ।

——o——

मालविकाग्निमित्र ।

प्रथम अंक

(प्रस्तावना)

एकैश्वर्ये स्थितोऽपि प्रणतवहुफले यः स्वयंकृत्तिवासः
कान्तासंमिश्र देहेऽप्यविषयमनसां यः परस्ताद्यतीनाम् ।
अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपितनुभिर्विभ्रतो नाभिमानः
सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमोधः ॥

जो उपासनाशील पुरुषों के वहु फलप्रद अद्वितीय ईश्वरत्व में अधिष्ठित होकर भी (जो भक्तजनों को धन जन स्वर्गादि फल देने में समर्थ अद्वितीय ईश्वर होकर भी) स्वयं व्याघ्रचर्म धारण करते हैं, जो प्रियतमा गौरी के सहित संमिश्रित देह (अर्द्ध नारीश्वर) होकर भी भोग्य विषय में वीतस्पृह यतीगणों के श्रेष्ठ हैं, जो (क्षिति जल, तेज, वायु, व्योम, चन्द्र, सूर्य और यजमान) अष्ट मूर्त्ति द्वारा समस्त जगत् को धारण वा पोषण करके भी अभिमान शून्य हैं, वे सबके ईश्वर महेश्वर मोक्षोपाय भूत सन्मार्ग दिखाने के लिये तुम्हारी (हृदय स्थित) अज्ञान रूपी तामसी वृत्ति दूर करें ।

नान्दी के पीछे सूत्रधार ।

अब विस्तार का प्रयोजन नहीं है (नैपथ्य की ओर देख कर) आर्य ! इस ओर (रंगभूमि में) आओ ।

(परिपार्श्विक का प्रवेश) *

परिपा०—हे भावविद्वन् ! लो यह मैं आगया ।

सूत्र—अभिनय देखने के लिये समागत सभा स्थित पण्डितों ने

* सूत्रधार केसमान गुणवान् नट विशेष का नाम परिपार्श्विक है ।

इस वसन्तोत्सव में कालिदास-विरचित मालविकाग्नि मित्र नामक नाटक के अभिनय करने की आज्ञा दी है। इसलिये संगीत आरंभ करो।

परि०—यह नहीं होसकता। धारक, सौमित्र-कविरत्न इत्यादि प्रसिद्ध कीर्त्ति वाले पुरुषों के प्रबंध छोड़ कर वर्तमान कवि कालिदास के बनाये ग्रन्थ का इतना विशेष आदर क्यों किया जाता है?

सूत्र०—अरे! तुमने विल्कुल ही अज्ञानी की नाईं वात कह डाली। देखो-काव्य पुरातन होने से जो सुन्दर और नया होने से भद्दा लगता है, सो बात नहीं है, बुद्धिमान् पुरुष परीक्षा द्वारा गुण दोष विचार कर जो उत्तम होता है, उसीका आदर किया करते हैं और मूर्ख पुरुष दूसरे की प्रतीति पर निर्भर करके उसी के अनुसार अपनी अपनी बुद्धि को संचालन करते हैं।

परि०—अच्छे बुरे का निर्णय तो सभ्य पुरुष ही करेंगे।

सूत्र०—तो तुम शीघ्रता करो देवी धारिणी के सेवा-दक्ष अनुचरों की समान मैं सभा-स्थित पुरुषों की आज्ञा मस्तक पर धारण करता हूँ।

(दोनों गये)

(इति प्रस्तावना)

(बकुलावलिका का प्रवेश)

बकुला—छलिक नामक नाटक के अभिनय सम्बन्ध का उपदेश लेनेमें मालविका किस प्रकार शिक्षा करती हैं? नाटकाचार्य गणदास से यह बात पूछनेके लिये धारिणी देवीने मुझको आज्ञादी है। इसलिये अबमें संगीत शाला में जाती हूं। (चलती है)

(हाथ में आभरण लिये दूसरी चेटी आई)

पहली चे०—(दूसरी चेटीको देखकर) अरी कौमोदिको! तेरा मन कहाँ है, जो समीप में मुझको अतिक्रम करके अर्थात् मुझसे बिना बात चीत किये जाती है और एक बार मेरी ओर देखती तक नहीं?

दूसरे चे०-यह क्या—बकुल मालिका! सुनार के निकट से आई सर्प विष नाशक नाम खुदी राजमहिषी की इस अँगूठी को आदर पूर्वक (एकाग्रचित्त से) देखती थी, इसीसे तुम्हारे तिरस्कार की पात्र बनी।

पहली चे०—(देखकर) उपयुक्त पदार्थ पर ही तुम्हारी दृष्टि पड़ी है। क्योंकि इस अँगूठीसे मानों रश्मि रूप केशर प्रकट होती है, अतएव तुम्हारा हस्ताग्र मानों कुसुमित जान पड़ता है।

दूसरी चे०-तुम कहाँ जाती हो?

पहली चे०—मालविका ने नाटक के सम्बन्ध में कैसी शिक्षा पाई है, देवीकी आज्ञानुसार नाटकाचार्य गणदास से यही बात पूछनेको जाती हूं।

दूसरी चे०—सखि! इस विषय में मालविका तो दूर रहती है, तब फिर प्रभु अग्निमित्र ने उसको कैसे देखा?

पहला चे—आः—देवीके पार्श्वस्थित चित्र में उन्होंने देखा है।

दूसरी चे०—कैसे?

पहली चे०—सुनो! जिस समय देवी चित्रशाला में गमन पूर्वक नाटकाचार्य का नूतन चित्रित चित्र देखती थी, उसी समय स्वामी वहाँ उपस्थित हुए।

दूसरी चे०—अभ्यर्थनादि सत्कार के पीछे रानी के सहित एकासन पर बैठकर चित्र लिखित देवीमूर्त्ति के निकट परिजनों में एक बालिका मूर्त्ति लिखी देख कर देवी से पूछा।

दूसरी चे०—क्या पूछा?

पहली चे०—यही कि देवी के निकट जो अपूर्व बालिका की मूर्त्ति अंकित है, इस का क्या नाम है?

दूसरी चे०—आकृति ही विशेष कर आदर का स्थान पाती है। अच्छा फिर?

पहली चे०—इस प्रश्न का उत्तर देने में ढील करने से स्वामी को संदेह हुआ और वे आग्रह से वार वार यही बात पूछने लगे, तब कुमारी (राजकन्या) वसुमतीने कहा, इसका नाम 'मालविका' है।

दूसरी चे०—(हंसकर) यह बात बालोचित्त स्वभाव के ही अनुकूल हुई है, अच्छा फिर क्या हुआ?

पहली चे०—फिर क्या होता? अब मालविका की स्वामी के दृष्टि पथसे भली भांति रक्षा कीजाती है।

दूसरी चे०—तो बहन! तुमको देवी ने जो आज्ञा दी है, अब उसको पालन करो। मैं भी इस अँगूठी को लेजाकर देवी के सामने रखती हूं।

(दूसरी चेटी गई)

पहली चे०-(घूमकर और चारों ओर देखकर) लो गणदास तो संगीतशाला से स्वयं ही बाहर आरहे हैं। अब इनसे भेंट करूँ।

[चलती है]

[गणदास आये]

गण०—कुल विद्या सर्वथा सब के निकट ही विशेष आदर पाती है, अतएव अभिनय के सम्बन्ध में जो हम बहुत मान दिखाते हैं, यह वे जड़

नहीं है वरन गौरव जनक है। ऋषिगण कहते हैं—यह नाटक विद्या देवताओं को सौम्य और नेत्रों को प्रसन्न करने वाली यज्ञ स्वरूप है। इस नाट्यविद्या को स्वयं रुद्रदेवने हर-गौरी रूप देहमें दो प्रकारसे विभक्त किया है (हर-स्वरूप से आधे शरीर द्वारा ताण्डव नृत्य और गौरी-रूप से आधे शरीर द्वारा लास्य नामक स्त्री नृत्य दिखाया है) इस नाट्य में सत्व रज और तम—इन तीनों गुणों से उत्पन्न लोक चरित्र भांति भांति का रस दिखाया गया है, अतएव एक नाटक ही बहुधा भिन्नरूप होकर भिन्न रुचि वाले जन समाज को प्रसन्न करने वाला हुआ है।

वकुला—(पास जाकर) आर्य ! प्रणाम करती हूँ।

गण०—भद्रे ! चिरजीविनी होओ।

वकुला—देवी ने आर्य (आप) से पूछा है कि आप की शिष्य मालविका उपदेश ग्रहण करने में दुःख तो नहीं मानती हैं ?

गण—कल्याणी ! देवी से कहो-मालविका शिक्षा ग्रहण में परम चतुर और बुद्धिमती है। अधिक क्या—मैं अभिनय के सम्बन्ध में उसको श्रृंगारादि भाव-व्यंजक जिन नृत्यादि का उपदेश देता हूँ, वह बालिका होने पर भी उससे अधिक सीख कर मानों मुझको प्रत्युपदेश प्रदान करती है।

वकुला—(आप ही आप) देखती हूं कि मालविका इरावती से भी बाजी मार कर लेगई है (प्रकट) आपकी शिक्षा कृतार्थ होगई—क्योंकि गुरुजन उससे सन्तुष्ट हुए हैं।

गण—भद्रे ! मालविका की समान श्रेष्ठ बुद्धि वाली स्त्री दुर्लभ है। देवी ऐसा पात्र कहाँ से ले आईं ?

वकुला—वीरसेन नामक देवी का एक नीच जातीय भाई है। महाराज ने उसको नर्मदा के तटस्थित अन्तपाल नामक दुर्ग (किले) में रक्खा है। 'यह बालिका शिल्प कार्य में उपयुक्त होगी, ऐसा विचार कर उसने अपनी बहन को भेंट स्वरूप में भेज दिया है।

गण०—(स्वगत) आकृति देखने से साफ समझा जाता है कि ऊंचे वंश में ही मालविका का जन्म हुआ है। (प्रकट) भद्रे ! मैं भी यशस्वी हूँगा। क्योंकि मेघ का जल समुद्र की सीपी में पड़ने पर जैसे मोती उत्पन्न होता है, उसीप्रकार शिक्षक के गुण यदि श्रेष्ठ पात्र में पड़ें, तो वे गुणान्तर को प्राप्त होते हैं।

वकुला—यह बात ठीक है। तो इस समय आपकी शिष्या हैं कहाँ ?

गण—मैंने अभी उसको पञ्चांगादि अभिनय के विषय में उपदेश देकर विश्राम करने की आज्ञा दी है। वह इस समय दीर्घिका (बावड़ी) देखने के लिए वातायन प्रदेश में जाकर सम्यक् प्रवाहित वायु का सेवन कर रही है।

बकुला—तो आर्य मुझ को आज्ञा दें-मैं उसके निकट आपके संतुष्ट होने की बात कह कर उस का उत्साह बढ़ाऊँ ?

गण०—तुम जाकर सखी से मिलो। अब मेरा भी समय हो गया है-मैं भी अपने घर को जाऊँ।

(दोनों का प्रस्थान)

(राजा का प्रवेश)

(पीछे पत्रिका हाथ में लिये उपविष्ट मंत्री कर्तृक शुश्रूषा और एकांत में परिजनों की स्थिति)

राजा—(मंत्री का पत्र पाठ देख कर) वाहतक ! विदर्भराज यज्ञसेन का अभि प्राय क्या है ?

मंत्री—देव ! अपना नाश करना।

राजा—मैं अब उसके कुभाव को सुनना चाहता हूं।

मंत्री—इस समय उसने इस प्रकार प्रत्युत्तर भेजा है-'महाराज ने मुझ को आज्ञा दी है कि तुम्हारे चचा के पुत्र कुमार माधवसेन वैवाहिक सम्बंध में प्रतिज्ञा करके मेरे पास आये थे। मार्ग में आपकी सीमा के सिपाहियों ने उनको रोक कर पकड़ लिया है-मेरे अनुरोध से उनको भार्या और भगिनी के सहित छोड़ दीजिये। इस विषय में मेरा कहना यह है कि एक कुलोत्पन्न राजा लोग परस्पर जैसा व्यवहार करते हैं, वह आप नहीं जानते हैं, अतएव इस उपस्थित विवाद में किसी का भी पक्ष लेना आप को उचित नहीं है। उदासीन रहना ही कर्त्तव्य है और देखिये-माधवसेन को पकड़ने के समय बड़ा गुल गपाड़ा मचा था। उसका अनुसन्धान करने के लिये यत्नवान् हूजिये। तब यदि महाराज की आज्ञा से छोड़ दिया जाय, उसमें मैंने जो निश्चय किया है, वह सुनिये। आपने जो इससे पहले हमारे प्रधान मंत्री श्यालक को वंदी किया है, यदि उसको आप छोड़ दें, तो मैं भी माधव सेन को बंधन से मुक्त कर सकता हूं।

राजा—[सरोष] क्या उसको हमारी शक्ति का हाल विदित नहीं है, वह कार्य विनिमय द्वारा हमारे साथ व्यवहार करना चाहता है। वाहतक ! वैदर्भ हमारा स्वभाव से ही प्रतिकूलाचारी है अतएव वैरी

की शरण में गये हुए उस विदर्भराज का पूर्व संकल्प नष्ट करने के लिये वीरसेनादि सेनापतियों को आज्ञा दीजिये।

मंत्री—महाराज की जैसी आज्ञा!

राजा—अथवा इस विषय में आपका अभिप्राय क्या है?

मंत्री—आपने शास्त्र सम्मत ही बात कही है। जो शत्रु बहुत थोड़े दिनों तक राज्य प्रतिष्ठित हुआ है अथच प्रजा में जिसकी जड़ नहीं जमी है, सद्यारोपित (तुरन्त के लगाये) शिथिल मूल वृक्ष की समान उसको सहजमें ही उखाड़ा जा सकता है।

राजा—इसीलिये शास्त्रकारों का वचन सत्य है। इस घटना को उप-लक्ष्य में करके सेनापति से उद्योग करने के लिये कहा जाय।

मंत्री—जो आज्ञा! (मंत्री का प्रस्थान)

(अपने अपने कार्य में नियुक्त होकर परिजनों का चारों ओर अवस्थान करना)

(विदूषक का प्रवेश)

विदू०—महाराज ने मुझसे कहा है कि 'गौतम! मैंने ईश्वरेच्छा से विना ही चेष्टा किये मालविका की प्रतिमूर्त्ति को देख लिया, किन्तु अब जिससे उसका प्रत्यक्ष दर्शन कर सकूं, तुमको उसका उपाय निश्चित करना चाहिये।' उसी आज्ञा के अनुसार मैंने भी कार्य किया है—अतएव पहले उसके पास जाकर सब बात प्रकाशित करूँ।

राजा—(विदूषक को देखकर) यह हमारे कार्यान्तर की सहायता के लिये मन्त्री उपस्थित है।

विदू०—आप सब प्रकार से उन्नति लाभ करें।

राजा—(शिर कँपाकर) यहाँ बैठो।

(विदूषक बैठ गया)

राजा—अभीष्ट सिद्धि के उपाय का निर्णय करने में तुमने अपने ज्ञानरूपी नेत्रों को लगा दिया है न?

विदू०—महाराज! आप उपाय के निर्णय की बात क्यों पूछते हैं, कार्य सिद्धि की बात पूछिये?

राजा—कैसे?

विदू—(कान में,) ऐसे। (सच्ची घटना निवेदन)

राजा—साधु! मित्र साधु! तुमने सदाही चतुराई दिखाई है, अब उपस्थित विषय में सिद्धिलाभ श्रमसाध्य होने पर भी उसके सम्पन्न

होजाने की बहुत कुछ आशा कर सकता हूं। क्योंकि प्रतिबन्धक होने पर भी यथोचित सहायता के बल से उसको सिद्ध किया जा सकता है। देखो, नेत्र वाला मनुष्य भी दीपक के विना अन्धकार में किसी चीज को नहीं देख सकता।

(नपथ्यमें)—और अपनी बड़ाई मारने की आवश्यकता नहीं है। हममें कौन प्रधान और कौन अप्रधान है, राजा के सामने ही इसका परिचय होजायगा।

राजा-(सुनकर) सखे! तुम्हारे सुनीतिरूपी वृक्षमें फूल लग आये हैं।

विदू०—फल भी आप प्रत्यक्ष देखेंगे?

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचु०—देव! मन्त्रीने कहा है कि प्रभु की आज्ञा यथावत् पालन हुई है। हरदत्त और गणदास यह दोनों जने उपस्थित हुए हैं। यह दोनों ही नाटकाचार्य हैं, परस्पर जयेच्छुक हैं, यह मानों मूर्तिमान् दोनों भावों के (भाँति भाँति की अंगभंगी करणादि नाट्य संबंधी दोनों चेष्टा के) समान आपका दर्शन करने को आये हैं।

राजा—दोनों को ले आओ।

कंचु०—महाराज की जो आज्ञा।

(कंचुकी का जाना और दोनों जनों के साथ फिर आना)

कंचु०—आप इधर आइये! इधर आइये।

गण०—(राजा को देख कर) अहो! राजा की महिमा को कोई नहीं जान सकता। यह राजा मेरा अपरिचित नहीं वरन बहुत दिनों का जाना पूछा है, इसकी मूर्त्ति भी असुन्दर नहीं वरन बहुत सुन्दर है। किन्तु तो भी इनके निकट मुझको चकित भाव से जाना पड़ रहा है। नेत्रों के सामने सदा इनको देखता हूं तो भी यह मानों समुद्र की समान प्रतिक्षण नये नये भाव में दिखाई देते हैं।

हर०—यह पुरुषाकार में उत्पन्न हुए महा तेजः स्वरूप हैं, क्योंकि मैंने द्वारपाल की आज्ञा लेकर प्रवेश किया है, सिंहासन की बगल में खड़े रहने वाले कंचुकी के साथ आया हूं,इसलिये डरने की कोई बात नहीं है। किन्तु तो भी इनके किसी वचन से मना न करने पर भी इनका तेज मानों मेरी दृष्टि को निरोध करके मुझको निकट जाने में वर्जता है।

कंचु०—महाराज यही तो हैं, आप इनके पास जाइये।

दोनों—(निकट जाकर) महाराज विजयी हों।

राजा—आप कुशल से तो हैं ? (एक परिजन की ओर देख कर) इन दोनों को आसन दो।

(परिजन के लाये आसन पर दोनों का बैठना)

राजा—यह क्या ? शिष्यों को शिक्षा देने का यह निर्दिष्ट समय है, तब फिर आप दोनों एक साथ ही यहाँ कैसे आये हैं ?

गण०—देव ! सुनिये, मैंने अति श्रेष्ठ अध्यापक से अभिनय विद्या सीखी है, शिष्यों को भी सिखाई है, फिर आप और महर्षि दोनों ने ही मुझको शिक्षक रूप में नियुक्त किया है।

राजा—हाँ यह मैं जानता हूं। अब और कुछ कहना है ?

गण०—इस हरदत्त ने कई एक ऊंचे पद वाले पुरुषों के सामने यह कहकर मेरा तिरस्कार किया है कि गणदास तो मेरी पदरज के भी समान नहीं हैं।

हर०—देव ! इस मनुष्य ने पहले मेरी निन्दा की है कहा है-'समुद्र और सरोवर में जो भेद है, हम में और इसमें भी उतना ही भेद है अतएव महाराज शास्त्र और अभिनय के विषय में आप हम दोनों की परीक्षा कीजिये। हम दोनों में क्या भेद है, सो आप जानते हैं। आप ही प्रश्न करके हम दोनों के भेद की मीमांसा करदें।

विदू०—प्रतिज्ञा तो तुमने ठीक ही की है।

गण०—महाराज ! हमारे अच्छे बुरेकी परीक्षा कीजिये, यही ठीक है। महाराज एकाग्र चित्त से सुनें।

राजा—क्षण काल ठहरो। यदि मैंने अकेले ही इस बात का निर्णय कर दिया, तो रानी यह समझेंगी कि मैंने एक की तरफदारी की है, अतएव सहचारिणी कौशिकी के सहित उसके सामने ही इस बात का निपटारा होजाना उचित होगा।

विदू०—आप ठीक बात कहते हैं।

दोनों आचार्य—महाराज की जैसी इच्छा।

राजा—मौद्गल्य। इस उपस्थित घटना की बात कह कर कौशिकी के साथ देवी को यहाँ लेआओ।

कंचु०—जो आज्ञा महाराज।

(कंचुकी का प्रस्थान और देवी के सहित)

(पुनः प्रवेश)

कंचु०—देवी ! इधर आइये। इधर आइये।

धारिणी—(परिव्राजिका को देखकर) भगवति ! इस हरदत्त और गणदास दोनों आचार्यों के विवाद में आप क्या अनुमान करती हैं ?

परि०—आप स्वपक्ष गणदास के पराजय की आशंका न करें। प्रति पक्षी हरदत्त की अपेक्षा गणदास किसी बात में भी कम नहीं है।

धारि०—आपने जो कहा--ऐसा होने पर भी हरदत्त राजा के द्वारा नियुक्त है, अतएव वह प्रधान है।

परि०—अजी ! अपने आपको भी रानी समझ कर विचार करो। देखो,--अग्नि सूर्य का प्रवेश होने पर अतिशय दीप्तिमान् होता है और रजनी के संसर्ग से चंद्रमा भी अधिकतर समृद्धि भोगता है।

विदू०—क्या आश्चर्य ! क्या आश्चर्य !! माननीया धारिणी देवी अपनी सहायक कौशिकी को आगे करके आई हैं।

राजा—मैं इस समय धारिणी को इस प्रकार देखता हूँ। मूर्त्तिमती अध्यात्म विद्या के साथ शरीर वाली त्रयी (त्रिवेद मूर्त्ति) जिस प्रकार शोभा पाती हैं यती वेश धारिणो कौशिकी के सहित मांगलिक गहनों को धारण किये देवी भी उसी प्रकार शोभा पाती हैं।

परि०—(पास जाकर) महाराज की जय हो।

राजा—भगवति ! प्रणाम करता हूँ।

परि—महाराज ! आप महाबल पुत्रवती क्षमाशील यह धारिणी और शस्य रूपी सम्पद् शालिनी क्षमा गुण वाली पृथ्वी इन दोनों पति रूप में शत वर्ष व्यतीत करें।

धारि०—आर्यपुत्र ! आपकी जय हो

राजा—देवी निर्विघ्न तो आईं ? (परिव्राजिका को देख कर) भगवति ! आसन पर बैठिये।

(सब का बैठना)

राजा—भगवति ! इन सम्मान योग्य हरदत्त और गणदास दोनों में परस्पर प्रयोग विज्ञान को लेकर कलह आरंभ हुई है, आप इन की उस कलह का निर्णय कर दीजिये।

परि०—(मुसका कर) तिरस्कार की क्या आवश्यकता ? नगर के होते हुए ग्राम में रत्न की परीक्षा ?

राजा—यह ऐसा नहीं है, अर्थात् तिरस्कार नहीं है, आप विदुषी (पण्डिता) हैं, सब ही बातों की मीमांसा कर सकती हैं, हम और देवी दोनों पक्षपाती हैं।

दोनों आचार्य—महाराज ने ठीक कहा ! भगवती कौशिकी मध्यस्थ होकर हमारे गुण दोष का निर्णय कर देंगी।

राजा—अब विवाद का प्रसंग छेड़ो।

परि०—महाराज ! प्रयोग के ऊपर ही नाट्यशास्त्र का निर्भर है। इसलिये उपस्थित विषय में कलह की आवश्यकता नहीं है; आगे देखा जाय कि इस विषय में रानी का क्या मत है ?

रानी—मुझसे पूछते हो, तो कहती हूँ कि मैं इस विषय में कलह नहीं चाहती।

गण—तुल्य विद्या सम्पन्न होने से मुझको पराजित मत समझना।

विदू०—यह दोनों ही स्वार्थी हैं। इनको वृथा ही वेतन देने का क्या प्रयोजन है ?

देवी—तुम निश्चय ही कलहप्रिय हो।

विदू०—मैं कलहप्रिय नहा हूँ। दो कलहप्रिय मतवाले हाथी यदि विवाद में लग जायं, तो विना एक के हार माने शान्ति कहाँ ?

राजा—भगवती ने क्या इन दोनों के अभिनयादि में निपुणता देखी है।

परि०—हाँ, देखी है।

राजा—तो यह अभिनयके अतिरिक्त और किस विषय में परीक्षा देंगे ?

परि०—मैं आपके ही मनकी बात कहती हूँ-सुनिये। किसी किसी शिक्षक का निज नृत्याभिनयादि उत्कृष्ट (उत्तम) होता है। कोई कोई शिक्षक होते तो विलक्षण विद्वान् हैं, किन्तु शिष्य को वैसी शिक्षा नहीं देसकते। कोई कोई शिक्षक उपदेश द्वारा निज अधिकृत विद्या शिष्यमें संचारित करने में दक्ष हैं, कोई कोई शिक्षक अपनी अधिकृत विद्या प्रकाश करने में असमर्थ होकर अज्ञानी की नाई सभास्थलमें दिखाई देते हैं, किंतु उनके शिक्षा चातुर्य से शिष्यगण महाविद्वान् होजाते हैं। दोनों गुण जिनमें हैं अर्थात् जो अपनी अधिकृत विद्या का गौरव दिखा सकते हैं और शिष्य को भी उत्तम शिक्षित कर सकते हैं, उन्हीं को शिक्षकों में अग्रणी समझना चाहिये।

विदू०—आप दोनों जनों ने भगवती की बातें सुनी। यह निचोड़ है। अपने अपने शिष्य की शिक्षा दिखाने के द्वारा ही दोनों की हार-जीत का निर्णय होगा।

हर०—इसमें सर्वथा मेरी सम्मति है।

गण०—देवि ! क्या यही निश्चित हुआ ?

देवी—शिष्य यदि सम्यक् मेधावी (बुद्धिमान्) न हो और वह उपदेश के प्रतिकूल आचरण करे—तो क्या इसमें शिक्षक का दोष होगा ?

राजा—देवि ! पण्डित जन कहते हैं, बुद्धिहीन को उपदेश देने पर उससे आचार्य की बुद्धि तीक्ष्ण ही होती है ।

देवी—(स्वगत) अब क्या करूँ ? (गणदास को ओर देखकर प्रकट) आर्यपुत्र का मनोरथ पूर्ण करना सहज नहीं है, इनकी उत्सुकता बढ़ती ही जायगी । अब इस व्यर्थ के विवाद की आवश्यकता नहीं है ।

विदू०—देवीने सत्य ही कहा । हे गणदास ! तुम संगीत की शिक्षा देने में अधिकारी होकर विद्यावत्ता के कारण उपहार स्वरूप बहुत से लड्डुआ खाते रहते हो अर्थात् तुम को महाविद्वान् समझ कर अनेक मनुष्य नित्य बहुत से लड्डू भेंटमें देते हैं, उनको खाकर तुम मुखका आनंद लाभ करते हो । अब यदि विवाद में हरदत्त से हारगये तो फिर कोई भी तुमको भेंटमें लड्डू नहीं देगा । अतएव तुम्हारे मुख में लगाम लग जायगी । इसलिये तुम्हारी भलाई इसीमें है कि विवाद को छोड़ दो।

गण०—देवो की कही बातों का अर्थ ही ऐसा हैं । अब तक आप लोग ही बात कहते रहे, मुझे तो अवसर ही नहीं मिला हैं । अस्तु जो कहता हूं सुनिये, मुझको सब प्रकार से प्रतिष्ठा मिल चुकी हैं, यह सोच कर जो व्यक्ति विवाद में (जय पराजय की अनिश्चयता—आशङ्का से) डरता है, दूसरे की करी हुई निन्दा को सहता हैं, संगीतादि शास्त्र विद्या को केवल जोविका निर्वाहका कारण समझता है, उसको ज्ञान-विक्रयी वणिक् कहते हैं । (इसलिये मैं निःसंदेह हरदत्त के साथ विवाद में प्रवृत्त हूंगा ।

देवी—आपकी शिष्या बहुत थोड़े समय तक शिक्षा में प्रवृत्त हुई है, उनमें उपदेश कभी स्थिर नहीं रह सकता । इस दशा में उनको सब जनों के सामने जाकर अभिनयादि दिखाना बुद्धि विरुद्ध काम है ।

गण०—इसी से मैंने अति आग्रह किया है ।

देवी—आप और मालविका दोनों केवल मात्र इन भगवती परिव्राजिका को अपनी शिक्षा चतुरता दिखावे ।

परि०—देवि ! यह न्याय संगत नहीं है (मैं तो एक साधारण सी स्त्री हूं) सर्वज्ञ होने पर भी कोई अकेला किसी विषय को देखकर उसका नर्णय नहीं कर सकता ।

देवी—(हौले से) मूढ परिव्राजिके ! मैं जागरित (सतर्क) होरही हूं (जिससे राजा मालविका को नहीं देख सकें । इस विषय में विलक्षण

सावधान हूँ) मुझको निद्रित की समान क्यों समझती हो ? (यह कह कर ईर्षा के साथ मुख फिराकर बैठ गई)

(राजा देवी का यह भाव व चेष्टा परिव्राजिका को दिखाने लगे)

परिव्रा०—हे चन्द्र मुखी ! अकारण ही पूजनीय महाराज से विमुख क्यों होती हो ? गृह-स्वामिनी पति के प्रति आधिपत्य शालिनी होकर भी कभी अकारण रोष नहीं दिखाती ।

विदू०—देवी का विमुखीभाव अकारण नहीं है-अपने पक्ष को समर्थन करना (अपने द्वारा नियुक्त किये हुए इस गणदास के सन्मान की रक्षा करना) सर्वथा कर्त्तव्य है (गणदास की ओर देख कर) देवी के कुपित होने पर चलो इसी बहाने तुम्हारी रक्षा हुई ! सुशिक्षित होने पर भी निज निज शिक्षा नैपुण्य की परीक्षा देने पर भी गुण दोष का निर्णय होता है ।

गण—देवि ! सुनिये । विदूषक आदि सब समझते हैं--आपने विवाद करने को मना करके मुझ को हारने की आशंका से बचा लिया है । इस लिये अब मैं अपनी चेली मालविका के द्वारा अभिनय दिखा कर अपनी निपुणता प्रमाणित करूँगा । यदि मुझ को इस विषय में आज्ञा नहीं दी जायगी तो जानलूँगा कि आपने मुझ को त्याग दिया ।

(आसन से उठना चाहता है)

देवी—अब उपाय क्या है ? शिष्य के ऊपर गुरु का प्रभुत्व सर्वथा विद्यमान है (अतएव आप मालविका के द्वारा अभिनयादि दिखा सकते हैं)

गण—मालविका के द्वारा अभिनय दिखाने का आप निषेध करेंगी-यह धारणा मेरे मन में पहले से ही थी । अब अनुमोदन करने से वह धारणा दूर हुई । (राजा की ओर देख कर) देवी आज्ञा देती हैं, इस समय आपकी अनुमति होने से ही सब काम ठीक होगा । कोई अभिनय वस्तु अवलम्बन करके शिक्षा दिखानी चाहिये ।

राजा—भगवती जो आज्ञा करती हैं ।

परिव्रा—मुझको आशंका होती है । जान पड़ता है-देवी के अंतर में कुछ है ।

देवी—आप निःसंकोच चित्त से कहिये । आत्मीय परिजनों के ऊपर आपका पूरा प्रभुत्व है ।

राजा—मेरा भी है-यह बात कहो ।

देवी—भगवति ! अब अभिलषित बात कहिये ।

परिव्रा—संगीत के ज्ञाता कहते हैं-शर्मिष्ठा प्रणीत चतुष्पदी युक्त छलिक नामक नाटक का अभिनय दिखाना दुरूह है। गणदास और हरदत्त इन दोनों के द्वारा ही उस नाटक का अभिनय देखूँगी। तब ही इन दोनों की शिक्षा का अंतर निश्चित होगा।

दोनों आचार्य—भगवती की जैसी आज्ञा।

विदू०—तो अब दोनों जने नैपथ्य गृह में गमन पूर्वक संगीतादि की रचना करके महाराज के निकट दूत भेजिये। अथवा मृदंग की ध्वनि ही हमको उत्थापित करे।

हर—ऐसा ही हो। (उठता है)

(धारिणी की ओर गणदास का देखना)

देवी—(गणदास की ओर देख कर) विजय होओ।

(दोनों आचार्य गये)

परिव्रा—इधर आइये।

दोनों आचार्य—(लौट कर) लो यह हम दोनों आगये।

परिव्रा—आप दोनों के जय पराजय की मीमांसा करने के लिये मैं नियुक्त हुई हूं-इसी से कहती हूं आपके जो दोनों शिष्य अभिनय के अर्थ रंगालय में प्रवेश करेंगे, वे सर्वाङ्ग सुंदरता दिखाने के लिये बनावटी वेश भूषा धारण न करें।

दोनों आचार्य—इस विषय में हमको उपदेश देना नहीं पड़ेगा।

(दोनों का प्रस्थान)

देवी-(राजा की ओर देखकर) आर्यपुत्र के राजकार्य में इस प्रकार निपुणता होने पर अतिशय शोभा होती।

राजा—मनस्विनी तुम अन्य प्रकार मनमें मत समझो। इस विषय का प्रयोग मुझ से नहीं होगा। जो परस्पर समविद्य अर्थात् समान विद्या वाले हैं, वे ही परस्पर यशः प्राप्ति के विषय में दोष दिखाते हैं।

(नैपथ्य में मृदंग का शब्द हुआ, उसी ओर
सब का कान देना)

परि व्रा—कैसा मनोहर संगीत आरंभ हुआ है। इस शब्द को सुनकर मेघ गर्जन के भ्रमसे मोरगण आनन्द से उद्ग्रीव होकर शब्द करने से मृदंग के शब्द में वह मिल जाता है। सुतरां, मध्यम स्वर जात-मूर्च्छना उठकर हृदय को उल्लसित किये देती है।

राजा—देवि! हम अब मृदंग सुनने के लिये उस सभा में जाते हैं।

देवी-(स्वगत) अहो ! आर्यपुत्र का कैसी असज्जनता का व्यवहार है। (सभा में जाकर अन्य नायिका का दर्शन करेंगे यह इच्छा मेरे निकट प्रकाशित करते हैं)

विदू-(देवी की ओर देखकर) राजन् ! धीरे धीरे गमन कीजिये। आप मालविका को देखने के लिये बहुत ही छट पटा रहे हैं, यह सोचकर माननीया धारिणी देवी उसको टरका कर आपको वंचित कर सकती हैं।

राजा--मेरे धैर्यावलम्बन करने पर भी यह मृदंग का शब्द मुझको त्वरान्वित करता है अर्थात् जाने के लिये शीघ्रता कराता है । यह मृदंग का शब्द मानों सिद्धि मार्ग में अवतीर्ण मेरे मनरूपी रथ का शब्द जान पड़ता है ।

(सबका प्रस्थान)

(पहला अंक समाप्त)

दूसरा अंक ।

संगीत रचना के अन्त में आसनोपविष्ट विदूषक समेत राजा-धारिणी-परिव्राजिका और संभवानुयायी परिजनों का प्रवेश ।

राजा-भगवति ! इन माननीय दोनों आचार्यों में पहले किसका अभिनय देखना चाहिये ?

परिव्रा-विद्या में समान होने पर भी अधिक अवस्था होने के कारण गणदास ही प्रथम अभिनेता होने के योग्य है ।

राजा—मौद्गल्य ! तो तुम माननीय दोनों आचार्यों को यह बात ज्ञात कराके भगवती की आज्ञा का पालन करो ।

(मौद्गल्य गया)

गणदास आया ।

गण—देव ! शर्मिष्ठा कृत एक चतुष्पदा अर्थात् चार खण्ड युक्त एक नाटक है, तिसमें छलिक नामक एक अभिनय सहित गान भी विद्यमान है, महाराज एकाग्रचित्त से उसको सुनें ।

राजा-आचार्य ! आदर से एकाग्रचित्त होगया। अतएव अभिनेता व गायक को बुलाओ।

(गणदास का प्रस्थान)

राजा—(धीरे से) मित्र ! नैपथ्य गृहगत मालविका को देखने के लिए मेरी आँखें इतनी उत्सुक हुई हैं कि अधीरता के कारण यवनिका हटाना चाहती हैं।

विदू—(रानी की ओर देखकर) तुम्हारे नेत्र रूपी मधु के निकट मालविका रूपी मक्षिका उपस्थित है, अतएव अब आप सावधानी से दर्शन कीजिये।

(आचार्य और वक्ष्यमाण अंगों की सुन्दरता
से युक्त मालविका का प्रवेश)

विदू—(होले से) महाराज। आप देखिये। पहले चित्रपट में मालविका की जो प्रतिमूर्त्ति देखी थी; उसकी अपेक्षा वास्तविक (असली) मालविका की सुन्दरता कम नहीं है।

राजा—(रानी की ओर पीठ करके) मित्र ! चित्रपट में मालविका की प्रतिमूर्त्ति देखकर मेरे मन में इस प्रकार आशंका उत्पन्न हुई थी कि इस की असली आकृति वैसी सुंदर नहीं है। अब मुझे जान पड़ता है कि जिस चित्रकार ने वह चित्र बनाया था, वह चित्र विद्या में वैसा पारदर्शी नहीं है अर्थात् वह असल मूर्त्ति अंकित नहीं कर सका।

गण—(मालविका से) बेटी ! भय त्याग कर सावधान होओ।

राजा—(आपही आप) अहो ! इसकी सुन्दरता सब अंगों में सर्व अवस्था में ही शोभायमान है। इसके दोनों नेत्र चौड़, मुख मण्डल शरद् के चन्द्रमा की समान कान्तिपूर्ण, दोनों बाहु कंधों पर झुकी हुई, दोनों स्तनों की ऊँचाई और घन सन्निवेश के कारण हृदय अप्रशस्त है, उदर दोनों पार्श्व मानो किसी ने हाथ से सुधार दिये हैं, दोनों जाँघें लम्बी और पैरों की अँगुलियाँ कुटिल हैं, सारांश नाटकाचार्य गणदास के अभिमतानुसार ही मानों इसका देह संगठित हुआ है।

माल—(उपगान अर्थात् गान के पूर्व करने योग्य वसन्तादि राग अलाप कर) हे हृदय-प्रिय व्यक्ति दुर्लभहै,अतएव तुम निराश होओ। अहो! मेरा दाहिना अंग फड़कता है, जिनको बहुत दिनों पहले देखा है,उन को क्या इतने समय पश्चात् नेत्रपथ का पथिक कर सकूँगी ? हे नाथ ! मैं पर-वश हूं-मुझको अपनी प्रेमिका समझिये।

[रसानुयायी अभिनय]

विदू—(अपवारित होकर) मित्र ! इस चतुष्पदी को अवलम्बन करके सन्मान योग्य मालविका ने आत्मा को आपमें ही अर्पण किया है।

राजा—सखे ! मेरे हृदय में भी ऐसा ही अनुभव होता है। इस मालविका ने "मैं परवश हूं-मुझको अपनी प्रेमिका समझिये" कहकर जो गान किया, और जिस प्रकार अंगभंगी इत्यादि का अभिनय करके यह बात कही गई, उससे साफ जाना जाता है कि मुझको ही उद्देश्य करके वह सब कहा गया है। धारिणी देवी मेरे निकट बैठी है, उनके समीप रहते मेरा प्रणयानुराग न समझ कर ही यह बातें उच्चारित हुई हैं।

(संगीत के बाद मालविका बाहर जाने की चेष्टा करती है)

विदू—भद्रे ! क्षणकाल ठहरो, किसी विशेष कार्य को भूल गया हूं, उसको देखलूँ।

गण—वत्से। प्रश्न का उत्तर प्रदान पूर्वक शिक्षाके विषय की परीक्षा देकर फिर जाना उचित है।

(मालविका का ठहर जाना)

राजा—(स्वगत) अहो ! स्वाभाविक सुन्दरता होने पर वह सब अवस्थाओं में ही दूसरी प्रकार से मनोहरता धारण करती है। देह निश्चल होने के कारण इसकी कलाई में कंगन स्थिर भाव से शोभा पाते हैं। इसका बायाँ हाथ नितम्ब पर रक्खा है, श्यामालता की समान दूसरा (दाहिना) हाथ शिथिल भाव से लटक रहा है, दाहिने पैर के अँगूठे से फूल से बिछी मणिमय नृत्य भूमि में गिरे हुए फूलों को हटाती है; इसकी दोनों आँखें भूमि को ही देखती हैं, इसका आधा शरीर पैरों से नाभितक सीधा और आयत है। इस प्रकार अवस्थान करने से यह अत्यन्त मनोहर दर्शना होगई है।

देवी—गौतम ने जो कहा है। वही बात आर्यपुत्र को हृदयग्राही होती है।

गण—देवि ! यह बात न कहिये। सदा महाराज के सहचर भावमें रहने से गौतम में अत्यन्त सूक्ष्मदर्शिता दिखाई देती है। देखो—कतक वृक्ष का फल घर्षण करने पर कलुषित जल भी निर्मलता धारण करता है, उसी प्रकार पण्डितों के निकट वास करने से मूर्ख में भी ज्ञान का संचार होजाता है। (विदूषक की ओर देखकर) आपको और क्या कहना है। यदि कुछ कहना हो, तो उसको मैं सुनना चाहता हूँ ?

विदू—(गणदास की ओर देखकर) प्रथम इस कौशिकी से पूछिये, फिर मैंने जिस कार्य का व्यतिक्रम देखा है, उसको कहूँगा।

गण—भगवति ! जो देखा है, उसको गुण दोष विचार कर कहिये।

परि—जो देखा है—वह सब हीं अभिनन्दन करने योग्य है। क्योंकि मुखसे कोई बात न कही जाने पर भी अंगादि के संकेत से समस्त अर्थ ही सम्यक् प्रकार व्यक्त हुआ है। पद विन्यास सर्वथा लय संगत और रसके विषय में भी तन्मयता दिखाई देती है। अभिनय अत्यन्त कोमल है। क्योंकि नृत्य के समय हस्त द्वारा ही मान प्रकाशित हुआ है। अभिनय के समय जिस प्रकार भाँति भाँति की अंग भंगी करनी चाहिये। वह सब भी ठीक ठीक की गईं हैं। ऐसा अभिनय ही अनुराग को खेंचता है।

गण—महाराज का मत क्या है ? (मालविका कृत नृत्य गीत के गुण दोष-सम्बन्ध में क्या निश्चय करते हैं ?)

राजा—मेरा स्वपक्ष का अभिमान ढीला होगया। [मेरे द्वारा नियुक्त हरदत्त नर्त्तक श्रेष्ठ हाने का जो अभिमान करता था; वह ढीला होगया। गणदास ही श्रेष्ठ है, मालविका के ही नृत्य गीतादि ही सुन्दर हुए हैं]

गण—आज मैं उत्कृष्ट (उत्तम) नर्त्तकों में गिना गया। क्योंकि अग्नि में जैसे सुवर्ण के शुद्ध होने की परीक्षा होती है—वैसे ही जो शिक्षक विचक्षण समाज में सदोष प्रमाणित नहीं होता, वही उत्कृष्ट है।

देवी—(गणदास से) सौभाग्य वश परीक्षा द्वारा सज्जनों का सन्तोष होने से आर्य ने भली भाँति उत्कर्ष लाभ किया।

गण—देवि ! केवल मेरी शिक्षा ही उत्कर्ष (उन्नति) का कारण नहीं है। आप मुझको अपना समझ कर ग्रहण कीजिये। यह भी मेरी उन्नति का कारण है। (विदूषक की ओर देखकर) गौतम ! अब तुम्हारा क्या मत है ? सो भी कहो।

विदू—प्राथमिक शिक्षा की परीक्षा देते समय पहले ब्राह्मण की पूजा करनी चाहिये। आप उसको ही भूल गये हैं।

परि—अहो ! यह बात प्रयोग गर्भ अर्थात् इस वाक्य के प्रयोग में (मुझको कुछ दो) यही आशय है।

(सबका हास्य, मालविका का मुसकाना)

राजा—(स्वगत) आज मेरे नेत्रों ने रूपका सार अंश ग्रहण किया ! सुतरां नेत्र धन्य हुए ! क्यों कि मेरे नेत्रोंने आयताक्षी मालविका के सहास्य मुख मण्डल का दर्शन किया। उसका मुख मण्डल प्रस्फुटित अथच

पूरा न दीखते हुए किञ्जल्क युक्त पद्मकी समान मनोहर और कुछेक प्रकाशित दन्तपंक्ति द्वारा शोमायमान हैं।

गण—हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! यह रंग भूमि का पहला दर्शन नहीं है यदि पहला होता, तो दक्षिणा देने के योग्य आपकी पूजा क्यों न करता?

विदू—मैंने शुष्क मेघ गर्जित आकाश से जल पीने की इच्छा करके चातक-वृत्ति का आश्रय किया है।

परि—यह बात ठीक है।

विदू—बुद्धिमान् पुरुष जिस विषय में सन्तुष्ट होते हैं, मुझ सरीखे मूर्ख उसीमें विश्वास करके उस विषय में सन्तोष लाभ करते हैं। जब माननीय कौशिकी ने मालविका के नृत्य गीतादि उत्तम होने की बड़ाई की है,, तो फिर मैं भी यह परितोषिक प्रदान करता हूं।

(यह कहकर राजा के हाथसे कंगन खेंचना)

देवी—कुछ देर ठहरो! गुणान्तर को विना जाने अलंकार (गहना) क्यों देते हो?

विदू—गहना पराया होने से ही देने की उदारता दिखा रहा हूं।

देवी—(आचार्यकी ओर देखकर) आर्य गणदास! आपकी शिष्या की परीक्षा तो देखली गई न?

गण—बेटी! आओ अब हम चलें।

(आचार्य के साथ मालविका गई)

विदू—(हौले से राजा के प्रति) आप को सन्तुष्ट करने के लिये यहां तक (मालविका को दिखाने तक) मेरी बुद्धि की सामर्थ थी। (इसके पीछे मालविका को हथियाने का उद्योग और उपाय आपके आधीन है)

राजा—रहने दो-अब अपनी बुद्धि की सीमा दिखाने का प्रयोजन नहीं है (तुम्हारी बुद्धि की चतुराई से ही मुझको मालविका का दर्शन मिल गया, अतएव तुम्हारी बुद्धि असीम है) अब मैं मालविका के अदर्शन को अपने सौभाग्य का लोप, हृदय के आनन्द का अन्त और धैर्य के द्वार को ढका हुआ समझता हूं।

विदू०—(धीरे से) दरिद्री जिस प्रकार धन के न होने से वैद्य के निकट से विना मूल्य दवा लेना चाहता है, आप भी इस समय वैसे ही बन रहे हैं, अर्थात् मुझ को कुछ न देकर आप मेरी दिखाई हुई मालविका को हथियाना चाहते हैं—तात्पर्य-आपको मेरे लिये कुछ देना चाहिये।

हरदत्त का आना।

हर०—महाराज अनुग्रह करके इस समय मेरा कुछ अभिनय आदि देखिये।

राजा—(आप ही आप) मैंने जिस लिये इसका अभिनय देखना चाहा था, वह प्रयोजन सिद्ध होगया (प्रकट) तुम्हारा अभिनय देखने को मैं भी उत्कंठित हो रहा हूं।

हर—अनुग्रहीत हुआ।

(नेपथ्य में)—महाराज की जय हो! महाराज की जय हो!! मध्याह्न काल उपस्थित है। हंस सरोवर स्थित पद्मिनी के पत्तों की छाया में मुकुलित नेत्रों से बैठे हुए हैं, सूर्य की किरणों के तीक्ष्ण होने से अब पारावत (कबूतर) पूर्ववत् अटारियों में विचरण नहीं करते। घूमते हुए जल के फव्वारे से जल-कणों को ऊपर फिकता देखकर मोरगण प्यास से दुःखी होकर उसी ओर दौड़ते हैं। हे राजन्. जिस प्रकार आप पराक्रम आदि समस्त गुणों में परिपूर्ण हैं-सात घोड़ों वाले सूर्यदेव भी उसी प्रकार समस्त किरण माला द्वारा परिपूर्ण होकर शोभा पाते हैं।

विदू०—अहो! क्या सौभाग्य है? भोजन का समय उपस्थित हो गया। वैद्यों ने बतादिया है कि, भोजन का समय उल्लंघन करने से महाराज का शारीरिक स्वास्थ्य बिगड़ जाने की सम्भावना है। महाशय हरदत्त जी! आप क्या कहते हैं?

हर०—अब मध्याह्न-काल में और किसी बात के कहने का अवसर नहीं है।

राजा—(हरदत्त की ओर देखकर) तब तो आगामी काल में आपके नृत्य गीतादि को देखूँगा, इस समय विश्राम करो।

हर०—महाराज की जैसी आज्ञा हो।

(हरदत्त का चला जाना)

देवी—आर्यपुत्र! अब मध्याह्न क्रिया से निवटिये।

विदू०—देवि! अब भोजन पान के लिये जहां तक हो,-जल्दी करना चाहिये।

परि०-- उठ कर, महाराज का कल्याण हो।

(देवी के साथ परिव्राजिका गई)

विदू०—मित्र! मालविका न केवल रूप में ही श्रेष्ठ है,—वरन् शिल्प-कार्य में भी अपनी सानी नहीं रखती।

राजा—सखे! मालविका एक तो स्वभाव से ही सुन्दरी है—इतने पर भी फिर विधाता ने उस में शिल्प का संयोग करके मालविका को मानो कामदेव का विष-बुझा बाण स्वरूप बनाया है। सखे! अधिक क्या कहूँ-मेरे संबंध में सोचना तुम्हारा कर्त्तव्य है [जिस से मैं मालविका

को पाकर काम की पीड़ा दूर कर सकूँ, उस विषय में तुम को यत्न करना चाहिये)

विदू—आपका भी कर्त्तव्य है कि मेरे विषय में कुछ सोचें, भूंख के मारे मेरे हृदय के भीतर वड़वानल प्रज्वलित होरहा है।

राजा—यह ठीक ही है—तुम जिस प्रकार अपनी भूंख मिटाने के लिये जल्द बाजी करते हो। मित्र का (मेरा) प्रयोजन सिद्ध करने के लिये भी वैसो ही जल्दी करनी चाहिये।

विदू—आपकी कार्य सिद्धि के लिये अवसर ढूँढना पड़ेगा। चांदनी जैसे बादलों में ढक जाती है, माननीया मालविका भी इस समय वैसी ही हुई है; उसका दर्शन मिलना इस समय पराधीन (धारिणी के आधीन) है। बाज पक्षी जिस प्रकार प्राणिबध के स्थानमें मांस लुब्धहोकर मंडराता रहता है, मालविका रूप आमिष के लालच से इस समय आप भी उसी प्रकार लुब्ध और भीरू हुए हैं। आप स्वयं समर्थ होकर भी जो कार्य की सिद्धि के लिये मुझ से गिड़गिड़ाते हैं-यह केवल मेरे प्रति आपका स्नेह दिखाना मात्र ही है।

राजा—अब मैं किस प्रकार सुस्थ (सावधान) रहूं, क्योंकि इस समय मेरा हृदय रनवास की सब स्त्रियों को छोड़कर केवल मात्र उस काम लोचनो में ही आसक्त होगया है। यह मालविका हो एक मात्र मेरा अवलम्बन है।

(सब का प्रस्थान)

दूसरा अंक समाप्त।

तीसरा अंक।

(परिव्राजिका की टहलनो समाहितिका आई)

समा—भगवती ने मुझको आज्ञा दी है कि समाहितिके! धारिणी देवी को उपहार देने के लिये बीजपूर (पुष्प विशेष) ले आओ, इसी लिये प्रमद वन को रक्षिका मधुकरिका को खोज रही हूं। मधुकरिका वो यह स्वर्ण शोक वृक्ष की ओर देख रही है— अब उसके निकट चलूं।

(उद्यान—पालिका का प्रवेश)

समा—(पास जाकर) सखि! तुम्हारा उपवन रक्षादि कार्य तो निर्विघ्न सम्पन्न होता है?

मधु—यह क्या ? समाहितिका सखि! तुम कुशल से तो हो ?

समा—भगवती ने आज्ञा दी है—रीते हाथों माननीय रानी का दर्शन नहीं करना चाहिये, अतएव बीजपूर लेकर उनको दर्शन करने लिये जाना होगा।

मधु—बीजपूर तो यह तुम्हारे सामने ही हैं। अब यह तो बताओ कि दोनों नाटकाचार्य जो विद्या की उत्तमता के विषय में परस्पर विवाद कर रहे थे, उनमें भगवती ने किसको प्रशंसा करी ?

समा—हरदत्त और गणदास दोनों ही गानशास्त्र में पारंगत और अभिनयादि कार्य में चतुर हैं, किन्तु शिष्या मालविका ने नृत्य गीत में अधिक चतुराई दिखाई, इसलिये हरदत्त की अपेक्षा गणदास को ही उत्कर्ष प्राप्त हुआ अर्थात् गणदास की ही विजय हुई।

मधु—मालविका के विषय में क्या लोकापवाद सुना जाता है ?

समा—सुना हैं कि मालविका के ऊपर महाराज नितान्त ही अनुरक्त हैं, केवल मात्र धारिणीं देवीका मन रखने के लिये प्रभुत्व नहीं दिखा सकते हैं। मालविका भी नृत्य गीतादि करने के पीछे इन कई दिन तक कामातुर होकर रौद्रतप्त (धूपमें मुरझाई)मालती मालाकी समान मलीन होती है। इससे अधिक और कुछ नहीं जानती। अब मुझको विदा दो।

मधु—यह शाखावलम्बी बीज पूर लेजाओ।

समा—(अभिनय प्रकाश पूर्वक बीजपूर लेकर) सखि ! साधुजनों की सेवा करके तुम इस बीजपूर से भी उत्तम फल पाओगी।

(समाहितिका का चलना)

मधु—सखि! एक साथ ही चलेंगीं थोड़ी देर ठहरो इस स्वर्ण शोक वृक्षमें पुष्पोद्गम होने के लिये बहुत देर नहीं है, अतएव इसके दोहद * के निमित्त देवी के पास जाकर निवेदन करें।

समा—यही उचित है यह कार्य तुम्हीं को करना चाहिये।

[दोनों गईं]

(कामातुर राजा और विदूषक का प्रवेश)

राजा—(अपनी ओर देखकर) प्यारीके आलिंगन का सुख न मिलने

---

* दोहद—गर्भिणी का अभिलाष (लोक में इसको साथ देना कहते हैं) कहावत है कि स्वर्णशोक वृक्ष के फूल खिलने में विलम्ब होने पर कोई रूपवती महिला आनकर पदाघात करती है, तो शीघ्र पुष्प खिल जाते हैं। इसीको इस वृक्षका साथ देना कहते हैं।

से शरीर दिन दिन दुबला हुआ जाता है। क्षण भरके लिये भी प्यारी दर्शन नहीं देती ! इसी से आँखों में आँसू भरे आते हैं। किन्तु हे हृदय ! उस मृगनयनी के साथ तुम्हारा वियोग नहीं है, तब फिर ऐसे परम सुखमें निरत रह कर भी तुम संतापित क्यों होते हो ?

विदू०—धैर्य छोड़ कर आप को विलाप करने का प्रयोजन नहीं है। मालविका की प्रियसखी बकुल बालिका से मेरी भेंट हुई थी, आप की आज्ञानुसार उसको सब बातें सुनादी हैं।

राजा—बकुलबालिका ने क्या उत्तर दिया ?

विदू०—"स्वामी से कहो–उस आज्ञा से मैं अनुग्रहित हुई। किन्तु सर्प जैसे धन भंडार (खजाने)की रखवाली करता है,देवी भी उसी प्रकार उस दीन मालविका की अधिकतर सावधानी से रक्षा करती हैं। इस लिये उस को सहज में ही हथिया लेना जरा टेढ़ी खीर है। तो भी मैं राजा से मालविका को मिला दूंगी"।

राजा—भगवन् मन्मथ देव ! पग पग पर विघ्न संकुल विषय में अभिनिवेश सहित मुझ पर प्रहार क्यों करते हो ? देखो–यह व्यक्ति (मैं) विलम्ब नहीं सह सकता। (आश्चर्य से) हे मन्मथ ! भला कहाँ तो मन को पीड़ा देने वाला रोग और कहाँ आपका कुसुम कोमल विश्वसनीय अस्त्र ? (इन दोनों में बड़ा अंतर है) मनुष्य जो कहा करते हैं कि एक वस्तु ही कोमल और तीक्ष्णतर होती है, आप में वही बात प्रत्यक्ष दिखाई देती है। आपके अस्त्र पुष्पमय और मैं वीर पुरुष हूँ, अस्तु–वह पुष्प वाण! जब मुझको भी क्लेश देते हैं, तब वह अस्त्र अवश्य तीक्ष्णतर हैं।

विदू०—उस साधनीय कार्य का उपाय मैंने निश्चित कर लिया है, आप अपने आप को स्थिर कीजिये।

राजा—अब कर्त्तव्य कार्य से विमुख होकर दिन का शेष भाग कहाँ जाकर बिताऊँ ?

विदू०—अभी देवी इरावती ने नव वसन्तागम के बहाने प्रथमोत्पन्न मनोहर कुरुवक के फूल का उपहार भेज कर निपुणिका के द्वारा आप से कहला भेजा है कि–मैं आर्यपुत्र के साथ दोलोत्सव के सुख का अनुभव करना चाहती हूँ, आपने भी इस विषय में प्रतिज्ञा की थी–अतएव आप को प्रसन्न मन से जाना चाहिये–चलिये !

राजा–मैं नहीं जा सकता।

विदू०—क्यों ?

राजा– मित्र ! नारी जाति स्वभाव से ही चतुर होती है, मेरा हृदय दूसरी रमणी पर आसक्त हो गया है; बाहर से उस पर अनुराग दिखाऊँगा, वह क्या मेरे हृदय के इस भाव को नहीं समझ सकेगी ? अवश्य ही समझ सकेगी। अतएव देखता हूँ कि उस की प्रार्थना का खण्डन करना उत्तम होगा (इरावती ने जो प्रमदवन में मेरे साथ दोलोत्सव सुख अनुभव करने की प्रार्थना की है, उस का खण्डन करना ही ठीक है) खंडन करने के अनेक उपाय भी विद्यमान् हैं, तथापि पहले अधिक प्रणय दिखा कर अब भाव शून्य प्रणय दिखाना कभी उचित नहीं है।

विदू—रनवास में रहने वाली स्त्रियों के प्रति आपका जो अनुराग सदा बद्ध मूल रहता है, आप सहसा उसको परित्याग नहीं करसकते हैं।

राजा—(सोचकर) तो प्रमद वन का मार्ग दिखाओ।

विदू०--इधर आइये ! इधर आइये !

[दोनों चलते हैं]

विदू--यह प्रमदवन मानों वायु द्वारा कुछेक प्रकम्पित पल्लव रूपी अँगुली के इशारे से आपको जल्दी दिखाता है।

राजा--(स्पर्श सुख का अभिनय करके) निःसन्देह वसन्तऋतु पूर्ण भाव से प्रकट हुई है। सखे ! देखो–उन्मत्त कोकिलाओं के श्रवण सुखदायक शब्द करने से जान पड़ता है, मानों वसन्त सदयभाव द्वारा मुझ से पूछता है–'काम जनित कष्ट को तो आपने सह लिया, आम्रमंजरी (आम के मौल) की गन्ध से दक्षिणी पवन के मेरा अंग स्पर्श करने से जाना जाता है–मानों वसन्त अपनी स्पर्श वाली हथेली मेरे अंगमें संयोजित करता है :

विदू--आनन्द लाभ करने के लिये पहले प्रमदवन में प्रवेश कीजिये।

(दोनों का प्रवेश)

विदू—मन लगाकर देखिये ! प्रमदवन की शोभाने आपको लुभाने के लिये ही मानों वसन्ती फूलों के द्वारा मनोहर वेश धारण किया है। इस वसन्त वेश के निकट स्त्रियों का वेश भी लज्जित होता है।

राजा—मैं अचंभे के साथ इस प्रमदवन को देखता हूँ। यह लालरंग वाले अशोक-पुष्पों की कान्ति स्त्रियों के बिम्बाधरस्थ अलक्त रंग (महावर के रंग) कोभी मात करती है। काला-सफेद और लालरंग का कुरुवक पुष्प कामिनी गणों की कपोलादि स्थित पत्रावली रचना को परास्त करता है और भ्रमर रूप कज्जल युक्त पुराने पुष्पों ने अबलाओं

के ललाट-स्थित तिलक रचना का भी तिरस्कार किया है, अतएव जाना जाता है-मानों वसन्त लक्ष्मी नारी जाति के प्रेम पूर्वक प्रसाधन कार्य में अवज्ञा दिखाती है।

(यह कहते कहते उद्यान की शोभा देखना)

(अतिशय उत्कण्ठित मालविका आई)

माल---महाराज के हृदय का विना समझे बूझे उनके प्रति अनुरागिनी होकर आप ही लज्जित होती हूँ। अथवा स्नेह करने वाली सखियों के निकट यह वृत्तान्त प्रकाशित करने की शक्ति ही मुझमें कहाँ है? नहीं जानती-कन्दर्प देव और कब तक मुझको यह उपशर के अयोग्य दारुण वेदना प्रदान करेंगे? (कई पग चलकर) इस समय मैं कहाँ जाती हूँ? (याद करके) हाँ, देवीने आज्ञा दी हैं कि 'मालविके! गौतम की चंचलता के कारण झूले से गिरकर मेरे पैर में मोच आगई है; मुझमें चलने तक की शक्ति भी नहीं है, अतएव तू जाकर तपनीय-अशोक का दोहद सम्पादनकर। यदि पंचरात्रि में उसका फूल खिलजाय, तो तेरी मनोकामना सिद्ध करके प्रसाद प्रदान करूँगी' (यह कह लम्बा-श्वाँस छोड़कर)अतएव जब तकमें आज्ञा दियेहुए स्थानमें जाऊँगी,उसके बीचमें ही नूपुरादि हाथ में लिये वकुलबालिका आनकर उपस्थित होगी। अतएव क्षणकाल में निःशेष भाव से विलाप करूँ (वकुलबालिका के आने पर विलाप नहीं कर सकूँगी। क्योंकि मनका भाव प्रकाशित होजायगा)

(यह कहकर चल दी)

विदू—(मालविका को देखकर) अहो। मद्यपान विह्वल व्यक्ति को यह मत्स्यण्डिका (मिश्रीका शर्वत) उपस्थित हुई (मद्यपान से मतवाला व्यक्ति मिश्रीका शर्वत पीने से जिस प्रकार उसका नशा दूर होजाता है उसी प्रकार इस मालविका को देखने से आपकी मदन पीड़ा दूर होगी)

राजा—यह कहकर क्या निर्देश (इशारा) करते हो?

विदू-यही कि साधारण वेश धारिणी उत्कंठित मुखवाली मालविका अकेली समीप में ही विद्यमान् है।

राजा-(सानन्द) क्या मालविका?

विदू—जी हां!

राजा—अब मैं जीवन धारण करसकूंगा। सरस पक्षी की उच्च

ध्वनि सुनकर तरुराजि समावृत (वृक्षों से ढके) नदी का होना समीप ही समझ कर प्यासे बटोही का हृदय जिस प्रकार आनन्द से खिल उठता है, तुम्हारे मुख से प्यारी को निकट हीं स्थित सुनकर मेरा दुखी चित्त भी उसी प्रकार प्रफुल्लित होगया है। वह माननीया मालविका कहां हैं ?

विदू—देखिये, यही तो वह वृक्षों की ओट से बाहर निकल कर इसी ओर का आरही है।

राजा—(देखकर आनन्द से) सखा ! मैं इसको देख रहा हूँ। इसके नितम्ब भारी-कमर पतली, दोनों स्तन ऊंचे और दोनों नेत्र कानों तक विस्तृत हैं। मालविका की ऐसी देह मानों मेरा दूसरा जीवन स्वरूप ही उपस्थित हुई है। मित्र ! पहले इसको जैसा देखा था, उसकी अपेक्षा इसने मानों और भी अधिक मनोहर आकृति धारण की है। इसके गाल शरत् के तृण की यष्टि के समान पाण्डुवर्ण हैं इसके अंगों में परिमित गहने शोभा पाते हैं, इसको देखकर मुझे जान पड़ता है कि वसन्त कालीन पके हुये पत्तों से भरी अल्पमात्र पुष्प धारणी कुन्दलता शोभापाती है।

विदू—यह भी आपकी समान मदन व्याधि से ग्रसित हुई हैं।

राजा—मुझ पर तुम्हारा स्नेह है, इसी लिये तुम ऐसा देखते हो। स्नेह स्निग्ध व्यक्ति अनुकूलताका ही अनुसरण करते हैं। मुझको कामार्त्त देखकर तुम मालविका को भी कामातुर समझते हो। वस्तुतः यह समीचीन नहीं हैं, अन्यान्य कारणों से भी इसका पाण्डुवर्ण और कृशता आदि हो सकती है।

मालवि—यह तो वही सुन्दर सुकोमल दोहद की प्राप्ति का अभिलाषी अशोक वृक्ष विद्यमान् है। अभी इस वृक्ष ने पुष्प वेश धारण नहीं किया है। मैं उत्कंठित हूं-यह अशोक वृक्ष भी मेरा अनुकरण करता है। मैं जब राजा के संगम की अभिलाषिणी होकर उत्कण्ठित भाव से अवस्थान करती हूँ, यह अशोक भी उसी प्रकार रमणी चरण घात रूप दोहद लाभकी आशा से उत्कंठित हो रहा है। जो हो, अब इसकी छाया में शीतल शिला की चौकी पर बैठ कर कुछ समय तक जी बहलाऊं।

विदू०—महाराज ! आपने सुना ? इस मालविका ने अपने उत्कण्ठित होने की जो बात कही-इससे उसके कामार्त्त होने का भली भाँति अनुमान होता है।

राजा—इस बात में तुम्हारा अनुमान ठीक नहीं जान पड़ता। उत्कण्ठित होने पर ही किसी को कामार्त्त समझ लेना भूल है। क्योंकि

मलय वायु झिण्टी वृक्ष (पियाबांसा) का पराग वहन करता है, मुँदे हुए पल्लवों को खिला देता है और पल्लवान्तर्गत हिम की बूँदों से संस्पृष्ट रहता है, उस मलयाचल के स्पर्श से वायु भी साधारण पुरुषों के चित्त में उत्कण्ठा भर देता है।

(मालविका बैठ गई)

राजा—मित्र ! आओ। अब हम लता की ओट में बैठ जायँ तो मालविका हमको नहीं देख सकेगी और हम इसके भाव व चेष्टादि को समझ लेंगे।

विदू०—इरावती को मानों निकट देखते हैं।

राजा—कमलनी के प्रत्यक्ष होने पर फिर मगर नाके आदि जल जंतुओं के प्रति हाथी का लक्ष्य नहीं रहता (इतना कह कर देखते देखते बैठ गया)

मालवि०—हे हृदय ! जिस का अवलम्बन नहीं और जिसने सीमा उलंघन की है, उस अभिलाषा (राजा के मिलने रूपी मनोरथ) से निवृत्त हो। अब क्यों वृथा मुझ को क्लेश देता है ?

(राजा की ओर विदूषक का देखना)

राजा—प्यारी ! स्नेह का महत्व देखो (अपने प्रति मेरे अनुराग का प्रभाव देखो) हे केले के खंभ की समान जाँघों वाली ! तुम अपनी उत्कंठा का कारण प्रकाशित नहीं करतीं, और अनुमान से भी किसी बात का सच्चा पता नहीं लगता, तो भी तुम जो इस प्रकार वेदना प्रकाशित करती हो-उसमे मैं अपनपे को ही इस का लक्ष्य समझता हूँ।

विदू—महाराज ! अब आप इस मालविका को निश्चय ही भोग लगावेंगे। यह जो वकुलबालिका एकान्त में बैठी थी, मैंने उसको काम का संवाद प्रकाशित करने की आज्ञा देकर भेज दिया है और कह दिया है कि (जिस से मालविका महाराज का हो दम भरने लगे तू उसीका उपाय करना) (वकुलबालिका ही भली भाँति समझा बुझा कर मालविका को आपके अनुकूल कर देगी)

राजा—मित्र ! मैं जो मालविका से सहवास करना चाहता हूं इस वकुल बालिका को क्या उसका वृत्तान्त ज्ञात है ?

विदू—यह दासी की लड़की क्या ऐसी भारी आज्ञाको भूल जायगी।

(पैरों का गहना हाथ में लिये वकुलबालिका आई)

वकुल—सखी ! तुम कुशल मंगल से तो हो ?

मालवि—अरे क्या वकुलवालिका सखि ! तुम तो अच्छी हो ? आओ—बैठो।

वकुल—(बैठकर) तुम्हारे योग्य होने से ही देवी ने तुमको अशोक दोहद के लिये नियुक्त किया है, अव तुम अपना एक पैर लाओ मैं उसमें महावर लगाकर पायजेब पहरादूं ?

माल—(आप ही आप) हृदय ! अब सुख से प्रयोजन नहीं है। यह तो गहना स्वरूप विभव उपस्थित है। अब अपनपे को इससे किस भाँति विमुख करूं ? अव अथवा यही मेरी मृत्यु का अलंकार स्वरूप होगा।

वकुलवा० सखि ! चुपचाप क्या सोच रही हो ? इस तपनोयाशोक के पुष्पाङ्गन के लिये देवी अत्यन्त ही उत्सुक होरही हैं।

राजा—क्या-यह सब सामान अशोक दोहद के लिये है ?

विदू—आप क्या नहीं जानते,देवी विना ही कारण इसका रनवासोपयोगी वेश करेंगी ?

माल— तो अपने हाथ में मेरे पैर थमाने का अपराध क्षमा करना।

(यह कहकर पैर वढ़ा दिया)

वकुला—हे सखी ! तुम मेरी देह स्वरूप हो।

(चरण सजाने का अभिनय)

राजा—मित्र ! देखो प्यारी के पैरोंमें महावर की रेखा खिंचने से जान पड़ता है, मानों शिवकी क्रोधाग्नि से भस्मीभूत कामदेव रूपी वृक्ष से पल्लव उगा है।

विदू—देवी ने मालविका को (अशोक पर पदाघात रूप) जो आज्ञा दी है, वह चरण के योग्य ही हुई है।

राजा—तुमने ठीक ही कहा—मालविका के महावर से गीले पैरों की लाली नई कोंपल के तुल्य एवं नखों की दीप्ति से वह सुशोभित है। वह इस चरण से दोहद की अपेक्षा अवस्थित अजात पुष्प अशोक वृक्ष को और नये अपराधो प्रणत शीर्ष मुझको प्रहार करने के योग्य है।

विदू—यह माननीया मालविका अवश्य ही प्रणयापराधी आपको और इस अशोक वृक्ष को इस चरण से आघात करेगी अर्थात् मालविका आपकी पत्नी होगी।

राजा—सिद्धि को देखने वाले ब्राह्मण का वचन मस्तक पर धारण करता हूं (तुम ब्राह्मण हो, तुम्हारा वाक्य अव्यर्थ है, मैं अवश्य मालविका को पत्नी रूप में प्राप्त करूंगा)

(मदोन्मत्ता इरावती और निपुणिका नाम्नी चेटी आई)

इरा—सखी निपुणिके! वहुतों के मुख से सुना है कि मद (गौडी इत्यादि पान जनित मत्तता) नारी जाति का उत्तम अलंकार स्वरूप है, क्या लोगों का यह कहना सच है?

निपु—पहले लोकापवाद था, अब तो वह सच्चा ही हुआ।

इरा—मेरे प्रति स्नेह के कारण सन्तोषकारक बात मत कहना। अब वता दोलागृह कहाँ है? मुझे कैसे मालूम हो? स्वामी दोलागृह में प्रथम आये हैं या नहीं?

निपु—राजमहिषी! प्रणय अखण्ड है (आप के प्रति महाराज का पूरा प्रेम है) सुतरां दोलागृह में महाराज पहले ही आये हैं।

इरा—आनुगत्य दिखाने की आवश्यकता नहीं है–पक्षपात छोड़ कर वात कहो।

निपु—वसन्तोत्सव में उपहार* प्राप्त होने के लालच से आर्य गौतम ने कहा है कि राजा प्रथम ही दोलागृह में आवेंगे, अतएव रानी जी शीघ्रता करें।

इरा—(अवस्था सदृश चलकर) सखी! मद्यपान से उत्पन्न मत्तता के कारण मेरा शरीर विकल होरहाहै। मेरा हृदय ही मुझसे जल्दी कराता है। किन्तु (मत्तता के कारण) मेरे दोनों पैर शीघ्र चल नहीं सकते।

निपु—लो यह हम दोलागृह में आपहुंचीं।

इरा—निपुणिके! आर्यपुत्र यहाँ दीखते नहीं?

निपु—अवश्य दीखेंगे। कदाचित् परिहास करने के लिये वे कहीं छिप रहे होंगे। हम भी इस प्रयंगुलता तक बिछी हुई अशोक शिला की चौकी पर वैठें।

इरा—यही सही।

निपु—चारों ओर देख कर राजमहिषी! देखो आमकी मंजरी ढूँढने के लिये जाकर चेटी ने मुझ को काट लिया।

इरा—कैसे?

निपु—अशोक की छाया में वैठकर वकुलवालिका मालविका के पैरों में गहना पहराती है।

इरा—(शंका का अभिनय करके) मालविका को यह उचित नहीं है, तुम क्या सोचती हो?

निपु—मेरे विचार में ऐसा जाना जाता है कि दोला (झूला) से गिर

* तंदुल लड्डू आदि।

जाने के कारण धारिणी देवी के पैरों में वेदना बोध होती है, उसी लिये मालविका को अशोक दोहद के लिये नियुक्त किया है। ऐसा न होने पर जिस नूपुर (पाजेब) को अपने चरण में पहराहै, उसे परिजन को पहरने की आज्ञा क्यों दी ?

इरा—इस बात में मुझको महा सन्देह उत्पन्न हुआ है ?

निपु—सखि ! अब मेरे दोनों पैर आगेको नहीं बढ़ना चाहते। मित्रता मुझको विह्वल किये डालती है (यदि कहो–फिर ठहर क्यों नहीं जाती तो उसका उत्तर यह है कि) सन्देह को दूर करना ही होगा। (राजा मालविका को देखने के लिये उस पर अनुराग दिखाते हैं कि नहीं–मेरे मनमें जो यह सन्देह उत्पन्न हुआ है. उसको बिना दूर किये शान्त नहीं हूंगी) मेरे मन में जो सन्देह हुआ है, वह युक्ति विरुद्ध नहीं है। (राजा को लुभाने के लिये ही मालविका एकान्त में आकर शृंगारादि करती है। अतएव राजा का भी उस पर अनुराग उत्पन्न होने की संभावना है)

बकुल—(मालविका को दोनों चरण दिखाकर) यह तुम्हारे एक परमें महावर लगाई गई,कहो–यह तुम्हारी रुचिके अनुसार हुई या नहीं ?

माल—अपने पैरों की बड़ाई करने में लाज लगती है। यह अलंकार विद्या तुमने किस से सीखी ? अलंकार सजाने में तुम अत्यंत चतुर हो।

बकु—इस कार्य में–मैं भर्त्ता की चेली हूँ।

विदू—तो अब गुरु–दक्षिणा देने के लिये जल्दी करनी चाहिये। अर्थात् राजा को मालविका प्रदान करने में यत्नवान् हो ओ।

माल—भाग्य की बात है जो तुम इस प्रकार प्रसाधन कार्य में चतुर होकर भी गर्वित नहीं हो (तुम में गर्व न होने से बड़ाई के योग्य हो)

बकुल—उपदेशानुरूप तुम्हारो इस नृत्यादि शिक्षा के योग्य चरण के तुल्य चरण पाने से मैं गर्वित होती। (प्रसाधन कार्य में चतुर होने से मैं गर्व नहीं करती, किन्तु तुम्हारे दोनों चरण जैसे मनोहर हैं, यदि ऐसे दोनों चरण मेरे होते, तो मैं गर्व अनुभव करती। जब कि मेरे चरण वैसे नहीं हैं, तब फिर गर्व कैसे होसकता है ? गर्व करने के योग्य तो तुम ही हो) (मालविका के पैर पर की महावर देख कर स्वगत) अहो ! राजा का दूती कार्य मेरा सफल हुआ। (प्रकट) सखि ! तुम्हारे एक पैर में महावर लगाना शेष है, अब (शोषनार्थ) फुत्कार (फूँक) देनी चाहिये, परन्तु यहाँ प्रबल हवा चल रही है, (अत एव अधिक फूँक देने का भी प्रयोजन नहीं है)

राजा—मित्र ' मालविका के महावर लगे गीले पैर फूंक से सुखाने पर मेरा कर्त्तव्य प्रथम सेवावसर ही पूरा होगा अर्थात् पहले मैं ही उसके इन चरणों की सेवा करूंगा! यही मेरा कर्त्तव्य था। किन्तु वकुल-बालिका ने उस कर्त्तव्य को पूरा किया।

विदू—फिर पछतावा क्यों करते हो? आप सदा ही इस काम को करेंगे (मालविका आपकी भार्या होगी ही। सुतरां--आप सदा ही उसके चरणों की सेवा कर सकेंगे)

वकुल—सखि! तुम्हारे दोनों चरण लाल रंग के शतदल पद्म की समान शोभा पाते हैं, तुम सब प्रकार से पति के अंग में शयन करने वाली होओ।

(इरावती का निपुणिका को इशारा करना)

राजा—(मेरे मनके सी बात कहने से) वकुलबालिका की यह बात मेरे लिये आशीर्वाद स्वरूप हुई है।

माल—सखि!

वकुल—जो बात कहना ठीक है, वही कह रही हूँ (इसमें कुछ दोष नहीं है)।

मालवि०—मैं तुम्हारी प्रियतमा अर्थात् प्रेम पात्री हूं, अतएव जिस से मेरे मनमें वेदना हो—वह बात तुमको नहीं कहनी चाहिये। क्योंकि चक्रवर्ती राजा की पत्नी बनना मेरे लिये असंभव है।

वकुल—तुम केवल मेरी ही स्नेह पात्र नहीं हो।

मालवि०—तो फिर किसकी हूं?

वकुल—गुण ग्राहक राजा की भी तुम प्रियतमा हो।

माल तुम झूंठी बात कहती हो। मुझमें वैसे गुण नहीं है। निःसंदेह राजा गुण ग्राहक हैं किन्तु मुझ में वैसे गुण कहाँ हैं, जो महाराज की प्रियतमा बन सकूंगी?

वकुल—तुम में जो गुण नहीं हैं, यह बात तो महाराज के दुबले और पीले रंग के अंगों से ही सूचित हो जाती है। (तुम्हारे लिये चिन्ता करके महाराज, दिन दिन दुबले और पीले हुए जाते हैं; यदि तुम में गुण नहीं होते, तब वे तुम्हारे प्रति इतने अनुरागी और पक्षपाती क्यों होते?)

निपुणि—दुष्ट स्वभाववाली वकुल बालिका की शेष बात सच्ची ही मालूम होती है।

वकुल—अनुराग की अनुराग के द्वारा ही परीक्षा की जाती है—इस बात पर विश्वास करो।

माल—तुम क्यों अपने अभिप्रायानुसार बात कहती हो ?

वकुल—नहीं-नहीं-यह सब निःसन्देह स्वामीके अनुराग की कोमल शक्ति है, उन्होंने अपने मुख से न कह कर गौतम के मुख से यह बात कहला भेजी है।

माल—सखि ! देवी को स्मरण करके मेरा हृदय विश्वास नहीं करता राजा को मैं आत्म समर्पण करूं—इस विषय में देवी मेरा सदासे विरोध करती आई हैं, अतएव मैं जो महाराज के अंक में शयन करूंगी—इसका मेरे हृदय में विश्वास नहीं होता ।

वकुल—मूढ़े ! भ्रमर गण विघ्न होने के डर से क्या वसन्तकालीन नवीन आम की मंजरी को शिरोभूषण नहीं करेंगे ?

माल—तो तुम मेरी इस वर्त्तमान विपद में सहायता करो (अब क्या करना चाहिये—यह निश्चित न कर सकने पर मैं दुःखी हुई हूं—अतएव तुम कोई अच्छी युक्ति बताकर मेरी सहायता करो)

वकुल—मेरा नाम वकुलवालिका है, विपत्ति पीड़ा उपस्थित होने पर मैं धैर्य का सहारा लेती हूँ, (वकुल का फूल स्वभाव से सौरभ सम्पन्न (खुशबूदार) होता है, किन्तु तो भी यदि उसको घिसा जाय, तब और भी अधिक सौरभ सम्पन्न होता है । मैं भी उसी प्रकार स्वभावतः चतुर हूं, इस पर भी फिर धैर्यावलम्बन करने पर विशेष प्रकार से विवेक शालिनी हुई हूं, इस लिये मेरे उपदेश पर चलना ही इस समय आपके पक्ष में अधिक अच्छा है ।)

राजा—साधु—वकुलवालि के ! साधु ! मेरा मनोरथ पूरा करने में मालविका की सम्मति है, इसको समझ लेने पर वकुलवालिका का यह वचन कहना ठीक ही हुआ है और निरादर करने पर भी यह बात कभी अनुचित नहीं होती । इस प्रकार उत्तर देकर वकुलवालिका ने मालविका को अपनी बात में राज़ी कर लिया है । कामातुर व्यक्ति का प्राण जो दूती के आधीन रहता है—यह सर्वथा सत्य है ।

इरा०—सखि ! देख-वकुलवालिका ने मालविका को अपनी आज्ञा का पालन करने में उद्यत करने का उद्यम किया है ।

निपु०—रानी जी ! दूती के काम में ऐसा उपदेश देना न्याय संगत (ठीक ही) है ।

इरा०—मेरे हृदय में जो आशंका थी, वह ठीक निकली । अतएव जो करने पर इसका उद्यम विफल हो जाय, उसी उपाय को सोचना चाहिये ।

वकुल—तुम्हारे दूसरे पैरमें भी महावर लगाये जानेका काम समाप्त होगया-लाओ-अब इस में भी पाजेब पहरा दूँ ? (दोनों पाजेब पहराकर) सखि ! लो अब उठो । अशोक दोहद का कार्य करके देवी की आज्ञा पालन करो ।

(दोनों का उठना)

इरा—सुनलिया-देवी का आदेश ? जो हो अब देखूँ इसके पीछे और क्या होता है ?

वकुल—यह रक्तवर्ण उपभोग के योग्य (शिरोभूषण वा सुरत संभोग के योग्य) पदार्थ तुम्हारे सामने ही विद्यमान है ।

माल—क्या, स्वामी ?

वकुल—(कुछेक हँसकर) नहीं-स्वामी नहीं ? अशोक शाखावलम्बी पल्लव का गुच्छा सामने, विद्यमान है, उसके द्वारा कर्ण भूषण (करन फूल) बनाओ ।

(मालविका का विषादाभिनय)

विदू—कहिये महाराज ! क्या सुना ?

राजा—सखे ! कामी जनों के लिये इतना ही यथेष्ट है । एक जन उत्कण्ठा रहित और दूसरा जन उत्कण्ठा से व्याकुल है-इस प्रकार विषम भाव वाले नायक नायिका का संयोग होने पर वह मेरे मत से सुसंयोग नहीं जान पड़ता । किन्तु यदि दोनों जनों का अनुराग बराबर हो और मिलन की आशा न हो, उस अवस्था में प्राण वियोग (मरजाना) भी अच्छा है ।

मालविका का पल्लवालंकार धारण और लीला पूर्वक
अशोक के प्रति पद प्रहार

राजा—मित्र ! इस मालविका ने अशोक वृक्ष के निकट से कर्ण फूल लेकर इस पर पदाघात किया । इन दोनों के समान विनिमय के कारण मैं अपनये को ठगा समझता हूँ (मैं इसको कर्णभूषण नहीं देसका, चरण घात भी नहीं पासका, अतएव मैं वंचित हुआ)

माल—यह अशोक मुझसे प्रतिकूल है । रमणी के चरण का आघात पाने परभी इस अशोक में पुष्पोद्गम नहीं हुआ । मेरा उद्योग क्या सफल होगा ?

वकुल—सखि ! तुम्हारा दोष नहीं है । यदि तुम्हारे चरण का

आघात पाने पर भी पुष्पोद्गम होने में विलम्ब हो-तो यह अशोक ही कर्त्तव्य ज्ञान हीन है।

राजा—हे अशोक ! पतली कमर वाली मालविका के शब्दायमान नूपुर शोभित तत्काल खिले हुए कमल की समान कोमल चरण द्वारा आघात करने से तुम सम्मानित हुए हो, इतने पर भी तुम यदि तुरन्त पुष्प न खिलाओ-तो कामार्त्त पुरुष जिस प्रकार वृथा रमणी का पदाघात सहता है, तुमने भी उसी प्रकार वृथा मालविका का पदाघात सहा। मित्र ! इन दोनों का जो कथोपकथन होता है, उसके शेष होने पर इस स्थान में जाने की इच्छा करता हूँ।

विदू—आइये—मालविका को हंसावें। कथोपकथन समाप्त होने तक विलम्ब करने का प्रयोजन नहीं है।

(दोनों का प्रवेश)

निपुणि—रानी ! रानी ! महाराज अशोक कुंजमें प्रवेश करते हैं।

इरा—मेरे हृदय ने पहले से ही इस बात को सोच रक्खा है।

विदू—(निकट आकर) माननीय प्रियसखा के समीपमें विद्यमान रहते हुए अशोक को तुम्हारा वामपद द्वारा प्रहार करना क्या उचित हुआ है ?

दोनों—(संभ्रम से) यह क्या-स्वामी ? महाराज की जय हो ! महाराज की जय हो !

विदू—वकुलवालिके ! तुम तो सभी बात जानती हो ? तब फिर क्यों तुमने माननीया मालविका को (अशोक वृक्ष में पद प्रहार रूप) अभिनय (व्यापार) करने का निषेध नहीं किया ? यह अशोक वृक्ष निरपराधी है-इस पर पदाघात करना शिष्टाचार के विरूद्ध है। तुमको रानी की आज्ञा मिली है-सब ही जानती हो-मालविका को उचित था कि अशोक पर पदाघात न करके राजा पर ही पद प्रहार करती।

(मालविका के डरने की चेष्टा)

निपु—राजमहिषी ! देखो-आर्य गौतम किस काम में लग रहा है।

इरा—यह घृणित ब्राह्मण ऐसा न करने पर किस प्रकार जीविका निर्वाह करे।

वकुल—आर्य ! धारिणी देवी की आज्ञा से ही मालविका ने अशोक वृक्ष में पदाघात किया है। इस विषय में यह पराधीन है; अतएव आप प्रसन्न हूजिये

(मालविका और वकुलबालिका राजा को प्रणाम करती हैं)

राजा—यदि ऐसा है (यदि धारिणी देवी की आज्ञा से ही पद प्रहार किया गया है) तो हे भद्रे ! उठो। तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है।

(यह कह मालविका का हाथ पकड़ कर उठाना)

विदू—आपकी हो बात ठीक रही कि अशोक वृक्ष पर पदाघात के विषय में हमने देवी धारिणी के मान की रक्षा की है।

हे विलासिनी ! हे वामोरू ! कठिन वृक्ष के स्कन्ध में पल्लव की समान कोमल बाँयें चरण से प्रहार करने पर क्या तुम्हारे चरण में वेदना मालूम नहीं हुई।

(मालविका लजा जाती है)

इरा०—अहो ! आर्यपुत्र का हृदय १ नवनीत के समान कोमल है।

माल०—वकुलवालिके ! आओ-देवी की आज्ञा पालन होगई-यह बात उनके पास चल कर कहें।

वकुल—स्वामी से कहो कि विदा दें। स्वामी की विना आज्ञा लिये चल देना ठीक नहीं होगा।

राजा—अब तक वैसा अवसर न मिलने से मैं अपनी प्रार्थना सूचित नहीं कर सका। अब अवसर मिला है, अतएव मेरी प्रार्थना सुनो। फिर चली जाना।

वकुला--सावधान होकर सुनो। स्वामी आज्ञा दीजिये।

राजा--प्रिये ! केवल मात्र जो अशोक ही तुमसे दोहद मिलने की आशा में था, सो नहीं-बल्कि यह व्यक्ति (मैं) भी बहुत दिनों से (तुम्हें प्रथम देखने के दिनसे) धैर्य रूपी पुष्प धारण नहीं कर सका है, अतएव अमृतोपम देह के स्पर्श से अनन्य रुचि (केवल आप में ही अनुरक्त) इस व्यक्ति का दोहद (अभिलाषा) पूर्ण कीजिये।

इरा--(सहसा पास जाकर) पूर्ण कीजिये। पूर्ण कीजिये, अशोक कुसुम प्रदर्शन नहीं करेगा। किन्तु यह राजा कभी पुष्प धारण नहीं करेंगे वरन फल उत्पन्न करेंगे।

(इरावती को देख कर सब का सिटपिटा जाना)

राजा--(खिसियाना सा होकर) सखे ! अब क्या करना चाहिये।

विदू--करना क्या चाहिये--इस समय जंघा बल से ही काम लो अर्थात् भाग चलो।

१-माखन।

इरा—बकुलबालिके ! धन्य है ! अच्छा काम किया । अब आर्यपुत्र का मनोरथ पूरा कर।

दोनों—राजामहिषी ! प्रसन्न हूजिये। राजा के प्रेमको खेंचने की योग्यता हम दोनों में नहीं है।

[दोनों गईं]

इरा—अहो ! हिरनी जिस प्रकार व्याध के संगीत से आकृष्ट चित्त होकर उसके पास पहुंच जाती है और फिर मर्मपीड़ा को प्राप्त होती है, मैं भी उसी प्रकार राजा की धोखाभरी बातों का विश्वास करके यहाँ आकर मर्म वेदना को प्राप्त हुई। राजा ने मुझ से कहा था 'प्यारी ! अब तुम प्रमदवन में जाना, हम दोनों वहाँ आवेंगे' इसी बात पर भरोसा करके यहाँ उपस्थित हो केवल मर्मवेदना ही पाई।

विदू—(हौले से) मित्र ! अब क्या उत्तर दिया जाय, उसको सोच कर निश्चित करो निर्जन नदी के जल के समीप में किसी चोर को पकड़ कर मार पीट करनेपर जिस प्रकार उस मारपीट करनेवाले के शरीर का सन्धिस्थान काटकर भाग जाना चाहता है,मैं भी उसी प्रकार इस निर्जन स्थान में तुम्हारे द्वारा नियमित होकर स्वीकृत सन्धि भंग पूर्वक अन्य स्थान में भाग जाना चाहता हूँ। यही इस समय यहाँ का उत्तर है।

राजा—सुन्दरी ! मालविका से और मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है, तुम्हारे आने में विलम्ब देखकर मैं किसी प्रकार अपना जी बहला रहाथा।

इरा—(विदूषक से) तुम अविश्वासी हो । आर्यपुत्र ने जो मालविका रूप जी बहलाने की वस्तु पाई है, यह मैं नहीं जानती थी। जानने पर यह दुःखभागिनी यहाँ कभी न आती।

विदू—महिषी ! सब भार्याओं पर ही राजा का एकसा प्रेम है; अतएव इस विषय में किसी प्रकार को वाधा न दीजिये। आपने प्रत्यक्ष देख लिया कि धारिणी देवी की परिचारिका मालविका के सहित महाराज वार्त्तालाप और परिहासादि करते थे। यदि धारिणी देवी अपनी किसी परिचारिका के साथ बातचीत करने में राजा को मना करतीं हैं, तो जैसे आपके अन्तर में दुःख होता है, आप भी जो धारिणी देवी के परिजनों से बातचीत करने में राजा को मना करेंगी, तो उसी प्रकार धारिणी देवीके हृदय में भी दुःख होना संभव है। इसमें कोई दोष नहीं है।

इरा—अच्छा-यही हो-राजा मालविका के संग बात चीत करें—तब फिर मैं यहाँ रहकर अपनी आत्मा को क्लेश क्यों दूँ ? अब मैं दूसरे स्थान में जाती हूँ। [रोष से चला जाना]

राजा--(इरावती के साथ ही चलकर) देवी ! प्रसन्न हूजिये।

(काञ्चीदाम से पैर बंध जाने पर इरावती का गमनोद्योग)

राजा--सुन्दरी ! प्रणयी व्यक्ति के प्रति उदासीनता नहीं दिखानी चाहिये।

इरा—शठ ! अब तेरा विश्वास नहीं रहा।

राजा—प्यारी ! तुम शठ कह कर मेरा निरादर करती हो-सो इसमें कुछ हानि नहीं है; किन्तु हे चण्डी ! तुम्हारा चिर परिचित यह काञ्चीदाम पैरों में पड़ कर प्रार्थना करता है, इसको निरादर से त्यागना तुम्हें उचित नहीं है।

इरा—यह खल स्वभाव से खला तुम्हारी चालपर ही चलती है। इसमें खला ने प्रथम मेरे जाने में वाधा दी और फिर कुछ ही देर बाद मेरे पैरों में गिर कर अनुनय विनय करने लगी।

(मेखला उठा कर उससे राजा को मारने की इच्छा का प्रकाश करना)

राजा—मित्र ! धारावर्षिणी मेघमाला जिस प्रकार तड़ितमाला द्वारा विन्ध्यपर्वत पर आघात करती है, यह अश्रुधारा गिराने वाली कुपित इरावती भी उसी प्रकार नितम्ब मण्डल से उपेक्षा वश स्खलित कांचीदाम द्वारा मुझ पर प्रहार करने को उद्यत हुई है।

इरा—क्या फिर मुझको अपराधिनी करते हो ?

राजा—(काँचीदाम सहित इरावती का हाथ पकड़ कर) हे कुटिल केशि ! मैं अपराधी हूं-मुझको कांचीदाम प्रहार रूपी दण्ड देने में उद्यत होकर फिर तुम रुक क्यों गईं ? तुम इस दास पर कुपित हुई हो और इस समय तरह तरह की विलास भंगीभी दिखा रही हो, अतएव तुम्हारी यह लीला भी चमत्कारिणी है। मुझको जान पड़ता है कि तुम निःसन्देह मेरा अपराध क्षमा करने को राजी हुई हो (यह कह कर इरावती के पैरों में गिरा)

इरा—अरे। यह मालविका के चरण नहीं हैं, जो तुम्हारी आनन्द जनक अभिलाषा पूर्ण होगी ?

(चेटी के साथ इरावती का चला जाना)

विदू—अब उठिये। इरावती आप पर प्रसन्न नहीं हुईं।

राजा—(उठकर और इरावती को न देख कर) इरावती देवी क्यों गुस्से में भर कर चली गईं ?

विदू—आपके भाग्य से ही इरावती देवी पूर्व अनुष्ठित बुरे व्यवहार के कारण असन्तुष्ट होकर चली गईं हैं (यहाँ होने पर और भी

न मालूम क्या अनर्थ कर डालतीं-अतएव उनका चला जाना आपके पक्ष में सौभाग्य की ही बात हुई) चलिये-मंगल गृह के जिस प्रकार मेषादि अन्यान्यराशियों में वक्र भाव से गमन करने पर अनिष्ट घटता है, उसी प्रकार जब तक इरावती वक्र (प्रतिकूल) होकर कोई अनिष्ट संघटित न करे-तब तक हम इस स्थान से प्रस्थान कर जायँ।

राजा—अहो ! कामदेव की क्या ही विषमता है ? मालविका में मेरा चित्त अत्यन्त ही आसक्त है। मेरे प्रणाम करने पर भी इरावती उसकी अपेक्षा करके चली गई। मेरे प्रति इरावती प्रेम करती है, किन्तु इस समय वह क्रोधित होकर गई है, अतएव मुझको उपेक्षा करके रहने पर भी रह सकती है। सुतरां इस अवसर में मैं मालविका के मिलने का कोई उपाय निकाल सकता हूं। [सब का जाना]

तीसरा अंक समाप्त।

चौथा अंक।

(उत्कण्ठित राजा और प्रतिहारी आया)

राजा—(आप ही आप) जब चित्र देखने के समय मालविका का नाम मात्र कानों में प्रविष्ट हुआ था; तब उसके समागम की आशामें कन्दर्प रूपी वृक्ष अंकुरित हो उठा था। फिर जब नृत्यादि करने के समय वह दृष्टिगोचर हुई, तब उस वृक्ष में अनुराग रूपी पत्ते उत्पन्न हुए ।।अन्त में जब उसके हाथ को स्पर्श किया, तब रोमांच होने से वह वृक्ष पुष्पित होगया। अतएव अब वह काम-वृक्ष मुझको अपने फल का रस चखा कर सुखी करे। (प्रकट) अरे गौतम !*

प्रति—महाराज की जय हो ! जय हो !! गौतम यहाँ उपस्थित नहीं है।

राजा—(स्वगत) ओः भूला ! गौतम को तो मैंने मालविका की खबर लेने को भेज दिया है।

(विदूषक आया)

विदू—महाराज की जय हो !

---

* इस स्थान में गौतम (विदूषक) के उपस्थित न होने पर भी राजा ने अन्य मनस्कता के कारण भ्रम से सम्बोधन किया।

राजा—(प्रतिहारी से) जयसेन ! धारिणी देवी के झूले से गिर पड़ने पर पैर में चोट लगी है; अब उनके परिजन किस स्थान में उनकी सेवा करते हैं, यह जान आओ।

प्रति—महाराज की जो आज्ञा [गया]

राजा—गौतम ! तुम्हारी माननीय सखी की क्या खबर है ?

विदू—बिलाव के पकड़ने से कोकिला की जो दशा होती है-मालविका की भी वही अवस्था है।

राजा—(दुःख से) किस प्रकार ?

विदू—शोचनीया मालविका पिंगलाक्षी नाम्नी देवी की परिचारिका द्वारा पहाड़ की कन्दरा के समान गंभीर भूगर्भस्थ कोषागार गृह में डाल दीगई है।

राजा—मालविका के साथ मेरा गुप्त प्रेम जानकर ही क्या उसको कोषागार में डाला गया है ?

विदू—जी हां !

राजा—मेरे प्रतिकूल होकर देवी को इतना क्रोधित किसने किया ?

विदू—सुनिये ! परिव्राजिका ने मुझसे कहा है,-गत कल्ल देवी के पैरों में जो चोट लगी है, उसीके विषय में उनका कुशल पूछने के लिये इरावती वहाँ गई थीं।

राजा—फिर ? फिर ?

विदू—धारिणी देवी ने इरावती से पूछा—'प्रमदवन में क्या प्राणवल्लभ का दर्शन किया।' इरावती ने कहा—'राजा के प्रति तुम्हारा प्रिय व्यवहार इस समय अच्छा नहीं है, क्योंकि तुम्हारी निज परिजन (मालविका) के प्रति राजा की प्रीति उत्पन्न हुई है। यह तुमको मालूम नहीं है?'

राजा—मालविका के प्रति मेरा अनुराग उत्पन्न होना प्रकाशित न होने पर भी मालविका के सम्बन्ध में (मेरा यह जो प्रणयाकर्षण रूप दोष स्थापन) है, यही डर उत्पन्न करता है।

विदू—फिर इरावती कर्तृक खेद को प्राप्त हुई धारिणी देवी ने जान लिया कि तुम्हारे अशिष्ट व्यवहार के विना भी यह सब घटना घटी है अर्थात् आपकी चेष्टा के विना ही यह सब बात हुई है-इरावती ने इशारे से यही धारिणी देवी को जताया है।

राजा—अहो ! तब तो इरावती का क्रोध बहुत काल तक स्थायी रहेगा। इसके पीछे क्या हुआ ? कहो।

विदू—इसके पीछे फिर क्या कहूं-मालविका और वकुलवालिका दोनों इस समय पैरों में बेड़ियाँ पहने जहाँ सूर्य की किरणें भी स्पर्श न कर सकें—ऐसे पाताल में दो नाग कन्याओं की समान वास करती हैं।

राजा—अहो! बड़ा ही कष्ट है। मधुर कण्ठ वाली कोकिला और भौंरी-दोनों जिस प्रकार विकसित आम्र-मंजरी के संसर्ग में रहती हैं, वे दोनों भी ठीक उसी प्रकार वास करती थीं। अब सामने की प्रबल वायु सहकृत अकाल वृष्टि ने उनको कोटर में प्रविष्ट करा दिया। उनको छुड़ाने के विषय में अब क्या उपाय है?

विदू—उपाय और क्या होगा? देवी ने कोषागार के रक्षा-कार्य में नियुक्त व्यक्ति को मालविका के विषय में आज्ञा दी है कि "बिना मेरी अँगूठी दिखाये मालविका अथवा वकुलबालिका को मत छोड़ना"।

राजा—(लम्बा श्वाँस छोड़ कर चिन्ता से) मित्र! अब क्या करना चाहिये?

विदू—(सोच कर) उपाय तो इस का है।

राजा—कैसा?

विदू—(चारों ओर को देख कर) कोई कहीं छिप कर न सुनता हो? इसलिये आपके कान में ही कहूँगा। (कान के धोरे मुख ले जाकर) ऐसा।

राजा—(सहर्ष) अति उत्तम। तो फिर अब उस उपाय को काम में लाना चाहिये।

(प्रतिहारी आया)

प्रति—देवी इस समय उत्तम वायु पूर्ण स्थान में शयन कर रही हैं। रक्तचन्दन धारिणी परिचारिका उनके पैरों को हाथ से पकड़ कर (चंदन लेपन द्वारा) उनकी सेवा करती हैं; देवी धारिणी भगवती कौशिकी के सहित वार्त्तालाप करती हुई आनन्द से अवस्थान करती हैं।

राजा—तो अब हमारे उपाय मिलने का उचित अवसर है।

विदू—तो आप जाइये। मैं भी देवी को देखने के लिये अरिक्त हस्त होऊँ। (रीते हाथ जाना अनुचित है, इसलिये पुष्पादि लेकर चलूँगा)

राजा—जल सेना से हमारी यह गुप्त बात कहदो।

विदू—जो आज्ञा। (कान में) इस प्रकार

(प्रस्थान)

राजा—जलसेन! मुझको प्रवात शयन गृह का मार्ग दिखाओ।

प्रति—महाराज ! इधर आइये ! इधर आइये !

(शयाना देवी-परिव्राजिका और संभवानुसार)

(परिजन गणों का प्रवेश)

देवी—भगवति ! मनोहर उपाख्यान है । अच्छा फिर इसके पीछे ?

परि—(चारों ओर देख कर) देवी ! इसके पीछे फिर कहूँगी । माननीय विदिशेश्वर उपस्थित हुए हैं ।

देवी—अहो ! स्वामी ? [उठना चाहती है]

राजा—मेरे स्वागत के लिये उठकर यन्त्रणा सहने की आवश्यकता नहीं है । हे मधुर भाषिणी ! तुम्हारे चरणों को नूपुर शून्य करना अनुचित हुआ है [प्रहिले पायजेब रहने से चरण कमलों का शोभा अधिकतर मनोहर थी; नूपुर होने से यद्यपि वेदना बढ़ने के कारण उनको निकाल दिया है, किन्तु तो भी यह काम उचित नहीं हुआ) तुम्हारे चरण स्वर्ण-मय पीठ पर स्थापित हैं, उठने से कष्ट बोध होगा—अतएव उठने की आवश्यकता नहीं है । इससे मेरे चित्त को भी कष्ट मालूम होगा ।

धारिणी—आर्यपुत्र की जय हो !

परि—महाराज विजयी हों ।।

राजा—[परिव्राजिका को प्रणाम पूर्वक बैठकर] देवि ! अब क्या चरण की वेदना सही जाती है ?

धारिणी—आर्य ! बहुत कुछ घट गई है ।

अँगूठे में जनेऊ पकड़े हुए विदूषक आया ।

विदू-महाराज ! रक्षा कीजिये ! रक्षा कीजिये ! मुझको सर्प ने डसा है ।

(सब का विषाद भाव)

राजा—कैसा कष्ट है ? कैसा कष्ट है ? तुम फिर कहाँ रहे थे ?

विदू—देवी का दर्शन करूँगा, इसलिये उपहार पुष्प संग्रह करने के लिये प्रमद वन में गया था ।

धारिणी-हाधिक् ! हाधिक् मैं ही ब्राह्मण के प्राण नाश का कारण हुई ।

विदू—वहाँ अशोक वृक्ष के फूलों का गुच्छा लेने के लिये ज्यों हीं हाथ पसारा कि त्यों ही काल सर्प ने डस लिया । यह देखिये, दो दाँतों का निशान भी है ? (काटे हुए स्थान को दिखाया)

परि—सुना है, सर्प के डसने पर प्रथम दंशन स्थान को काट देना चाहिये । अतएव वही उपाय किया जाय । वैद्यक शास्त्र में लिखा है-दंष्ट स्थान को छेदन-(काटना) दाहन (जलाना) अथवा क्षत स्थान का रक्त टपकाना, यह सब ही दंष्ट व्यक्ति की परमायु रक्षा के उपाय हैं ।

राजा—इस समय विष के वैद्य की आवश्यकता है । जयसेन ! तुम शीघ्र ही ध्रुवसिद्धि वैद्य को ले आओ ।

प्रति—जो आज्ञा महाराज ! (गया)

विदू—अहो ! मैं पाप मृत्यु कर्त्तृक (अकाल में ही) ग्रसा गया ।

राजा—डरना मत ! कभी २ साँप के काटे हुए व्यक्ति भी विष शून्य होजाते हैं ।

विदू—भला डरूँ कैसे नहीं, मेरे सारे अंग झनझन करते हैं (विष के वेग का अभिनय)

धारिणी—हाय ! यह तो विष विकार जनित अशुभ लक्षण दिखाई देते हैं ? ब्राह्मण को पकड़लो जो पृथ्वी पर न गिरे ।

(घबराकर विदूषक को पकड़ना)

विदू—(राजा को देखकर) आप बचपन से मेरे प्रिय मित्र हैं, यही विचार कर मेरी पुत्र हीन माता का भरण पोषण और रक्षा करना ।

राजा—गौतम ! डरोमत, सावधान होजाओ, वैद्य आते ही तुमको आरोग्य कर देगा ।

जयसेन आया ।

जय—प्रभो ! आपकी आज्ञा सुनाने पर ध्रुवसिद्धि ने कहा–' गौतम को यहीं ले आओ '

राजा—तो कोई गौतम को पकड़कर उस माननीय ध्रुवसिद्धि के पास पहुँचाओ ।

जय—जो आज्ञा !

विदू—(धारिणी की ओर देखकर) देवि ! मैं बचूंगा या नहीं, यह सन्देह है । माननीय राजा की सेवा में नियुक्त रहकर यदि आपके निकट कोई अपराध होगया हो, अब वह सब क्षमा कीजिये ।

धारिणी—आप दीर्घायु हों ।

विदूषक और प्रतिहारी का जाना ।

राजा—शोचनीय गौतम स्वभाव से ही डरपेक है । ध्रुवसिद्धि जो विष की चिकित्सा में सिद्धि लाभ करके सार्थक नामा हुआ है, गौतम इसका भी विश्वास नहीं करता ।

(जयसेन आया)

जय—महाराज की जय हो ! ध्रुवसिद्धि ने कहा है ' उदकुम्भ विधान का (एक प्रकार की विष चिकित्सा का) अनुष्ठान किया जायगा ।

उसमें सर्पविष नाशक मुद्राङ्कित अँगूठी की आवश्यकता है। अतएव वैसी अँगूठी को खोजना चाहिये '।

धारिणी—मेरी यह अँगूठी सर्पमुद्रा युक्त है, यही लेजाओ, अन्त में मुझको लौटा देना।

(अँगूठी का दे देना)

अँगूठी लेकर प्रतिहारी का चला जाना।

राजा—जयसेन! कार्य की सिद्धि होने पर (गौतम के आरोग्य होने और मालविका तथा वकुलबालिका के बन्धन से छुटकारा पाने पर) शीघ्र आकर खबर दो।

जय-महाराज की जैसी आज्ञा। [गया]

परि-मेरा मन कहता है कि गौतम का विष उतर गया।

राजा-तथास्तु [यही हो]

(जयसेन आया)

जय-महाराज की जय हो! बहुत थोड़े समय में ही गौतम का विष उतर गया। अब वह सावधान भी होगया है।

धारिणी—सौभाग्य की बात है-जो मैं कलंक से छूटी?

प्रति—मन्त्री वाहतक ने संदेशा भेजा है,बहुत से राजकीय कार्यों का विचार करना है अतएव महाराज दर्शन देकर अनुग्रहीत करें।

धारि—आर्यपुत्र को कार्य की सिद्धि के लिये जाना चाहिये।

राजा—देवी! गृह के इस अंश में धूप से आक्रान्त हुई हो, विशेषतः इस रोग में शीतक्रिया श्रेष्ठ है, अतएव इस स्थान से शय्याअन्यत्र (दूसरे स्थान में) ले जाओ।

धारि—बालिकाओं! तुम आर्यपुत्र की आज्ञा का पालन करो।

परिजन—जो आज्ञा। (वैसा ही करना)

(देवी-परिव्राजिका और परिजनों का जाना)

राजा—जयसेन! मुझको अब प्रमद वन का गुप्त मार्ग दिखा दो।

जय—इधर आइये प्रभु! इधर आइये!

राजा—जयसेन! गौतम तो अपने कार्य में सफल हुआ है (मालविका और वकुलबालिका का उद्धार तो कर चुका है?)

जय—जी हाँ!

राजा—अभीष्ट प्राप्ति के लिये प्रयुक्त उपायावलंबन साध्य होने पर भी उसके द्वारा कार्य की सिद्धि होगी व नहीं-इस संदेह से मनुष्य का हृदय व्याकुल होता है (मालविका की प्राप्ति के लिये विदूषक ने जो

उपाय स्थिर किया है--वह ठीक मालूम होने पर भी मेरे हृदय में ऐसा संदेह होता है कि वह सफल होगा वा विफल ? यह सोच कर मेरा हृदय अत्यन्त व्याकुल होता है)

[विदूषक का आना]

विदू—आप को जय हो ! आपका आदिष्ट शुभ कार्य सिद्ध हुआ। [मालविका और वकुलवालिका का उद्धार होगया]

राजा—जयसेन ! अब तुम अपना काम करो (अन्तःपुर के द्वार की रक्षा में नियुक्त होओ)

जय—प्रभु की जैसी आज्ञा।

राजा—गौतम ! मालविका के बन्धन गृह की रखवाली करने वाली माधविका अत्यन्त क्षुद्र बुद्धि है,क्योंकि तुमने जो अलक्षित भाव से मालविका आदि का उद्धार किया, वह इसको कुछ भी नहीं समझ सकी और न उसने कोई विचार ही किया।

विदू—देवी की मुद्रांकित अँगूठी को देखकर फिर विचार भी क्या करती ?

राजा—मैं मुद्रा के विषय में कोई बात नहीं कहता हूं, किस लिये मालविका और वकुलवालिका का बन्धन छूटा; अथवा देवीने ही क्यों परिजनों में से किसी को नियुक्त न करके तुमको उनका बन्धन छुड़ाने की आज्ञा दी-यह पूछना तो माधविका को उचित ही था।

विदू—यह बात तो उसने पूछी थी। कि मेरे मूर्ख होने पर भी उस समय मेरी तीक्ष्ण बुद्धि उदय होगई थी।

राजा—बताओ-कैसी बुद्धि उदय हुई थी ?

विदू—मैंने माधविका से कहा था कि ज्योतिषी लोगों ने कहा है-तुम्हारा जन्म नक्षत्र पापग्रह से युक्त हुआ है (अतएव देह और धनादि का नाश होने की संभावना है] इसलिये जितने बन्दी हैं—उन सबको बन्धन से छोड़ दो ! (तो उस दोष की शान्ति होजायगी।

राजा—फिर ? फिर ?

विदू—फिर मैंने कहा, कि- इरावती का मनोमालिन्य जिस से न हो इसी लिये धारिणी देवी 'राजा ने' ही उनका बंधन छुड़ाने के लिये मुझ को आज्ञा दी है, यही कहा-इस के पीछे ही मैंने उनके छुड़ाने का कार्य सम्पन्न किया है (एकान्त में राजा ने मालविका से प्रेमालाप किया था, इस बात को इरावती ने देख लिया। इरावती के अभिप्रायानुसार ही धारिणी देवी ने मालविका और वकुलवालिका को बन्दी किया था। अब

यदि इरावती की बिना अनुमति लिये धारिणी देवी उनको बन्धन से मुक्त कर दे, तो इरावती बहुत ही अप्रसन्न हो जाय। अतएव दैव उपद्रव की शांति के लिये राजा ने ही उनका बन्धन छुड़ा दिया। सुतरां इरावती की अप्रसन्नता और धारिणी देवी के भी किसी दोष की संभावना नहीं रही। यदि धारिणी देवी अपनी किसी परिचारिका को भेज कर बन्धन मोचन करातीं, तो उनपर इरावती के असंतोष का कारण उपस्थित होता, इसी कारण मेरे द्वारा बंधन मोचन की आज्ञा देकर भेजा है)।

राजा—[विदूषक को आलिङ्गन करके] मैं तुम्हारा एकांत प्रिय हुआ। क्योंकि सुहृद् के बुद्धि बल से ही जो कार्य की सिद्धि होती है, सो बात नहीं। किन्तु उसके स्नेह गुण से भी दूसरे के पक्ष में असाध्य कार्य भी सिद्ध होता है।

विदू—अब आप शीघ्रता कीजिये। मैं समुद्रगृह में सखी सहित मालविका को रखकर आपके पास आया हूँ।

राजा—मालविका उसी स्थान में रहे। मैं वहीं जाकर उसका आदर-मान करूँगा, तुम आगे आगे चलो।

विदू—आप आइये, आइये। (चल कर) लो समुद्र गृह यही तो है?

राजा—(शंकित भाव से) मित्र! इरावती की सखी चंद्रिका फूल बीनती बीनती हमारे पास को ही आरही हैं। आओ-हम इस दीवार की आड़ में छिप जायँ।

विदू—अहो! चोर और कामीजन हो चाँदनी को परित्याग करते हैं।

(दोनों का पूर्वमतानुसार दीवाल की ओट में छिपना)

राजा—गौतम! तुम्हारी सखी मालविका किस भाव से हमारी परीक्षा करती हैं, आओ-हम गवाक्ष (झरोखेदार खिड़की) के पास स्थित होकर उसको देखें।

विदू—अच्छी बात है।

(मालविका और वकुलवालिका का आना)

वकु—सखि! महाराज को प्रणाम करो।

माल—जो पार्श्व में और पश्चात् में हैं, उनको प्रणाम है।

राजा—जान पड़ता है-मेरी ही चित्रित प्रतिमूर्त्ति देख कर यह बात कहती है (उस ग्रह में महाराज की प्रति मूर्त्ति का चित्र पट था।

माल—(आनंद से दरवाज़े की ओर देख कर) सखी! मुझ को धोखा देती है (महाराज तो यहाँ नहीं हैं)

राजा—एक साथ ही हर्ष विषाद उपस्थित होने से यह माननीया मालविका मेरी परम प्रीति उत्पन्न करती है ! देखो-सूर्योदय के समय पद्म की जो प्रकाश रूप अवस्था होती है और अस्तकाल में जो मुंद ने रूप अवस्था होती है, मालविका के मुख-पद्म पर मैं वही दो प्रकार की अवस्था देख रहा हूं (पहले तो मेरा दर्शन मिलना विचार कर इस का मुख कमल खिल उठा-किंतु फिर तुरन्त ही मुझ को न देखने से मुँह मलीन होगया । अतएव इस में भी मैं इस के मुख की परम शोभा ही देखता हूँ)

वकु—प्रियसखी ! यह चित्र-लिखित महाराज विद्यमान तो हैं।

दोनों—(प्रणाम करके) महाराज की जय हो ! जय हो !

माल—सखि ! जब (पहले) अशोक कुंज में महाराज की सुन्दरता देखी, तब चित्त की चंचलता के कारण देखने से मेरी दर्शन लालसा तृप्त न हुई । अब इस चित्र-लखित मूर्त्ति को देखने से भी मुझको पूर्ण तृप्ति नहीं होती ।

विदू—महाराज ! क्या आपने सुना है,-आप जैसे प्रेम भरे चित्तसे माननीया मालविका को देखते हैं, मालविका भी क्या उसी प्रकार अत्यन्त अनुराग के सहित आपका दर्शन करती है ? अथवा मञ्जूषा जिस प्रकार वृथा रत्नभाण्ड धारण करती है, उसके गुणको नहीं जानती, उसी प्रकार आप भी क्या केवल यौवन का गर्व ही धारण करते हैं ?

राजा—मित्र ! समागम मिलने की आशा में उत्कण्ठित होने पर भी नारी जाति स्वभाव से ही लज्जाशील होती है । विशाल नयना रमणियों की आँखें प्रियतम के सौन्दर्य को भली भाँति देखने की इच्छा करती हैं, किन्तु सम्यक् प्रकार से उसके प्रति दृष्टि पात नहीं कर सकतीं-अपांग द्वारा ही देखती हैं ।

माल वि०—सखि ! वामपार्श्व में मुख टेढ़ा करके स्नेह भरित चित्त से यह कौन देख रहा है ।

वकुल—यह पार्श्ववर्त्तिनी इरावती है ।

माल—सखि ! महाराज अदक्षिण नायक जान पड़ते हैं, क्योंकि यह सब पत्नियों को छोड़कर एक जनके प्रति ही अनुराग रख रहे हैं ।

वकुल—(स्वगत) चित्र लिखित मूर्त्ति को वास्तविक समझ कर सखी इरावती के प्रति ईर्षा दिखाती है । जो हो-इसको लेकर मैं कौतुक करूँ (प्रकट) सखि ! यह पति को सब से अधिक प्यारी है ।

माल—तब फिर क्यों आत्मा को क्लेश दूँ ?

(असूया (ईर्षा) से प्रत्यावर्त्तन)

राजा—मित्र ! देखो-देखो मालविका के भौं निकोड़ने से उसके माथे में बल पड़ रहे हैं, असूया पूर्ण मुख परावृत करने से जान पड़ता है,मानों प्रियतम को अन्य रमणी के संसर्ग जनित अपराध का अपराधी समझ कर कुपित हुई है। यह सब बातें देखने से जाना जाता है कि जो मनोहर अभिनय सीखा है–उसी को मानो दिखा रही है।

विदू—अब आप उसका कोप दूर करने में यत्न कीजिये।

माल—आर्य्य गौतम ! इस चित्रपट से ही इरावती की सान्त्वबाद द्वारा शुश्रूषा करते हैं।

(यह कह कर पुनः स्थानान्तरामुखी होने की इच्छा करती है)

वकुल—(मालविका को रोककर) नहीं-नहीं जाना मत, तुम इस समय क्रोधित होरही हो।

माल—यदि तुम मुझको नितान्त ही कुपित समझ रही हो, तो फिर यह कोप जिससे शान्त हो वह करो। जिससे मुझको महाराज का समागम मिले, वैसा उपाय करो।

राजा—[पास आकर] हे कमलनयनी ! मेरी चित्र लिखित प्रति मूर्त्ति में इरावती के प्रति अनुराग सूचक भाव देखकर क्यों कुपित होती हो ? यह तो चित्र की मूर्त्ति है। मैं यह साक्षात् तुम्हारे सामने खड़ा हूँ, मुझको अपना अनन्य साधारण किंकर समझो।

वकुल—महाराज की जय हो ! जय हो !

माल—(आप ही आप) मैंने चित्र लिखित स्वामी के प्रति क्यों असूया दिखाई ?

(प्रेम पूर्वक बद्धाञ्जलि हो मुसकाती हुई खड़ी हुई)

विदू—आप उदासीन की नाईं क्यों हो रहे हैं ?

राजा—तुम्हारी सखी मालविका के अविश्वास के कारण ही इस भाव में हूं।

विदू—आपके प्रतिमाननीया मालविका के अविश्वासका कारण क्या है?

राजा—सुनो ! तुम्हारी यह सखी मालविका ज्योंही मेरे नयन गोचर हुई कि त्योंही तुरन्त अन्तर्धान हो गई। दोनों भुजाओं में आकर भी मानों फिर दूर चली गई। मित्र ! मैं काम रूपी व्याधि से पिंचा जाता हूं। अब बताओ–जब ऐसा हो रहा है, तो समागम के विषय में तुम्हारी इस सखी पर मेरा मन कैसे विश्वास कर सकता है !

वकुल—सखि ! तुमने अनेक वार अपने स्वामी को धोखा दिया है; अतएव अब इनको विश्वास के योग्य करो (इनका मनोरथ पूरा करो)

माल—सखि ! मैं ऐसी मंदभागिनी हूं कि स्वप्न में भी प्यारे का समागम दुर्लभ है।

वकुल—महाराज इधर आइये-इसकी बात का उत्तर दीजिये।

राजा—उत्तर देने की अब क्या आवश्यकता है ? मैंने मदनाग्नि को साक्षी करके ही तुम्हारी प्रियसखी को अपना देह प्रदान किया है। जो व्यक्ति एकान्त में सेवा करने योग्य परिचारक है, प्रभु कभी उस की प्रणामादि के द्वारा सेवा नहीं करते।

वकु—आप की इस बात से अनुग्रहीत हुई।

विदू—(चल कर संभ्रम से) वकुलवालिके ! एक हरिन अशोक वृक्ष की नई कोंपल खाने के लिये उद्यत हुआ है, आओ-उसको निवारण करें।

वकुल—हाँ चलो।

राजा—मित्र ! इस गुप्त भेद की चौकसी में तुम सतर्क रहो। (एका एक कोई आकर यह सब वृतान्त नहीं जानने पावे)

विदू—इस विषय में सीखा साखा हूँ (उपदेश देने का प्रयोजननहीं है)

वकुल—(चल कर) गौतम ! आर्य ! मैं किसी गुप्त स्थान मेंरहूँगी-- आप द्वाररक्षक रहिये।

विदू—वहुत अच्छी बात है।

(वकुलबालिका का चला जाना)

विदू—मैं इस स्फटिक भाण्ड के अंतराल (ओट) में अवस्थान करता हूं। (वैसा ही करके), अहो ! इस पत्थर का स्पर्श कैसा सुखदायक है (निद्रा)

(डरे हुए की नाईं मालविका का अवस्थान)

राजा—सुंदरि ! संगम का भय छोड़ दो। मैं बहुत काल से तुम्हारा प्रेम लाभ करने को उत्कण्ठित हो रहा हूं, मैं आम्र-वृक्ष के समान हूँ- अतः तुम माधवीलता होकर इस आम्रवृक्ष को आलिंगन करो।

माल—देवी के डर से अपना प्रिय कार्य नहीं कर सकती।

राजा—ऐं ! डर की बात नहीं है।

माल—(तिरस्कार के साथ) आप जो नहीं डरते हैं, (यह मैं खूब जानती हूं। क्यों महाशय !) इरावती से जब आपकी भेंट हुई थी-उस समय वह आपकी सामर्थ कहां गई था ?

राजा—बिम्बोष्ठि ! हमारे वैम्बिक कुल का व्रत (नियम) है कि सब भार्याओं के प्रति समान प्रेम करें। हे आयत लोचने ! मेरे प्राण तुम्हारी आशा प्रतीक्षा में ही अटक रहे हैं-इस लिये इस सदा के अनुरक्त व्यक्ति पर दया करो।

(यह कह कर स्वयं आलिंगन करना)

(अभिनय द्वारा मालविका कर्त्तृक राजा का आलिंगन त्याग)

राजा—(आप ही आप) नवीना रमणियों की काम चेष्टा क्या ही रमणीय है ? क्योंकि यह मालविका आलिंगन निवारण करने के लिये हाथों को कम्पित करती है, काञ्चीदाम खुल जाने पर चंचल अँगुली से रोकती है ! बल पूर्वक आलिंगन करने पर अपने दोनों हाथों से कुचाओं को ढकती है और मनोहर पक्ष (बिन्ने) वाले नेत्रों से शोभायमान मुख चन्द्र का चुम्बन करने को उद्यत होने पर मुख को टेढ़ा करलेती है। अतएव इस प्रकार छल से भी मेरा मनोरथ पूर्ण रूप आनंद प्रदान करती है।

(इरावती और निपुणिका आई)

इरा—सखी निपुणिके ! चन्द्रिका नाम वाली परिचारिका से तुमने जो सुना है, वह सब सत्य है। चन्द्रिका ने देखा है-आर्य गौतम समुद्र गृह के अलिन्द में अकेला सो रहा है।

निपु—ऐसा न होने पर क्या आपसे झूँठ कह सकती थी ?

इरा—तो चलो-वहीं चलें। प्रियमित्र गौतम सर्प विषसे मुक्त और चिकित्सा द्वारा आरोग्य हुआ है वा नहीं--यह पूछें।

निपु—आपकी इस बातमें कुछ और भी कहने को शेष (बाकी) रह गया ?

इरा—हां ! और भी कुछ है। चित्र लिखित आर्यपुत्र को प्रसन्न करना होगा।

निपु—इस समय स्वामीको कैसे प्रसन्न करोगी ?

इरा—मूढे ! चित्रलिखित आर्यपुत्र को जिस प्रकार अपने प्रति अनुरागी देखा है, अब उसी प्रकार दूसरी स्त्री में आसक्त होते हुए देखूँगी। जब मालविका के साथ एकान्त में प्रेमालाप करते देखा था, तब मुझको प्रसन्न करने के लिए आर्यपुत्र मेरे पैरों में गिरे थे, इसमें मेरा अपराध हुआ, उस अपराध को धोने के लिये ही मेरा यह उद्यम है।

निपु—राजमहिषी ! इधर आइये-इधर आइये।

(दोनों का चलना)

(चेटी का प्रवेश)

चेटी—महारानी की जय हो ! जय हो ! रानीजी ! धारिणी देवीने कहा—'यह हमारे विद्वेष दिखाने का उचित अवसर नहीं है । मैंने केवल तुम्हारा सन्मान बढ़ाने के लिये ही सखी वकुलबालिका के सहित मालविका को बेड़ियों में बाँध रक्खा है ! यदि आर्यपुत्र को सन्तुष्ट करने की तुम्हारी इच्छा हो, तो उनको बन्धन से मुक्त करदूँ । तुम्हारी जैसी रुचि हो कहो,

इरा०—नागरिके ! देवी से कहना—उनको किसी कार्य में नियुक्त करने वाली हम कौन हैं ? परिजनों को दण्ड देकर उन्होंने हमारे प्रति अनुग्रह ही दिखाया है । किसके अनुग्रह से हम इतने सन्मान की पात्र बनी हैं ।

चेटी—जो आज्ञा ।

(चेटी का जाना)

निपु—(घूमकर और देखकर) विपणि (बाजारकी गली) के द्वार पर जिस प्रकार वृष शयन करता है, उसी प्रकार समुद्र गृह के द्वार पर गौतम सो रहा है ।

इरा०—क्या कुछ अति अहित घटा ? विपणिकार का कुछ अंश अवशिष्ट रहने पर भी रह सकता है * ।

निपु०—मुख का वर्ण खूब प्रसन्न अथवा प्रफुल्ला हैं, चिकित्सा भी ध्रुव सिद्धि ने की है—सुतरां आर्य गौतम की विष वेग से अकाल मृत्यु संभव नहीं है ।

विदू—(स्वप्न में प्रलाप) मननीय मालविके !

निपुणि०—राजमहिषी ! सुनिये । अपने कार्य को सम्पन्न करने के विषय में कौन व्यक्ति इस अभागे का बिश्वास करेगा ? यह गौतम इरावती के निकट से आशीर्वाद और खाद्यादि पाकर उदर पूर्ण करता हुआ स्वप्न में मालविका का नाम उच्चारण करता है ।

विदू—(गुण—सुख और सौभाग्य में) इरावती से भी बाजी मार कर लेगई है ।

---

* भाव प्रकाश में लिखा है कि-निद्रा—तन्द्रा क्लम, दाह संणाक-रोमांच—शोथ और अतिसार सब जंगम विष के लक्षण हैं । यथा—

"निद्रा तन्द्रा क्लमं दाहं संणाकं रोम हर्षणम् ।
शोथञ्च चातिसारञ्च कुरुते [illegible] विषम्" ॥

निपु०—इसी आदमी ने इतना अधिक अनभल किया है। मैं खंभ की ओट में खड़ी होकर इस सर्पभीरु निद्रित ब्राह्मण को सर्प की समान कुटिल लाठी से भय दिखाऊं।

इरा०—इस कृतघ्न को सांप का डसना उचित ही था।

(निपुणिका का विदूषक की ओर लाठी फेंकना)

विदू—(सहसा जागकर) क्या आश्चर्य है ? क्या आश्चर्य है ? मित्र ! मेरे ऊपर एक सांप गिरा है।

राजा—(हठात् उपस्थित होकर) सखे, डरोमत ! डरोमत !

माल—(राजा का अनुसरण करके) गौतम सर्प शब्द उच्चारण करता है; अतएव आर्यपुत्र सहसा (असावधानी से) बाहर न जायँ ?

इरा०—हा धिक् ! हा धिक् ! आर्यपुत्र इस सूने स्थान से ही बाहर निकल कर दौड़ते हैं।

विदू—(हँसकर) अरे ! यह क्या लाठी है। ? मैंने समझा था। मैंने जिस प्रकार केतकी के कांटे से घाव करके (सांप का काटना प्रसिद्ध करके) सर्पकी निन्दा की थी, जान पड़ता है—उसका फल फला ?

(परदा गिरने पर वकुलवालिका का प्रवेश)

वकु०—महाराज ! इस स्थानमें प्रवेश न करें। यहां कुटिल गति सर्प की समान जाने क्या दिखाई देता है ?

इरा०—(सहसा राजा के निकट उपस्थित होकर) आपका (मालविका और आपका) दिनमें किया हुआ संकेत-मनोरथ निर्विघ्न सिद्ध तो होगया ?

(इरावती को देखकर सब का डर जाना)

राजा—प्यारी ! ऐसी हँसी तो आश्चर्य की बात है।

इरा०—वकुलवालिके ! महाराज के अभिसार सम्बन्ध में तेरी जो प्रतिज्ञा थी-वह पूर्ण तो होगई ?

वकुल—राजमहिषी ! प्रसन्न हूजिये। मैंने क्या किया है, यह राजा से पूछ देखिये। मैंडकी के उच्चस्वर से शब्द करने पर ही क्या देवराज इन्द्र पृथ्वी में जल की वर्षा करने की इच्छा करते हैं ? (दादुरों का शब्द सुनते ही क्या इन्द्र जल की वर्षा कर देते हैं,) नहीं कदापि नहीं ! अपनी इच्छा से ही वे जल बरसाते हैं। उसी प्रकार मेरे कहने से ही जो महाराज मालविका से प्रेम बंधन करेंगे, यह बात कभी संभव नहीं हो सकती (उन्होंने अपनी इच्छा से ही यह काम किया है)।

विदू–यह बात न कहना। तुम्हारे दर्शनमात्र से ही माननीय महाराज आपका प्रणाम न करना भूल गये हैं (आपका अपराध ग्रहण नहीं किया) किन्तु तो भी आप प्रसन्न नहीं होतीं।

इरा—क्रोधित होकर ही किसी का क्या करेंगी ?

राजा–देवि ! तुम्हारा क्रोध करना उचित नहीं है, हे श्रेष्ठ अंगवाली ! बिना कारण तुम्हारा मुख कभी विवर्ण नहीं होता। (अब भी तो कोई वैसा कारण उपस्थित नहीं हुआ है, मैंने कोई अपराध नहीं किया है, अतएव तुम्हारा क्रोध करना न्याय संगत नहीं है) पूर्णिमा इत्यादि पर्व-दिन के अतिरिक्त रजनी कभी भी राहु-ग्रह कर्तृक आक्रांत चन्द्र-मण्डल में उपलक्षित नहीं होती। अतएव अस्थान में तुम्हारा कोप करना अनुचित है।

इरा—आर्यपुत्र ! 'अस्थान' की बात तो अच्छी कही है, मैं पति की परम प्रेमास्पद हूंगी, यही मेरा सौभाग्य है। यदि वह सौभाग्य दूसरी नारी को प्राप्त हो,–तो हमारा क्रोध दिखाना 'अस्थान' में (अनुचित ही) होगा–क्योंकि–ऐसा होने पर हम को हँसी का पात्र ही बनना पड़ेगा।

राजा—तुम्हारी ऐसी कल्पना वृथा है, सत्य सत्य ही मैं तुम्हारे रोष का कुछ भी कारण नहीं देखता हूं। क्योंकि–उत्सव के दिन में किसी परिजन को ही दण्ड नहीं देना चाहिये। इसी लिये मैंने मालविका और वकुलवालिका को बंधन से मुक्त कर दिया। वह मुझ को प्रणाम करने के लिये आई थी।

इरा—निपुणिके ! तुम धारिणी देवी से जाकर कहो तुम्हारा एक पक्षपात खूब देखा गया है। मेरे हृदय में तो यह निश्चित धारणा है कि तुम्हारे अँगूठी न देने पर राजा कभी मालविका और वकुलवालिका को बन्धन से नहीं छुड़ा सकते थे ? अतएव तुमने मालविका को पक्षपात करके छलसे राजा के साथ उसका मिलन करा दिया है।

निपु—जैसी आज्ञा ! [निपुणिका चली गई]

विदू—(आप ही आप) अहो ! क्या ही अनर्थ उपस्थित है, बंधन-च्युत गृह पालित कपोत विलाई की दृष्टि में पड़ गया, (उड़ने में असमर्थ बंधन-च्युत क्षुद्र कपोत जिस प्रकार विलाई की दृष्टि में पड़कर दुःखी होता है, यह मालविका भी ठीक उसी प्रकार अपना मंगल साधन करने में असमर्थ होकर इरावती की रोष दृष्टि में पड़ी है। अतएव महासङ्कटापन्न होगी, इस में संदेह नहीं है)

निपुणिका का आना।

निपु—(खिसियानी सी होकर) महिषी ! इच्छानुसार [जाते-जाते] सार भाण्डगृह की परिचारिका (दासी), माधविका से मेरी भेंट हुई थी, माधविका ने इस प्रकार कहा—(कान में कहना) ।

इरा—(आप ही आप) हाँ, यह संभव है। इस नीच ब्राह्मण गौतम ने ही यह उपाय निकाला है [विदूषक को देखकर प्रकट] राजा की काम विषय में सहायक इस गौतम की ही यह नीति है। गौतम ने ही ऐसी कुटिल नीति प्रकट करके मालविका और वकुलवालिका को वन्धन से छुड़ाया है।

गौतम—देवि ! यदि मैं नीतिशास्त्र का एक अक्षर भी पढ़ लेता, तो इस प्रकार से राजा का सहारा न लेता। [मुझे तो इस विषय में काला अक्षर भैंस बराबर हैं]

राजा—(अपवारित होकर) अतः इस संकट से कैसे छूटूं ?

वेग से जयसेन का आना।

जय—देव ! कुमारी वसुलक्ष्मी गेंद से खेल रही थी, इसी बीच में पीले रंग वाले एक वानर ने आकर उसको वहुत ही डरा दिया है, वह धारिणी देवी की गोद में बैठी है। प्रवल वायु से जिस प्रकार पल्लव कंपायमान होते हैं, वह भी वैसे ही काँप रही है।

राजा—क्या कष्ट है ? वाल्यभाव स्वभाव से ही दुर्वल है।

इरा—(आवेग से) कुमारी को धीर वँधाने के लिये आर्यपुत्र शीघ्रता करें। जिससे कुमारी का भय जनित मोह बढ़ने न पावे।

राजा—मैं ही कुमारी को सावधान करता हूँ।

विदू—रे पीले वानर ! तू साधु है। तैने आज राजा आदि आत्मीय जनों की रक्षा करी।

(राजा, विदूषक, इरावती, निपुणिका और प्रतिहारी का जाना)

माल—सखि ! धारिणी देवी की याद आने से मेरा हृदय काँपता है [इरावती के कहने से वे मुझको कड़ा दण्ड दे सकती हैं] नहीं जानती, अभी हमारे भाग्य में और क्या होगा ?

(नैपथ्य में)—क्या आश्चर्य है ! क्या आश्चर्य हैं ! पाँच रात्रि बीतते न बीतते ही तपनीयाशोक का मुकुलोद्गम हुआ है। देवी को जाकर यह सम्वाद दूं।

(यह बात सुनकर मालविका और वकुलवालिका का प्रफुल्ल भाव)

वकुल—सखि ! धैर्य रक्खो, धारिणी देवी सत्य प्रतिज्ञ हैं, (वे अवश्य तुम्हारा मनोरथ पूरा करेंगी किसी प्रकार के दण्ड की आशंका नहीं है)

माल—तो मैं भी प्रमद वन पालिका मधुकरिका के पीछे २ जाऊँ ?

वकुल—बहुत अच्छी बात है।

[दोनों गईं]

चौथा अंक समाप्त।

पांचवां अंक।

उद्यान पालिका मधुकरिका आई।

मधु—मैंने तपनीय अशोक की सत्कार विधि सम्पन्न की है, (वृक्षकी जड़ में जल सींचने आदि जो जो कार्य करने उचित हैं, वह सम्पादित हुए हैं) भित्ति वेदिका भी बाँधी गई हैं (जल की रक्षा के लिये तरु मूल में जो आल वाल रूप वेदी बनाई जाती है, वह भी भली भाँति बनाई गई है) देवी की सभी आज्ञा प्रतिपालित हुई हैं। अब उनके निकट जाकर निवेदन करूँ। अहो ! दैव ने मालविका पर दया करी। इस अशोक का पुष्पोद्गम रूप आनन्द समाचार पाकर कुपिता धारिणी देवी मालविका से प्रसन्न हो जायंगी। इस समय देवी हैं किस स्थान में ? यह जो देवी का परिजनाभ्यन्तरवर्त्ती सारसक नायक परिचारक लाक्षा द्वारा मुद्रांकित पेटिका लेकर कुब्ज भाव से चतुःशाला से निकलकर जा रहा है, इसी से पूछूँ कि 'देवी कहां हैं' ?

(यथा निर्दिष्ट हस्तकुब्ज सारसिक का प्रवेश)

मधु—सारसिक ! तुम कहां जाते हो ?

सार—विद्वान् ब्राह्मणों को नित्य जो दक्षिणा दी जाती है, उन्हीं का मासिक समस्त धन लेकर पुरोहित को देने जा रहा हूं।

मधु—क्यों ?

सार—अग्निमित्र के पुत्र वसुदेव जबतक अश्वमेध यज्ञके घोड़ों की रखवाली में लगे रहेंगे, तब तक उनकी परमायु को बढ़ाने के लिये देवी

नित्य एक सौ निष्क * परिमित सुवर्ण की दक्षिणा योग्य ब्राह्मणों क्र प्रदान करती हैं।

मधु—इस समय देवी कहाँ है ? और किस काम में लग रहीं हैं ?

सार—वे इस समय मंगल गृह में बैठी हैं। विदर्भ राज्य से उनके भाई वीरसेन ने एक लिपि भेजी है, उसको पत्रादि के लेखक से पढ़वाकर सुन रही हैं।

मधु—विदर्भराज का क्या समाचार है ?

सार—वीरसेन प्रमुख सेनापति गण कर्त्तृक स्वामी अग्निमित्र के योधाओं द्वारा विदर्भराज वशीभूत होगये हैं। विदर्भनाथ के संग माधव-सेन युक्त हुए हैं। वीरसेन ने वहुमूल्य रत्न वाहन शिल्पी और अनेक कुमारी इत्यादि उपहार के सहित एक दूत को भेजा है, वही दूत स्वामी से साक्षात् करेगा।

मधु—अच्छा-तुम अपने काम को जाओ। मैं भी देवी का दर्शन करने को जाता हूं। [दोनों गये]

(इति प्रवेशक)

(प्रतिहारी का आना)

प्रति—देवी ने मुझको आज्ञा दी है कि 'अशोक वृक्ष की जड़ में जल सिंचनादि कार्य में व्याप्त रहने से आर्यपुत्र के संग भेंट नहीं कर सकी। उनसे जाकर कहो-'अब मैं आर्यपुत्र के साथ एकत्र होकर अशोक वृक्ष के फूलों की शोभा देखना चाहती हूं।' अतएव अब मैं धर्मासन पर विराज-मान महाराज के निकट जाता हूं।

(नेपथ्य में वैतालिक गण)

---

* निष्क—चार सुवर्ण मुद्रा का नाम निष्क है।

यथा—

पञ्चकृष्णलकोमाषस्ते सुवर्णस्तु षोडशः।
चतुःसौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः॥

अर्थात्—पाँच कृष्णल का एक माषा होता है। सोलह माषा (मासे) में एक सुवर्ण (सुवर्ण मुद्रा) होता है। और चार सुवर्ण का एक निष्क होता है।

सुवर्ण दान के विषय में अग्निपुराण में लिखा है—

सर्वान्कामान् प्रयान्त्येते पैतामह सुतोऽब्रवीत्।
मरीचि भगवान् पूर्वं ये प्रयच्छन्ति काञ्चनम्॥

अर्थात्—सुवर्ण दान करने पर सब प्रकार की कामना पूरी होती है।

पहला वैता—सौभाग्य से हमारे महाराज दण्ड द्वारा वैरियों के मस्तक पर विराजमान रहते हैं (वैरी महाराज के वशमें आचुके हैं) रति सहचर सुन्दर देह वाला मन्मथ जैसे कोकिला कूजित विदिशातीरस्थ उद्यान में वसन्त का आविर्भाव प्रकाशितकरता है, आप भी उसी प्रकार महोत्साह शील और हाथी घोड़े आदि सेना के समस्त अंगों से युक्त होकर वन्दिजनों के किये स्तुतिवाद से मुखरित विदिशातीरस्थ उद्यान में शोभा फैलाते हैं। हे वरद ! आप महा बलवान् हैं, आप का शत्रु हाथियों के स्तंभ रूप वरदानदी तटस्थ वृक्षराजि के सहित झुक गया है। अर्थात् वरदानदी के तट पर जो वृक्ष हैं, उनमें आपके विजयी हाथियों को बाँधने से वह वृक्ष जिस प्रकार झुक गये हैं, आपके सब वैरी भी उसी प्रकार आपके निकट अंजलि बद्ध किये हुए झुक गये हैं।

दूसरा वैता—हे देवोपम ! आपने दमन करने के लिये सेना-समूह द्वारा बलपूर्वक विदर्भाधिपति यज्ञसेन की राजश्री को हरण किया है। श्रीकृष्ण के परिघाकार चार भुजा द्वारा रुक्मिणी हरण करने पर उनकी कीर्त्ति जिस प्रकार वीरता प्रिय पण्डित गान करते हैं, आपकी कीर्ति भी विदर्भ नगरी में उसी प्रकार फैल रही है।

प्रति—इस जय शब्द द्वारा जान पड़ता है कि महाराज सभागृह से निकल आये। अतएव मैं सन्मुख भाग से सन्मुखस्थ-बहिर्द्वार प्रकोष्ठ के तोरणान्तराल में अवस्थान करूँ। [एकान्त में अवस्थान]

सखा के साथ राजा का आना।

राजा—धूप में स्थित कमल के ऊपर यदि जल-धारा की वर्षा हो, तो उसकी जो अवस्था होती है, मेरा हृदय भी उसी प्रकार प्रियतमा मालविका का मिलना दुर्लभ और सेना द्वारा विदर्भराज की पराजय और मेरी अधीनता में आना, इन दोनों बातों को विचार कर दुःख और सुख दोनों ही अनुभव करता है। [इरावती आदि रमणियों के विघ्नाचरण करने से मुझको मालविका का समागम नहीं होता, बस यही मेरे दुःख का कारण है और विदर्भराज पराजित होकर मेरे वशीभूत हुए हैं यह सुख का कारण है]

विदू—मेरा अनुमान है कि महाराज इस बार अत्यन्त सुखी होंगे।

राजा—सो कैसे ?

विदू—आज धारिणी देवी ने पण्डिता कौशिकी से कहा है—'भगवति ! दूसरे के वेश भूषा (शृङ्गारादि) करने में चतुर हैं, तो मालविका के अंगों में विवाह के योग्य शृङ्गार कर दीजियें'। यह आज्ञा

मिलते ही माननीया कौशिकी ने अत्यन्त कौतूहल के साथ मालविका को गहनों से सजा दिया है। जान पड़ता है-धारिणी देवी आपका मनोरथ पूरा कर देंगी।

राजा—मित्र ! मेरे सुख व सन्तोष के लिये धारिणी देवी पहिले से लेकर अबतक जैसा जैसा बर्त्ताव करती आती हैं, उसको देखते हुए तो यही जाना जाता है कि मेरे निमित्त ही मालविका को इस प्रकार गहनों से सजाया गया है।

प्रति—(पास आकर) महाराज की जय हो ! जय हो ! देवी ने कहा है-' मैं आर्यपुत्र के साथ एकत्र मिलकर तपनीयाशोक के पुष्पोद्गम की शोभा देखना चाहती हूं ।'

राजा—देवी क्या उसी स्थान में हैं ?

प्रति—जी हाँ ! देवी यथायोग्य आसनादि समन्वित अन्तःपुर छोड़ कर मालविका को आगे किये निज परिजनों समेत महाराज की बाट देख रही हैं।

राजा—[आनन्द से विदूषक की ओर देखकर] जयसेन ! तुम आगे आगे चलो।

प्रति—महाराज ! आइये-आइये ! [चलते हैं]

विदू—[चारों ओर देखकर] मित्र ! वसन्त मानों फिर नवयौवन धारण करके प्रमद वन में शोभा पाता है।

राजा—सखे ! तुमने जो कहा, वह ठीक है । सन्मुख भाग में लाल झिण्टी (पियावांसा) के फल और आम की मंजरी शोभा पाती है, अतएव वार्द्धक्योन्मुख वसंत ऋतु का यौवन देखकर मेरी समान मनुष्य का चित्त उत्कण्ठित होता है।

विदू—देखिये महाराज ! यह वही तपनीयाशोक वृक्ष पुष्पस्तवक रूप वेश से सजकर शोभा पाता है।

राजा—यह तपनीयाशोक जो अबतक पुष्पोत्पादन में असमर्थ था, सो ठीक ही है। क्योंकि इस समय अनन्य साधारणी शोभा धारण कर रहा है। देखो वसन्त ऋतु में सब प्रकार के ही फूल खिलते हैं, किन्तु रमणी के चरण ताड़न रूप दोहद को प्राप्त होकर इस तपनीयाशोक ने सब से पहिले पुष्प उत्पन्न किये हैं।

विदू—आपकी बात ठीक है, अब आप मालविका से संभोग करने के विषय में विश्वास कीजिये। मालविका धारिणी देवी के पार्श्व में ही मालूम होती है।

राजा—(आनन्द से) मित्र ! देखो-देखो-धारिणी देवीने मुझको प्रणाम करने के लिये अपने कमल से दोनों हाथ पसारे हैं। प्यारी मालविका विनय नम्रभाव से उनके पीछे पीछे उठती है। अतएव राजलक्ष्मी के अनुगामी होने से पृथ्वी की जैसी शोभा होती है, धारिणी देवी भी उसी प्रकार शोभा धारण करके मुझको सन्मान दिखानेके लिये खड़ी हुई हैं।

(धारिणी-मालविका-परिव्राजिका और परिजन गण का प्रवेश)

माल—(आप ही आप) धारिणी देवी ने कौतूहलवश मुझको सजाया है, उसका कारण मैं जानती हूं (तपनीयाशोक को दोहद प्रदान करने से पाँच रात्रियों में ही पुष्पोद्गम हुआ है, इसीलिये देवीने प्रसन्न होकर ऐसा किया है। यह मैं जानती हूं) तो भी कमलनी दल-गत जल की समान मेरा हृदय काँपता है (कदाचित् भाग्य दोष से देवी फिर कोई विघ्न करें-यह सोच कर कंपित होती हूं) और फिर इधर मेरी बाँई आँख भी फड़कती है।

विदू—मित्र ! माननीया मालविका ने विवाह वेश से सज कर अत्यन्त ही शोभा धारण की है।

राजा—मैं भी उस को देखता हूं। इस मालविका ने नाभि तक रेशमी वस्त्र धारण किया है। अंगों में भांति भाँति के गहने भी पहरे हैं-अतएव बोध होता है--यह निहार शून्य-नक्षत्रों द्वारा शोभित उदय होने वाली चाँदनी से मण्डित--शुक्ल पक्षीय चैत के महीने की रजनी की नाईं विराजित है।

देवि—(पास जाकर) आर्यपुत्र की जय हो ! जय हो !

विदू—देवि ! वृद्धि को प्राप्त होओ।

परि—महाराज विजयी हों।

राजा--भगवति ! प्रणाम करता हूँ।

परि—इच्छा की सिद्धि होवे।

देवी—(मधुर हास्य से) आर्यपुत्र ! हमने इस अशोक वृक्षको युवतीजन सहचर आपके संकेत गृह रूप में कल्पित किया है। (आप इस अशोक तरु के मूल में यथेच्छा विहार कीजिये)

विदू—महाराज ! देवीने आपको सन्मानित किया।

राजा—(लज्जित भावसे अशोक के चारों ओर घूमकर) देवि ! तुमने इस अशोक वृक्षको भलीभांति सम्बर्द्धित किया है। वसन्त लक्ष्मी

के इस अशोक को पुष्प खिलाने की आज्ञा देने पर इस वृक्ष ने उस आज्ञा का निरादर दिखाया था, पीछे तुम्हारे यत्न से मालविका के पदाघात द्वारा उसी वृक्ष में फूल खिले हैं, अतएव तुम्हारे प्रति यह वृक्ष सन्मान दिखाता है। तुमको इस वृक्षका आदर ही करना चाहिये।

विदू—मित्र! अब आप विश्वस्त (निर्भय) होकर इस यौवनवती मालविका का दर्शन कीजिये।

देवी—किसका?

विदू—तपनीयाशोक की पुष्प शोभा को।

(सब का बैठना)

राजा—(मालविका को देखकर आप ही आप) निकट होने पर भी विरह सहना कितना कष्ट दायक है? मैं चकवा और प्यारी मालविका चकई स्वरूप है, तथा धारिणी देवी हमारे पक्ष में रात्रि स्वरूप हैं, यह जब तक आज्ञा नहीं देंगी—तब तक हमारे मिलन की कोई आशा नहीं है।

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचु—महाराज विजयी हों। देव! मन्त्री ने निवेदन किया है कि "विदर्भराज ने उपहार स्वरूप दो शिल्प बालिकाओं को आपके निकट भेजा है, वे दोनों कन्या मार्गके श्रम से अत्यन्त अनमनी होनेपर आप के निकट नहीं लाईं गईं थीं। अब वह स्वस्थ होकर महाराज के निकट आने योग्य होगई हैं, महाराज की आज्ञा मिलने पर उनको लेआऊंगा।

राजा—उनको लेआओ।

कंचु—महाराज की जो आज्ञा! (यह कह कर प्रस्थान और उन के साथ फिर आकर) इधर आओ! इधर आओ।

पहली—(धीरे से) सखि! मदनिके! यह राजगृह कैसा चमत्कारिक है! यहाँ आकर तो मेरा हृदय खिल गया।

दूसरी—ज्योतिस्निके! मेरा हृदय भी उसी प्रकार खिला जाता है। कहावत है—हृदय की अवस्था ही आगे होने वाले सुख दुःख की सूचना करती है (हृदय के प्रफुल्लित होने पर आगे को सुख और अप्रसन्न होने पर दुःख मिला करता है)।

पहली—अब यह सत्य हो।

कंचु—यह जो महाराज देवी के पास बैठे हैं; इनके निकट जाओ।

(दोनों का निकट गमन, मालविका और परिव्राजिका दोनों का चेटी को देख कर परस्पर दृष्टिपात)

दोनों –(प्रणाम करके) प्रभु की जय हो ! जय हो ! राजमहिषी की जय हो ! जय हो !

राजा—तुम दोनों बैठ जाओ।

(दोनों महाराज की आज्ञा से बैठ गईं)

राजा—तुम किस कला या विद्या में चतुर हो ?

दोनों—महाराज ! हम दोनों ने संगीत विद्या सीखी है।

राजा –देवि ! इन दोनों में एकको ग्रहण करो।

देवी—मालविके ! इस ओर को देख—इनमें तू किसी को संगीत सह चारिणी करना चाहती है।

दोनों—(मालविका की ओर देखकर) अहो ! भर्त्तृदारिका ! (यह कहकर प्रणाम पूर्वक) भर्त्तृदारिका की जय हो ! जय हो (दोनों को अश्रु विसर्जन)

(सब का आश्चर्य से देखना)

राजा—तुम दोनों कौन हो ? अथवा यह मालविका ही कौन है ?

पहेली—महाराज ! यह हमारी भर्त्तृदारिका है।

राजा—कैसे ?

दोनों—प्रभो ! सुनिये ! आपने विजय-दण्ड द्वारा जो विदर्भराज को वशीभूत करके कुमार माधवसेन को बन्धन से छुड़ाया था, यह वही मालविका नाम वाली उनकी छोटी बहन है।

धारिणी—क्या यह राजकुमारी हैं ? हाय ! मैंने पादुका के धोखे में चन्दन को दूषित किया।

राजा—यह माननीया मालविका किस कारण असहाय होकर हमारे घर में उपस्थित हुई है ?

मालवि—(श्वाँस छोड़ कर आपही आप) विधि का विधान ही इसका कारण है।

दूसरी—महाराज ! सुनिये ! कुमार माधवसेन ज्ञाति यज्ञसेन के वशीभूत होने पर सुमति नाम वाला आर्यमन्त्री हमारी समान अन्यान्य परिजनों को छोड़कर इस मालविका को गुप्त रीति से यहाँ लाया है।

राजा—यह मुझको पहले ही मालूम हो चुका है। अच्छा, फिर ? फिर ?

दूसरी—महाराज ! इसके पीछे का हाल मैं कुछ नहीं जानती।

परि—इसके पीछे जो कुछ हुआ-यह मन्दभागिनि मैं ही उसको कहती हूं।

दोनों—यह तो आर्या कौशिकी के सा कण्ठ-स्वर जान पड़ता है ?

माल—हाँ, वेही हैं।

दोनों—यती वेश धारिणी आर्या कौशिकी का कण्ठ-स्वर सुनने से जाना जाता है कि वे दुःखित हृदय से कह रही हैं + भगवति! आपको नमस्कार है!

परि—आपका कल्याण हो!

राजा—यह क्या भगवती के आत्मीय जन हैं?

परि—हाँ, आत्मीय।

विदू—तो अब भगवती माननीया मालविका का समस्त वृत्तान्त वर्णन करें।

परि—(कातरता से) तो सुनिये। माधवसेन के मन्त्री सुमति को मेरा बड़ा भाई समझना चाहिये।

राजा—सब जान लिया। अच्छा फिर?

परि—इस मालविका का भाई यज्ञसेन के वशीभूत होने पर सुमति आप को देने की इच्छा से इस को लेकर इस विदिशा नगर को जाते हुए बनियों में मिल गया।

राजा—फिर? फिर?

परि—वह वणिक् दल बहुत मार्ग तय करके एक वन में प्रविष्ट हुआ।

राजा—इसके पीछे फिर क्या हुआ?

परि—इसके बाद सहसा एक चोरों का दल प्रकट हुआ। उन में हरेक की दोनों भुजाओं का मध्य भाग तूणीर बाँधने के लिये रेशमीन वस्त्र से बँधा हुआ था। पीठ तक मयूरपुच्छ लटक रही थी; मस्तक में जो मयूरपुच्छ धारण की थी; वही पीठ तक लटक आई थी। हाथ में शरासन (धनुष) विद्यमान था। वे जैसी भयंकर हुंकार करते थे, वह कानों के लिये कठोर और असह्य थी।

(मालविका कर्त्तृकभय का अभिनय)

विदू—आप डरो मत। माननीया कौशिकी बीती हुई घटना वर्णन करती हैं।

राजा—इसके पीछे फिर?

परी—इसके बाद स्वतन्त्र वणिक्दल के योधा मुहूर्त मात्र में तस्करों से पराङ्मुख होगये अर्थात् हार गये।

राजा—अहो! इस के पीछे का हाल सुनना तो बड़ा ही कष्ट कर है।

परि—इस के पीछे प्रभु के प्रियपात्र मेरे सहोदर सुमति ने इस महाविपद् में शत्रु के आक्रमण हेतु भयविह्वला इस मालविका का उद्धार

करने की अभिलाषा करके प्राण त्याग पूर्वक स्वामी का ऋण चुका दिया।

पहली—हाय ! सुमति निहत हुए।

दूसरी—इस के बाद से ही प्रभु-कुमारी की यह दशा हुई है।

(परिव्राजिका ने आँसू डाल लिये)

राजा—भगवति ! नाशमान देहीगणों की इसी प्रकार अकाल मृत्यु हुआ करती है, जगत् की रीति ही यह है। माननीय सुमति ने जो प्रभु के अन्न से देह को पोषण किया था, वह इस प्रकार देह त्याग करने से सार्थक हुआ है। उस के लिये अब शोक करने का प्रयोजन नहीं है, × अच्छा, फिर ? फिर ?

परि—फिर मैं मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। जब चैतन्य हुई—तब मैंने मालविका को नहीं देखा ?

राजा—आपने महान् कष्ट झेला है।

परि—फिर भाई के देह का मैंने अग्नि संस्कार किया। तब पुनः वधव्य-यन्त्रणा मानों मेरे निकट नवीन हो आई। फिर आप के इस राज्य में आकर काशाय वस्त्र धारण कर लिये।

राजा—साधु पुरुषों के लिये यही मार्ग ठीक है।

परि—यह वही मालविका चोरों के निकट से वीरसेन के और वीरसेन के निकट से धारिणी देवी के आश्रय में आई है। फिर मैंने देवी के घर आकर इस को देखा। बस यही मेरी कथा की समाप्ति है।

माल—(स्वगत) देखूं—अब महाराज क्या कहते हैं ?

राजा—अहो ! इस प्रकार से दुःख देने के लिये ही दैव उपस्थित होता है, क्यों कि धोये हुए कौषेय वस्त्र का जिस प्रकार स्नान शाटीत्व असंभव है, अर्थात् उत्कृष्ट कौषेय वस्त्र को जैसे कोई स्नानीय वस्त्र नहीं करता, रानी पद के योग्य यह मालविका भी उसी प्रकार परिचारिका बनाने योग्य नहीं है।

धारिणी—भगवति ! इस श्रेष्ठ कुलोत्पन्न मालविका का परिचय न देकर आपने युक्ति संगत कार्य नहीं किया।

परि—पाप दूर हो (अमंगल दूर हो) मैंने किसी कारण से ही ऐसा निर्दय व्यवहार किया है।

× अग्निपुराण में लिखा है, प्रभु के लिये जो पुरुष दंष्ट्री (दाँत वाले) शृंगी (सींग वाले) म्लेक्ष वा तस्करों के हाथ से देह त्याग करता है, उसको स्वर्ग मिलता है। इसमें संशय नहीं। "दंष्ट्रिभिः शृंगिभि र्वापि हता म्लेक्षैश्च तस्करैः ये स्वामर्थं हता यान्ति राजन् स्वर्गं न संशयः"

धारि—वह कारण क्या है ?

परि—जब इस मालविका के पिता जीवित थे, तब दोलोत्सव के उपलक्ष्य में एक शुभ गणनाकारी (गणितका ज्योतिषी) आया ! उसने इस प्रकार फल कहा कि—"यह मालविका एक वर्ष तक दासी के भाव में रहकर फिर अपने योग्य पति को प्राप्त होगी" । उसी फलादेश के अनुसार इसको आपकी चरण सेवा में रखकर उस सिद्ध पुरुष के आदेश की रक्षा करके सुविचार का ही कार्य किया है ।

राजा—इस भाँति समय की प्रतीक्षा करना अच्छा ही हुआ है ।

कंचुकी—देव ! आपके अन्यान्य बातों में लगे रहने से मुझको अपनी बात कहने का अवसर ही न मिला । मन्त्री ने निवेदन किया है कि विदर्भ-देश संबंधी कर्त्तव्य सम्पादित हो गया है अर्थात् विदर्भराज यज्ञसेन शासित हुए हैं, अब आपका क्या अभिप्राय है, सो सुनना चाहता हूँ ?

राजा—मौद्गल्य ! माननीय यज्ञसेन और माधवसेन का राज्य इस समय दो भागों में बाँट कर स्थापित करना चाहता हूँ । चन्द्र और सूर्य जसे रात और दिन को पृथक् पृथक् भोग करते हैं, यज्ञसेन और माधव-सेन दोनों उसी प्रकार वरदा नदी के उत्तर और दक्षिण तट में पृथक् पृथक् राज्य स्थापित करके शासन करें ।

कंचु—देव ! तो मैं मन्त्रिसभा में जाकर महाराज का अभिप्राय प्रकट करूं ?

(राजा का अँगुली के इशारे से जाने की सम्मति देना)

(कंचुकी गया)

पहली—(हौले से) भर्त्तृदारिके ! सौभाग्य से कुमार माधवसेन आधे राज्य में प्रतिष्ठित हुए हैं ।

माल—जब वे जीवन की आशंका से मुक्त हुए हैं, तब वे इसी को यथेष्ट भाग्य समझते होंगे ।

(कंचुकी फिर आया)

कञ्चु—महाराज की जय हो। देव ! मन्त्री ने निवेदन किया है—महाराज की बुद्धि कल्याणकारी है, मन्त्री परिजनादि की भी यही सम्मति है, क्योंकि रथ में जुते हुए दोनों घोड़े जिस प्रकार परस्पर के प्रति आक्रमण का अभिप्राय त्याग कर दो भागों में विभक्त रथ का भार धारण पूर्वक सारथी के वशीभूत रहते हैं, यज्ञसेन और माधवसेन भी उसी प्रकार परस्पर का वैर छोड़ कर वरदा नदी के दोनों तटस्थ राज सम्पत्ति पर अधिकार करके आपकी आज्ञा पालन कर रहे हैं ।

राजा—तो मन्त्रिसभा से कहो—सेनानी वीरसेन को लिखा जाय कि इस प्रकार काय्य करें ।

कञ्चु—महाराज की जैसी आज्ञा । (गया)

(उत्तरीय रूप उपढोकन सहित पत्र हाथ में लिये हुए कञ्चुकी फिरआया)

कञ्चु—प्रभु की आज्ञा पालन कर दी गई। सेनापति पुष्पमित्र के पास से यह उत्तरीय रूप उपढोकन सहित पत्र आया है। इसको महाराज देखें ।

(राजा कर्त्तृक उठ कर नमस्कारादि सन्मान प्रदर्शन पूर्वक वह उत्तरीय पत्र लेकर परिजन के हाथ में प्रदान)

(परिजनकर्त्तृक पत्र खोजने का अभिनय)

धारि—अहो ! वसुमित्र विषयक चेष्टा में मेरा हृदय तदभि मुख (उत्कंठित) हुआ है। गुरु जनों के कुशल सम्वाद के पीछे वसुमित्र का वृत्तान्त सुनूँगी । सेनापति ने मेरे पुत्र वसुमित्र को भारी काम में नियुक्त किया है।

राजा—(बैठकर सोपहार पत्रिका ग्रहण पूर्वक पाठ) स्वस्ति-सेना पति ने यज्ञ शाला से विदिशास्थ आयुष्मान् पुत्र अग्निमित्र स्नेह से आलिंगन करके कहा है-ज्ञात हो कि मैंने राजयज्ञ में व्रती होकर शत-राज कुमारों से घिरे हुए कुमार वसुमित्र को रक्षक रूप में नियुक्त करके यज्ञीय घोड़े को अपनी इच्छानुसार छोड़ दिया है। वह यज्ञ का घोड़ा अनेक स्थानों में विचरता हुआ जब सिन्धु नद के दक्षिण तटपर पहुंचा उसी समय घुड़ सवार सेना के साथ आकर एक यवन ने उसको पकड़ लिया है। फिर दोनों दलों में तुमुल युद्ध उपस्थित हुआ।

(धारिणी देवी का विषाद प्रकाश)

राजा—क्या ऐसी घटना हुई है ? (पुनः पत्र पाठ) फिर वसुमित्र केवल एक शरासन की सहायता से बलपूर्वक समस्त वैरियों को परास्त करके हमारे उस यज्ञीय घोड़े को ले आया है ।

धारि—यह बात सुनकर मेरे हृदय को धीरज हुआ।

राजा—(पत्र का शेषांश पाठ) सूर्यकुल तिलक राजा सगर ने जिस प्रकार अपने पोते अंशुमान के लाये हुए घोड़े द्वारा अश्वमेध यज्ञको सम्पन्न किया था, मैं भी उसीप्रकार वसुमित्र कर्त्तृक प्रत्यानीत घोड़े के द्वारा यज्ञ सम्पन्न करूँगा। अतएव आप कुछ भी विलम्ब न करके प्रति क्रोध परित्याग पूर्वक यज्ञ को देखने के लिये आइये।

राजा—अनुग्रहीत हुआ ।

परि—सौभाग्य से आप दोनों दम्पति पुत्र द्वारा अभ्युदय को प्राप्त हुए। हे देवि! स्वामी ने आपको प्रशंसनीय वीर पत्नियों के सबसे ऊँचे पद में प्रतिष्ठित किया है। अब फिर कुमार से आप वीर प्रसविनी कह कर प्रसिद्ध होंगी।

धारि—देवि! मैं परम सन्तुष्ट हुई। क्योंकि पुत्र पिता के अनुरूप ही उत्पन्न हुआ है।

राजा—मौद्गल्य! हाथी का बच्चा यूथपति का को अनुकरण करता है अर्थात् वसुमित्र ने बालक होकर भी पराक्रम में महावीर का कार्य किया है।

कंचुकी—महाराज! कुमार ने जो यवन को विजय पूर्वक अश्वमेधीय घोड़ा लौटाकर वीराचरण दिखाया है, इससे हमारे चित्तमें कुछभी अचंभा नहीं होता। क्योंकि वड़वाग्नि जो अगाध समुद्र के जलको दग्ध करता है-उसने केवल महातेजा और्वऋषि के उरु देश से जन्म लिया है। सर्व शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले महाशूर के वंशज आप जब वसुमित्र के पिता हैं-तब फिर कुमार के पक्ष में यह काम कुछ भी विचित्र नहीं है।

राजा—मौद्गल्य! अब यज्ञसेन और अन्यान्य वन्दियों को कारागार से छोड़ दो।

कंचु—महाराज की जो आज्ञा। [गया]

धारि—जयसेन! जाओ-इरावती आदि रनवास की स्त्रियोंको पुत्र की विजय का वृत्तान्त सुनाओ।

(प्रतिहारी का गमनोद्योग)

धारि—आओ-ज़रा सुनकर जाओ।

प्रति—(लौटकर) लो मैं आगया।

धारि—(हौले से) तपनीयाशोक को दोहद देने के समय मैंने मालविका से प्रतिज्ञा करी थी कि तेरा मनोरथ पूर्ण करूँगी। अब उस के राजवंश में उत्पन्न होनेकी बात भी मालूम होगई है-अतएव यह सब हाल बताकर इरावती से कहना-अब मैं उस प्रतिज्ञा से भ्रष्ट होना नहीं चाहती। मालविका की अभिलाषा पूर्ण करनी ही पड़ेगी।

प्रति-देवी की जैसी आज्ञा! (गया)

प्रति-(पुनः प्रवेश करके) स्वामिनि! कुमार की विजय का समाचार सुन कर रनवास की स्त्रियों ने मुझको इतने गहने इनाम में दिये कि मैं मानों गहनों का एक सन्दूक ही बन गया।

धारि—इसमें अचंभा काहे का ? पुत्र की विजय का संवाद क्या साधारण भाग्योदय है? (पुत्र पर सभी स्त्रियों का समान स्नेह है-अतएव उन्होंने जो आह्लाद से विह्वल होकर तुमको ऐसा पारितोषिक दिया यह कुछ विचित्र नहीं है।

प्रति--(धीरे से) स्वामिनि ! इरावती ने कहा है आप पृथ्वी की समान प्रभुता शालिनी हैं, आपकी यह बात ठीक ही है—प्रतिज्ञा की की हुई बात में कभी अन्यथाचरण नहीं करना चाहिये।

धारि—भगवति ! आर्य सुमति ने मालविका को आर्य्य पुत्र के हाथ में प्रदान करने का पूर्व में संकल्प किया है, अब आप इस विषय में आज्ञा दीजिये,यही मेरी कामना है।

परि—अब आप ही सब प्रकार से मालविका की स्वामिनी हैं (मेरी आज्ञा की क्या आवश्यकता है ? आप अपनी इच्छानुसार ही कार्य कर सकती हैं)

धारि—(मालविका का हाथ पकड़ कर) यह मालविका रूपी परमोत्तम वस्तु आर्य्यपुत्र ग्रहण करें।

(राजा का लज्जा दिखाना)

धारि—(मधुर हँसी से) आर्यपुत्र क्या सोचते हैं ? मालविका के प्रति क्या निरादर दिखाते हैं ?

विदू—देवि ! प्रायः लोक व्यवहार में ऐसी ही रीति चाल है कि—नूतन वर लज्जा शील ही होता है।

(राजा विदूषक की ओर देखता है)

विदू--जब देवी ने स्वयं ही मालविका को देवी शब्द से सम्बोधन किया है-तो आपका कर्त्तव्य होगया कि मालविका को ग्रहण करें।

धारि—उच्च वंश ने ही इस राजकुमारी को देवी शब्द से सम्बोधन कराया है-अत एव इस विषय में बार बार कहना निष्प्रयोजन है।

परि—यह बात न कहिये। हे कल्याणि ! आकर (खान) में उत्पन्न हुई श्रेष्ठ मणि जिस प्रकार कंचन के संग मिलने पर शोभा पाती है, उसी प्रकार यह मालविका अब अनुरूप पति महाराज से मिलकर परम शोभा को प्राप्त हो।

धारि—(याद करके) भगवति ! क्षमा कीजिये। पुत्र विजय का वृत्तान्त सुनकर घूंघट की बात मैं भूल गई थी। जगसेन ! जाओ। धुले हुए कौषेय वस्त्र ले आओ।

प्रति—देवी की जैसी आज्ञा। (जाना और अवगुण्ठन लेकर फिर प्रवेश पूर्वक) देवि ! यह अवगुण्ठन ले आया।

धारि—(मालविका को अवगुण्ठनवती (घूँघट वाली) करके आर्यपुत्र ! अब इसको ग्रहण कीजिये।

राजा—हम आपकी आज्ञा के वश में हैं (अत एव आप की आज्ञा से मालविका के ग्रहण करने को राजी हूं, (लज्जा से झिझक कर) अहो ! मैंने मालविका को ग्रहण कर लिया।

विदू—अहो ! राजा के प्रति धारिणी देवी का कैसा अनुकूल भाव है ?

धारि-(परिजनों की ओर देखती है) मालविका का सम्मान करने के लिये ही परिजनों के प्रति आँखों द्वारा संकेत।

परि—(मालविका के पास जाकर) स्वामिनी की जय हो ! जय हो !

(धारिणी देवी परिव्राजिका की ओर देखती है)

परि—देवि ! आप में यह (ऐसा व्यवहार) विचित्र नहीं है पति वत्सला साध्वी रमणी स्वयं ही सपत्नी साधन रूप कार्य करके पतिकी सेवा किया करती है। देखिये-गंगाइत्यादि समुद्र गामिनी सब नदियां अन्यान्य नदियों के साथ मिलकर उनके जलको समुद्र में लेजाती हैं।

(निपुणिका का आना)

निपु—महाराज की जय हो ! इरावती देवी ने निवेदन किया है कि 'मैंने महाराज की विनती को अग्राह्य करके अपराध किया है, (प्रमद वन के बीच एकान्त में मालविका से उनको वार्त्तालाप करता देख कर क्रुद्ध हुई थी—उनकी विनती करने पर भी मैं प्रसन्न नहीं हुई थी, उनकी विनय को लंघन करके चली आई थी, अतएव मेरा अपराध हुआ है अब उस अपराधको मैं स्वयंही क्षालन करती हूं अर्थात् उसका प्रायश्चित्त करती हूँ। महाराजके हाथ में मालविका प्रदान के विषय में धारिणी देवी के पूछने पर मैंने अपनी सम्मति देदी है—सुतरां—महाराज का सन्तोषकारी कार्य्य ही किया गया है। अब महाराज मेरे प्रति अपने क्रोध को दूर करें। मालविका के मिलने से स्वामी का मनोरथ पूर्ण हुआ है। अतएव अब प्रसन्न होकर मुझको आनन्दित कीजिये।

धारि—निपुणिके ! इरावती की अनुकूलता महाराज अवश्य स्वीकार करेंगे।

निपु—अनुगृहीत हुई। (निपुणिका का प्रस्थान)

परि--महाराज ! अब माधवसेन के साथ मित्रता का सम्बन्ध स्थापित हुआ। अतएव उनका सन्मान करने के लिये जाना चाहती हूं। (आपसे अनुमति मिलने की प्रार्थना है)

धारि--मुझे छोड़ कर चला जाना भगवती को उचित नहीं है ।

राजा--भगवति ! मैं पत्र लिखने के समय आपको लक्ष्य करके उन माननीय माधवसेन को सन्मानादि ज्ञापन करूँगा ।

परि--यह व्यक्ति (मैं) आप दोनों के स्नेहाधीन है । (अतएव तुम्हारे अभिप्राय के विरुद्ध काम नहीं कर सकता)

धारि--आर्यपुत्र ! कहिये अब आपका और क्या प्रियकार्य करूँ ?

राजा--यही मेरे पक्ष में यथेष्ट प्रिय कार्य होगया । अब केवल भरत का वाक्य ही सफल हो । हे देवि ! तुम सदा मेरे प्रति प्रसन्नमुखी रहो । कभी तुम्हारी अप्रसन्नता न हो, मैं यही प्रार्थना करता हूँ । राज्य पानेसे जितने दिनों तक यह अग्निमित्र प्रजा पालक हुआ है,उतने दिनों तक प्रजा के अभिलाषित (जलाशय मार्गादिनिर्माण) कार्य ही जो सम्पादित हुए हैं सो नहीं वरन सबही काम उत्तम रीतिसे सम्पन्न हुए हैं । अतएव अब और कुछ प्रार्थनीय नहीं हैं ।

मालविकाग्निमित्र सम्पूर्ण ।

॥ ॐ हरिः ॥

महाकवि कालिदासकृत ।

(मूल तथा भाषानुवाद)

(भाषानुवाद)

प्रकाशक—

पं० हरिशंकर शिवशंकर शर्मा,
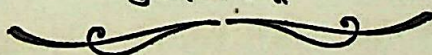
अध्यक्ष—हिमालय डिपो,

तथा—'हिमालय-प्रेस'

मुरादाबाद यू० पी०

श्रुतबोधः ।

भाषानुवादोपेतः ।

छन्दसां लक्षणं येन श्रुतमात्रेण बुध्यते ।
तमहं सम्प्रवक्ष्यामि श्रुतबोधमविस्तरम् ॥ १ ॥

अर्थ—जिसके सुनने मात्र से ही छन्द के लक्षण ज्ञात हो जाते हैं उसी 'श्रुतबोध' नामक छन्दोग्रंथ को वर्णन करता हूं ॥ १ ॥

संयुक्ताद्यं दीर्घं सानुस्वारं विसर्गसंमिश्रम् ।
विज्ञेयमक्षरं गुरु पादान्तस्थं विकल्पेन ॥ २ ॥

अर्थ—संयुक्त वर्णका आद्य अक्षर दीर्घ-अनुस्वार युक्त और विसर्ग जिसके अन्तमें हो-ऐसे अक्षर को गुरु कहते हैं और पद के अन्त-स्थित वर्ण को विकल्प करके गुरु समझना चाहिये ॥ २ ॥

एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।
त्रिमात्रश्च प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्द्धमात्रकम् ॥ ३ ॥

अर्थ—एक मात्रा वाला अक्षर ह्रस्व, दो मात्रा वाला दीर्घ-तीन मात्रा वाला प्लुत और अर्धमात्रक व्यञ्जन कहलाता है ॥ ३ ॥

यस्याःपादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥ ४ ॥

अर्थ-जिस श्लोक के पहले और तीसरे पद में बारह मात्रा, दूसरे पद में अठारह और चौथेमें पन्द्रह मात्रा हों, उसको 'आर्या' छन्द कहा जाता है । इसमें केवल मात्रा ही प्रधान हैं ॥ ४ ॥

आर्य्यापूर्वार्द्धसमं द्वितीयमपि भवति यत्र हंसगते ।
छन्दोविदस्तादानीं गीतिंताममृतवाणि भाषन्ते ॥ ५ ॥

अर्थ—हे हँस के समान चलने वाली ! जिस श्लोक में पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध आर्या के पूर्वार्ध की समान हो, तो हे अमृत तुल्य मधुर भाषिणी! छन्द शास्त्र के ज्ञाता उसको 'गीती' छन्द कहते हैं । इस श्लोक के पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध में ३०-३० मात्रा होती है ॥ ५ ॥

आर्योत्तरार्द्धतुल्यं प्रथमार्द्धमपि प्रयुक्तं चेत् ।
कामिनि तामुपगीतिं प्रतिभाषन्ते महाकवयः ॥ ६ ॥

अर्थ—हे कामिनी ! जिस श्लोक में आर्या के उत्तरार्ध की नाईं पूर्वार्द्ध भी हो-तो कविगण उसको 'उपगीति' छन्द के नाम से वर्णन करते हैं, उसके पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध में सत्ताईस सत्ताईस मात्रा हुआ करती हैं ॥ ६ ॥

आद्यचतुर्थं पञ्चमकं चेत् ।
यत्र गुरु स्यात्साक्षरपंक्तिः ॥ ७ ॥

अर्थ—जिस श्लोकमें पहला-चौथा और पाँचवाँ अक्षर गुरु हो,उसको 'अक्षरपंक्ति' कहा जाता है ॥ ७ ॥

अगुरु चतुष्कं भवति गुरू द्वौ ।
घनकुचयुग्मे शशिवदनासौ ॥ ८ ॥

अर्थ—हे घनस्तनी अर्थात् कठिन कुचा वाली ! जिस छन्दमें पहले चार अक्षर लघु और दो गुरु हों-उसका नाम 'शशिवदना' छन्द है ॥ ८ ॥

तुर्यं पञ्चमकं चेद्यत्र स्याल्लघु बाले ।
विद्वद्भिर्मृगनेत्रे प्रोक्ता सा मदलेखा ॥ ६ ॥

अर्थ—हे बालिके ! जिसमें चौथा और पाँचवाँ अक्षर लघु हो, तो हे हरिन की समान आँखों वाली ! विद्वद्वर उसको 'मदलेखा' कहते हैं ॥ ६ ॥

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुः पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ १० ॥

अर्थ—जिस श्लोक के चारों पदों में पाँचवाँ अक्षर लघु और छठा अक्षर गुरु हो तथा दूसरे चौथे पद में सातवाँ अक्षर ह्रस्व और पहले तीसरे पदमें सातवाँ दीर्घ हो, तो उसको 'अनुष्टुप् 'छन्द कहा जाता है ॥ १० ॥

आदिगतं तुर्यगतं पञ्चमकं चान्त्यगतम् ।
स्याद्गुरुचेत्संकथितं माणवकाक्रीडमिदम् ॥ ११ ॥

अर्थ—जिस श्लोक में पहला चौथा--पाँचवाँ तथा अन्त का (आठवाँ) अक्षर गुरु हो, तो उसको 'माणवकाक्रीड' छन्द कहा जाता है ॥ ११ ॥

द्वितुर्यषष्ठमष्टमं गुरु प्रयोजितं यदा ।
तदा निवेदयन्ति तां बुधा नगस्वरूपिणीम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जिस श्लोकमें दूसरा-चौथा-छठा-व आठवाँ अक्षर दीर्घ हो-पण्डित जन उसको 'नगस्वरूपिणी' छन्द कहते हैं ॥ १२ ॥

सर्वे वर्णा दीर्घा यस्यां विश्रामः स्याद्वेदैर्वेदैः ।
विद्वद्वृन्दैर्वीणावाणि व्याख्याता सा विद्युन्माला ॥ १३ ॥

अर्थ—हे वीणाकण्ठि अर्थात् वीणाकी नाईं मधुर बोलने वाली ! जिस श्लोक में सारे अक्षर दीर्घ हों और चार-चार अक्षरों के ऊपर विराम (ठहराव) हो, तो विद्वान् पुरुष उसको 'विद्युन्माला' छन्द के नाम से वर्णन करते हैं ॥ १३ ॥

तन्वि गुरु स्यादाद्यचतुर्थं पंचमषष्ठं चान्त्यमुपान्त्यम् ।
इन्द्रियबाणैर्यत्र विरामः सा कथनीया चम्पकमाला ॥ १४ ॥

अर्थ—हे दुबले अंगवाली ! जिस श्लोक में पहला चौथा, पाँचवाँ, छठा तथा अन्त का अर्थात् दशवाँ और अन्तके धोरेका अर्थात् नौमा अक्षर दीर्घ हो, एवं पाँच पाँच अक्षरों पर विराम हो, तो उसको 'चम्पकमाला' छन्द कहाजाता है ॥ १४ ॥

चम्पकमाला यत्र भवेदन्त्यविहीना प्रेमनिधे ।
छन्दसि दक्षा ये कवयस्तन्मणिवंधं ते ब्रुवते ॥ १५ ॥

अर्थ—हे प्रेमकी समुद्र स्वरूपिणी ! अन्त्य अक्षर से शून्य जहाँ चम्पक माला का पूर्व लक्षण हो, तो छन्दशास्त्र के ज्ञाता कविगण उसको 'मणि-बन्ध' छन्द के नाम से वर्णन करते हैं ॥ १५ ॥

मन्दाक्रांतान्त्ययतिरहिता सालङ्कारे यदि भवति या ।
सा विद्वद्भिर्ध्रुवमभिहिता ज्ञेया हंसी कमलवदने ॥ १६ ॥

अर्थ—हे आभूषण मण्डिते कमलवदने ! जो मन्दाक्रान्ता यति (विराम) शून्य छन्द हो, तो विद्वान् लोग उसे 'हंसी' छन्द कहते हैं * ॥ १६ ॥

ह्रस्वो वर्णो जायते यत्र षष्ठः कम्बुग्रीवे तद्वदेवाष्टमान्त्यः ।
विश्रामःस्यात्तन्वि वेदैस्तुरंगैस्तां भाषन्ते शालिनीं छान्दसीयाः ॥ १७ ॥

अर्थ—हे कम्बुग्रीवे ! अर्थात् शंखकी समान गर्दन वाली ! जिसमें छठा और अष्टमान्त्य अर्थात् नौमा अक्षर लघु हो और चार तथा सात अक्षरों पर विराम हो, तो हे तन्वि ! छन्द के जानने वाले लोग उसको 'शालिनी' छन्द कहते हैं ॥ १७ ॥

---

* मन्दाक्रान्ता में सत्तरह अक्षर होते हैं और ४ । ६ तथा ७ पर विराम है, सो देखिये । किन्तु इसी छन्द में दश अक्षर हैं । आदि के चार दीर्घ, फिर पाँच लघु, फिर एक दीर्घ और चार तथा छै अक्षरों पर विराम (विश्राम) है । इसमें सात अक्षर की पिछली यति नहीं है ।

आद्यचतुर्थमहीननितम्बे सप्तमकं दशमं च तथान्त्यम् ।
यत्र गुरु प्रकटस्मरसारे तत्कथितं ननु दोधकवृत्तम् ॥ १८ ॥

अर्थ—हे स्थूल नितम्ब वाली ! हे मदनोन्मादिनी ! जिस श्लोक में पहला, चौथा, सातवाँ तथा दशवाँ अन्त्यक्षर गुरु होवे-तो उसको 'दोधकवृत्त' छन्द कहा जाता है। (इस छन्द के प्रत्येक चरणमें ग्यारह अक्षर होते हैं) ॥ १८ ॥

यस्यास्त्रिषट्सप्तममक्षरं स्याद् ह्रस्वं सुजंघे नवमं च तद्वत् ।
गत्या विलज्जीकृतहंसकान्ते तामिन्द्रवज्रां ब्रुवते कवीन्द्राः ॥ १९ ॥

अर्थ—हे सुजंघे ! हे हंस गामिनी ! तीसरा, छठा, सातवाँ और नवाँ अक्षर ह्रस्व होने पर कविगण उसको 'इन्द्रवज्रा' छन्द कहते हैं। (इसके हरेक चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं) ॥ १९ ॥

यदीन्द्रवज्राचरणेषु पूर्वे भवन्ति वर्णा लघवः सुवर्णे ।
अमन्दमाद्यन्मदने तदानीमुपेन्द्रवज्रा कथिता कवीन्द्रैः ॥ २० ॥

अर्थ—हे मदनोन्मादिनि अर्थात् अधिक काम वाली ! प्रत्येक चरण का पहला अक्षर लघु होने पर उस श्लोक को कवीश्वर लोग 'उपेन्द्रवज्रा' छन्द कहते हैं। (इसके प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं) ॥ २० ॥

यत्र द्वयोरप्यनयोस्तु पादा भवन्ति सीमन्तिनि चन्द्रकान्ते ।
विद्वद्भिराद्यैः परिकीर्तिता सा प्रयुज्यतामित्युपजातिरेषा ॥ २१ ॥

अर्थ—हे चन्द्रकान्ते ! जिस श्लोक में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों के चरण हों अर्थात् पहला तीसरा चरण इन्द्रवज्रा का और दूसरा चौथा उपेन्द्रवज्रा का हो, तो हे सुन्दर केशवाली ! प्राचीन कविगण उसको 'उपजाति' छन्द के नाम से वर्णन कर गये हैं [इसके प्रति चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं) ॥ २१ ॥

आख्यानकी सा प्रकटीकृतार्थे यदीन्द्रवज्रा चरणः पुरस्तात् ।
उपेन्द्रवज्राचरणास्त्रयोऽन्ये मनीषिणोक्ता विपरीतपूर्वा ॥ २२ ॥

अर्थ—हे अर्थ प्रकट करने वाली ! जिस श्लोक का यह पहला चरण इन्द्रवज्रा की समान और शेष तीनों चरण उपेन्द्रवज्रा की समान हों—तो पंण्डित जन उसको 'आख्यानकी' वा 'विपरीतपूर्वा' छन्द कहा करते हैं ॥ २२ ॥

आद्यमक्षरमतस्तृतीयकं सप्तमं च नवमं तथान्तिमम् ।
दीर्घमिन्दुमुखि यत्र जायते तां वदन्ति कवयो रथोद्धताम् ॥ २३ ॥

अर्थ—हे चन्द्रमा की समान मुखवाली! पहला, तीसरा, सातवाँ, नवाँ और अन्त्यवर्ण दीर्घ होने पर कविगण उसको 'रथोद्धता' छन्द कहते हैं ॥ २३ ॥

अक्षरं च नवमं दशमं च व्यत्ययाद्भवति यत्र विनोते।
प्राकृतैः सुनयने यदि सैव स्वागतेति कविभिः कथिताऽसौ ॥२४॥

अर्थ—हे सुलोचने! हे विनोते! जिस श्लोकमें नवाँ और दशवाँ अक्षर विपरीत हो अर्थात् नवाँ दशवें के समान तथा दशम नवम के समान हो, तो कविगण उसको 'स्वागता' छन्द कहते हैं। रथोद्धता में नवाँ दीर्घ, दशवाँ ह्रस्व है, और इसमें दशवाँ दीर्घ तथा नवाँ ह्रस्व है, बस, इतना ही अन्तर समझना चाहिये ॥ २४ ॥

सतृतीयकषष्ठमनङ्गरते नवमं विरतिप्रभवं गुरु चेत्।
घनपीनपयोधरभारनते ननु तोटकवृत्तमिदं कथितम् ॥ २५ ॥

अर्थ—हे अनंग विलासिनि अर्थात् काम में रति वाली! जिस श्लोक में तीसरा, छठा, नवाँ और अन्त्य अक्षर गुरु हो, तो हे घनपीनस्तनभारनते! उसको 'तोटकवृत्त' छन्द कहा जाता है ॥ २५ ॥

यदि तोटकस्य गुरु पञ्चमकं विहितं विलासिनि तदक्षरकम्।
रससंख्यकं गुरु न चेदबले प्रमिताक्षरेति कविभिः कथिता ॥ २६ ॥

अर्थ—हे विलासिनि! हे अबले! यदि तोटक छन्द का पाँचवाँ अक्षर गुरु हो और छठा ह्रस्व हो, तो कविगण उसको 'प्रमिताक्षरा' कहते हैं ॥२६॥

यदाद्यं चतुर्थं तथा सप्तमं स्यात्तथैवाक्षरं ह्रस्वमेकादशाद्यम्।
शरच्चन्द्रविद्वेषिवक्त्रारविन्दे तदुक्तं कवीन्द्रैर्भुजंगप्रयातम् ॥२७॥

अर्थ—हे शरच्चन्द्र विनिन्दित मुख कमले! पहला, चौथा, सातवाँ और ग्यारवाँ अक्षर ह्रस्व होने पर कविगण उसको 'भुजङ्गप्रयात' छन्द के नाम से वर्णन करते हैं ॥ २७ ॥

अयि कृशोदरि यत्र चतुर्थकं गुरु च सप्तमकं दशमं तथा।
विरतिगं च तथैव सुमध्यमे द्रुतविलंबितमित्युपदिश्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—हे कृशोदरि! हे सुमध्यमे अर्थात् पतली कमर वाली! चौथा, सातवाँ और दशवाँ अक्षर गुरु होने और तत्तत्स्थान में विराम होने से उसका नाम 'द्रुतविलम्बित' छन्द है ॥ २८ ॥

प्रथमाक्षरमाद्यतृतीययोर्द्रुतविलंबितकस्य हि पादयोः।
यदि नास्ति तदा कमलेक्षणे भवति सुन्दरि सा हरिणीप्लुता ॥२९॥

अर्थ—हे कमलनयने ! यदि द्रुतविलम्बित छन्द के प्रथम और तृतीय पादोंमें आदि का अक्षर न हो, तो हे सुन्दरी । उसको 'हारिणीप्लुता' कहा जाता है ॥ २९ ॥

उपेन्द्रवज्राचरणेषु सन्ति चेदुपान्त्यवर्णा लघवः परे कृताः ।
मदोल्लसद्भ्रू जितकाम कार्मुके वदन्ति वंशस्थमिदं बुधास्तदा ॥३०॥

अर्थ-हे मद विलासिनि भ्रू शालिनि ! अर्थात् भ्रु कुटि विलाससे कामदेव के धनुष को जीतने वाली ! जो उपेन्द्रवज्राके चारों चरणोंमें उपान्त्यव ' अर्थात् द्वादश अक्षर के पूर्व का एकादश अक्षर ह्रस्व हो और बारहवाँ अक्षर गुरू हो, तो उसको पण्डित लोग 'वंशस्थ' छन्द कहते हैं ॥ ३० ॥

यस्यामशोकांकुरपाणिपल्लवे वंशस्थपादा गुरु-पूर्ववर्णकाः ।
तारुण्यहेलारतिरंगलालसे तामिन्द्रवंशां कवयः प्रचक्षते ॥ ३१ ॥

अर्थ—हे अशोकाङ्कुर सम पाणि पल्लवे अर्थात् अशोक के अंकुर—तुल्य पाणि पल्लव वाली ! जिस श्लोक में वंशस्थ छन्द के आदि अक्षर दीर्घ हों, तो हे तरुणाई के हेतु रति में इच्छुक ! उसको कवि गण 'इन्द्रवंशा' छंद कहते हैं ॥ ३१ ॥

यस्यां प्रिये प्रथमकमक्षरद्वयं तुर्य्यं तथा गुरु नवमं दशान्तिकम् ।
सान्त्यंभवेद्यतिरपि चेद्युगग्रहैः सा लक्ष्यताममृतलते प्रभावती ॥३२॥

अर्थ-हे प्रियतमे ! जिस श्लोक में दो अक्षर और चौथा-नवाँ-ग्याहवाँ तथा अन्त्य अक्षर दीर्घ हो और हे अमृतलतिके ! जहाँ चौथे और नवें अक्षर पर विराम हो, तो उसको 'प्रभावती'छन्द जान लेना चाहिये ॥३२॥

आद्यं चेत्त्रितयमथाष्टमं नवान्त्यं द्वावन्त्यौ गुरु विरतौ सुभाषिते स्यात् ।
विश्रामो भवति महेशनेत्रदिग्भिर्विज्ञेया ननु सुदति प्रहर्षिणी सा ॥३३॥

अर्थ-हे मधुरभाषिणि अर्थात् मीठीवाणी बोलने वाली ! जिस श्लोकमें तीन आदि के और अष्टम—दशम—द्वादश और त्रयोदश अक्षर दीर्घ हों, और तीन तथा दशवें अक्षर पर विराम हो—तो हे शोभायमान दाँतों वाली ! उसको 'प्रहर्षिणी' छन्द जानना ॥ ३३ ॥

आद्यं द्वितीयमपि चेद्गुरुतच्चतुर्थं यत्राष्टमंच दशमान्त्यमुपान्त्यमन्त्यम् ।
अष्टाभिरिन्दुवदने विरतिश्च षड्भिःकान्ते वसन्ततिलकां किल तां वदन्ति३४

अर्थ—हे इन्दुमुखी प्रियतमे ! पहला दूसरा चौथा आठवाँ, बारहवाँ और शेष अक्षर के गुरू होने तथा आठवें और छठे अक्षर में विराम रहने पर उसको 'वसन्ततिलका' कहा जाता है ॥ ३४ ॥

प्रथममगुरु षट्कं विद्यते यत्र कान्ते
तदनु च दशमं चेदक्षरं द्वादशान्त्यम् ।
गिरिभिरथ तुरंगैर्यत्र कान्ते विरामः
सुकविजनमनोज्ञा मालिनी सा प्रसिद्धा ॥ ३५ ॥

अर्थ—हे प्रियतमे ! जिस श्लोक में पहले छै अक्षर तथा दशम और त्रयोदश अक्षर ह्रस्व हों एवं आठ तथा सात अक्षरों पर विराम हो, तो हे सुन्दरि ! उसको श्रेष्ठ कविगण 'मालिनी' छन्द कहते हैं ॥ ३५ ॥

सुमुखि लघवः पञ्च प्राच्यास्ततो दशमान्तिम-
स्तदनु ललितालापे वर्णौ तृतीय चतुर्थकौ ।
प्रभवति पुनर्यत्रोपांत्यः स्फुरत्कनकप्रभे-
यतिरपि रसैर्वेदैरश्वैः स्मृता हरिणीति सा ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे मधुरभाषिणि सुमुखि ! हे तपे हुए कंचन की समान वर्ण-वाली ! जिस श्लोक में आदि के पाँच अक्षर तथा ग्यारहवाँ तेरहवाँ चौदहवाँ और सोलहवाँ यह अक्षर ह्रस्व हों और छं चार सात अक्षर पर विराम हो तो उसको 'हरिणी' छन्द कहा जाता है ॥ ३६ ॥

यदा पूर्वो ह्रस्वः कमलनयने पञ्च गुरव-
स्ततो वर्णाः पञ्च प्रकृतिसुकुमारांगि लघवः ।
त्रयोन्ये चोपांत्याः सुतनु जघनाभोगसुभगे
रसैः रुद्रैर्यस्यां भवति विरतिः सा शिखरिणी ॥ ३७ ॥

अर्थ—हे कमलाक्षि ! हे स्वभाव से ही सुकुमार अंगों वाली ! यदि आदिका अक्षर ह्रस्व हो, और फिर पाँच अक्षर दीर्घ हों, पुनः पाँच अर्थात् सात आठ नौ दस ग्यारह और चौदह पन्द्रह सोलह यह अक्षर लघु हों। जिसमें छठे और ग्यारहवें अक्षर पर विराम हो तो हे सुंदर जाँघों वाली! उसको 'शिखरिणी' छन्दकहा जाता है ॥ ३७ ॥

द्वितीयमलिकुन्तले गुरु षडष्टमं द्वादशं
चतुर्दशमथ प्रिये गुरु गभीरनाभिह्रदे ।
सपञ्चदशमन्तिमं तदनु यत्र कान्ते यति-
गिरीन्द्रफणभृत्कुलैर्भवति सुभ्रु पृथ्वीति सा ॥ ३८ ॥

अर्थ—हे भौंरों के तुल्य श्याम अलक वाली ! यदि दूसरा अक्षर गुरु हो, और हे गहरी नाभि वाली ! छठे आठवें बारहवें चौदहवें पंद्रहवें सत्रहवें यह अक्षर भी दीर्घ हों तथा हे कामिनी ! हे शोभायमान भ्रुकुटि वाली ! आठवें नवें अक्षर पर विराम हो—तो उसको 'पृथ्वी' छंद कहा जाता है ॥ ३८ ॥

चत्वारः प्राक् सुतनु गुरवो द्वौ दशकादशौचे—
मुग्धे वर्णौ तदनु कुमुदामोदिनि द्वादशांत्यौ।
तद्वच्चांत्यौ युगरसहयैर्यत्र कांते विरामो
मन्दाक्रांतां प्रवरकवयस्तन्वि तां सङ्गिरंते ॥ ३९ ॥

अर्थ—हे शोभनाङ्गि ! हे मुग्धे ! हे कुमुदामोदिनि ! हे कृशाङ्गि ! हेप्रियतमे ! यदि आदिके चार अक्षर गुरु हों, एवं दशम एकादश और द्वादश के अंत्य के त्रयोदश—चतुर्दश एवं अंत्य के षोडश तथा सप्तदश गुरु हों और जिसमें चार छै सात अक्षरों पर विराम हों; तो उसको कवि लोग 'मंदाक्रांता' छन्द कहते हैं ॥ ३९ ॥

आद्यं यत्र गुरुत्रयं प्रियतमे षष्ठं ततश्चाष्टमं
सन्त्येकादशतस्त्रयस्तदनुचेदष्टादशाद्यान्तिमाः।
मार्तण्डैर्मुनिभिश्च यत्र विरतिः पूर्णेन्दु बिंबानने
तद्वृत्तं प्रवदन्ति काव्यरसिकाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ४० ॥

अर्थ—हे पूर्ण चंद्रमा की समान मुखवाली प्यारी ! पहले तीन अक्षर गुरु होने पर और छठे आठवें बारहवें तेरहवें चौदहवें सत्रहवें और अठारहवें दीर्घ हों बारहवें सातवें अक्षर पर विराम होने से काव्य रसिक पण्डित लोग उसको 'शार्दूल विक्रीड़ित' छन्द कहते हैं। ४० ॥

चत्वारो यत्र वर्णाः प्रथममलघवः षष्ठकः सप्तमोपि
द्वौ तद्वत्षोडशाद्यौ मृगमदतिलके षोडशान्त्यौ तथान्त्यौ।
रम्भास्तम्भोरु कान्ते मुनिमुनिमुनिभिर्दृश्यते चेद्विरामो—
बाले वन्द्यैः कवीन्द्रैः सुतनु निगदिता स्रग्धरा सा प्रसिद्धा ॥४१ ॥

अर्थ—हे मृगमदतिलके अर्थात् कस्तूरी के तिलकवाली ! जिस श्लोक में चार अक्षर आदि के गुरु हों तथा छठा—सातवां—चौदहवाँ—पंद्रहवाँ सत्रहवाँ—अठारहवां—बीसवां—इकीसवां—यह अक्षर भी दीर्घ हों और हे कदली स्तम्भ की समान सुंदर जाँघों वाली ! जिस में ७–७–७ वर्णों पर विराम हो तो हे बालिके ! हे सुंदरि ! कवि लोग उसको 'स्रग्धरा' छंद के नाम से वर्णन करते हैं ॥ ४१ ॥

इति श्री महाकवि कालिदास कृतः भाषानुवादः
श्रुतबोधः समाप्तः।

शृंगार रसाष्टक

भाषानुवाद सहित ।

अविदित सुखदुःखं निर्गुणं वस्तुकिंचित्
जड़मति रिहकश्चित् मोक्ष इत्याचचक्षे ।
ममतुमत मनङ्गस्मेर तारुण्य घूर्णन्
मद कल मदिराक्षी नीवि मोक्षोहि मोक्षः ॥१॥

जगत्में कोई जड़ बुद्धिवाले कहते हैं कि अविदित सुखदुःख (जिसको सुख दुःख का बोध नहीं, अर्थात् जो सुख वा दुःख कुछ भी नहीं जानता) निर्गुण वस्तु ही मोक्ष है। किन्तु हमारे विचार से कामबाण द्वारा जर्जरित, कुछेक लाल रंग के नेत्रों वाली मद से मतवाली मदिराक्षी-स्त्रियों के नीवि वस्त्र की मोक्ष ही (नाभि से नीचे के वस्त्र धोती सारी आदि की गांठ का खुलना ही) मोक्ष है ॥ १ ॥

(दो बन्धु आपसमें वार्त्तालाप करते हैं। एक व्यक्ति दूसरे से पूँछता है) मित्र तुम किस भाव से समय बिताना चाहते हो? बंधु ने उत्तर दिया–सखे! रमणी के घर सुगंधि भरी पुष्पशय्या पर प्रियतमा के साथ सोता हुआ उसके कठिन दोनों कुचाओं को छातीसे चिपटा कर हे कांते! हे मुग्धे! हे कुटिलनेत्रे! हे चंद्रमुखी! मुझपर प्रसन्न होओ, इस प्रकार कह प्यारी का चित्त विनोदन करता करता निमिष मात्र की समान दिन बिताना चाहता हूं ॥ २ ॥

संध्या के समय कोई पति–वियोग से दुःखित रमणी कहती है। यह क्या संध्या का समय है? नहीं, यह सूर्य उदय होता है, चंद्रोदय होनेपर ऐसी प्रचण्ड द्युति क्यों होगी? (इसकी किरणों से तो मेरा शरीर जला जाता है; चंद्रोदय होनेपर उसकी किरणों से देह शीतल होता) तो क्या दावाग्नि है? यह भी कैसे संभव हो सकता है..? दावाग्नि होने पर आकाश के नीचे क्यों दिखाई देती? तो वज्र है। नहीं, वह भी नहीं है—निर्मल आकाश में वज्र का आविर्भाव किस

प्रकार होसकता है ? (आकाश के बादलों से ढक जाने पर ही वज्र की संभावना हो सकती है) हाय ! समझो—प्रोषितभर्तृका (जिनके पति विदेश वासी हैं) रमणी कुल की प्राणवायु का ग्रास करने की वासना से यह घोरतर रात्रि उपस्थित हुई है। सर्पिणी के देहमें स्थित भीषण मणि जिस प्रकार प्राणघाती है यह विभाकरी (रात्रि) भी विरहिणी स्त्रियों के पक्षमें उसी प्रकार की है। इसमें संदेह नहीं ॥ ३ ॥ (दिनमें चकवा, चकवी परस्पर मिलते हैं, किन्तु रात्रिकाल में उनका वियोग हो-जाता है, एकत्र नहीं रह सकते। एक तालाब के इस पार और दूसरा उस पार बैठ जाता है, दोनों अलग अलग स्थित होते हैं–यही विधाता का नियम है। इसी कारण रात्रिकाल में विरह से दोनों व्याकुल हो उठने हैं–कवि उसी का वर्णन करता है) इस रात्रि में चकवा प्यारी के विरह से कातर होकर एक बार आता है, एक बार जाता है, (इस पार उस पार दौड़ झपट करता है) फिर जल में गिर जाता है,कभी पद्म का अंकुर चुगता है, कभी दोनों पंखों को कंपाता है, कभी उन्मत्त की समान मन्द मन्द (धीमा धीमा) शब्द करता है, अहो ! चकवा प्यारी चकई के वियोग्य से विकल हो उठा है ॥ ४ ॥ चकवा पद्म का वक्र मृणाल तोड़ कर नहीं खा सकता। उसके चन्द्र होने का धोखा होता है। कमल के दलमें जो जल की बूंदे संलग्न रहती हैं, चकवा उनको भी नहीं पी सकता। क्योंकि जल की इन सब बूँदों को वह तारका मण्डल समझता है। भौंरों के बैठने से कमलों का वर्ण विचित्र होगया है, जल के भीतर उन सब कमलों की परछाँही देखकर कान्ता के विरह से दुःखित चक्रवाक् को इस प्रकार धोखा होता है कि वह असंध्या को संध्या और दिन को यामिनी (रात्रि) समझता है (भौंरा काले रंग का और पद्म लाल रंग का होता है) इसलिये दिन है वा रात्रि, यह चकवा कुछ भी निश्चय नहीं कर सकता ॥ ५ ॥ केतकी स्वर्ण वर्ण वाली है, उसकी गंध भी मनोहर है, यह बात संसार में विख्यात है। चंचल भ्रमर पद्म के धोखे से जिस प्रकार उसके फूल में गिर जाता है, और तुरन्त ही पुष्प के पराग से उसकी आँखें अंधी तथा काँटोंसे पर छिन्न भिन्न होजाते हैं। सखे ! यह देखो, अब भौंरा पुष्पमें रहभी नहीं सकता और न जाही सकता है ६

(पार्वती जी ने जब महादेव जी को पति रूप में प्राप्त करने ने लिये तपस्या करी, तब उसी समय उनका मनोगत अभिप्राय जानने के लिये देवादिदेव पशुपति ब्रह्मचारी के वेशसे पार्वती के आश्रम में उपस्थित हुए और कथोपकथन के बहाने उनके निकट शिव की निन्दा करी। झूठा

निन्दा सुनकर पार्वती को क्रोध उत्पन्न हुआ। जिस स्थान में सज्जनों की निन्दा होती है, वहाँ टिकना धर्म विरुद्ध विचार कर पार्वती उस स्थान से जाने को उद्यत हुईं। त्वरा प्रदर्शन करनेके कारण इनके वक्षः स्थल से वल्कल वस्त्र खस पड़ा, तब महेश्वर ने अपनी वास्तविक मूर्त्ति धारण पूर्वक हँसते हँसते पार्वती को पकड़ा। पार्वती का हृदय उस समय सात्विक रस से परिपूर्ण होगया। शरीर काँपने लगा, और समस्त अंग पसीने से सराबोर होगये। उन्होंने जाने की इच्छा से एक पग उठाया और एक पग भूमि में ही टिका रहा। उठा हुआ पग उठा ही रह गया, कवि उस दशा का वर्णन करता है) महादेव का दर्शन करते ही गौरी काँप उठीं, उनके सर्वाङ्ग में पसीना आगया। उन्होंने पृथ्वी पर रखने के लिये जिस चरण को उठाया था, वह वैसा का वैसा ही रह गया। मार्ग में किसी पर्वत के द्वारा प्रतिरुद्ध होने पर नदी जिस प्रकार आगे नहीं बढ़ सकती, गिरिराज नंदिनी पार्वती भी उस समय उसी अवस्था को प्राप्त हुईं। उस स्थान से न तो जासकीं और न रहही सकीं॥ ७॥

(रात्रि प्रभात होने पर कौवे काँव काँव शब्द करते हैं, इसी को लक्ष्य करके कवि कहता है) कौवे का-का, शब्द से इस संकेत वाक्य को प्रचारित करते हैं कि कोई कोई अबला सुरतश्रम से अवशाङ्गी और प्राणप्यारे की भुजलता में आवद्ध होकर सोरही हैं, वे शीघ्र उठ कर अपने अपने घरको जायँ, यह देखो सूर्य उदय होगया॥ ८॥

इति श्री महाकवि कालिदास कृत शृंगाररसाष्टक का भाषानुवाद समाप्त।

१००) या इससे अधिक के माल के ख़रीदारों को ३=) सैंकड़ा कमीशन दिया जाता है और ५००) या इससे अधिक मालके ख़रीदारों को ५) सैंकड़ा क़मीशन दिया जाता है।

गाढ़ा (खद्दर)

यह वही भारत-प्रसिद्ध और भारत की उन्नति का मार्ग व स्वदेशी भाइयों का अपनाया हुआ वस्त्र है। यह हमने बड़े परिश्रमों द्वारा स्वदेशी जुलाहों से बुनवाया है और बारीक, मोटा व हर तरह का माल तय्यार कराया है और नित्य २ उत्तम माल तय्यार कराने का प्रयत्न करते हैं, यह सिल्क के थानों से कई गुना खूबसूरत, मूल्य का थोड़ा और मज़बूतीमें बीसगुना अधिक है और धुले हुए थान अपनी खूबसूरती में सानी नहीं रखते। इसके धुले हुए थान बगले के परके समान सफ़ेद और खूबसूरतीमें तमाम प्रकारके थानों से उत्तम प्रतीत होते हैं, ऐसा कोई भी लट्ठे ज़ीन अथवा सूती वस्त्र का थान न होगा जो खूबसूरती तथा पायदारी में इसके थान का सामना कर सके। इस हमारे गाढ़े का बना कपड़ा ज्यों २ धुलता रहता है, त्यों त्यों बारीक, गफ़ और उत्तम होता जाता है। ऐसा कोई भी पहरने, ओढ़ने, बिछाने का वस्त्र नहीं है जो इसके थानों का बहुत उत्तम और अच्छा न बन सके। "यह बातहम दावे के साथ कह सकते हैं कि इसके बनेथानों का वस्त्र एक गौरवपूर्ण प्रतीत होता है।" इसके सब तरह के कपड़े जैसे-अँग-रखा, बगलबन्दी फतुई, कुरता, क़मीज़, चोगा, कोट, पार्सीकोट, वेस्टकोट, अचकन शेरवानी, हैदराबादी अचकन, चपकन, हर तरह के पाजामे, पतलून, सुथने, आदि पहरने तथा पलँगपोश, चादर, जाजमें, गिलाफ़, चांदनी, पर्दे आदि कोई भी ऐसा कपड़ा नहीं जो बड़ी उत्तमता से तय्यार न हो सके और यह बात तो प्रसिद्ध ही है कि गाढ़े के समान पायदारी अर्थात् मज़बूती में कोई दूसरा कपड़ा है ही नहीं।

मूल्य प्रत्येक थान का इस प्रकार है—

लम्बाई गज़	चौड़ाई इञ्च	मूल्य प्रत्येक थानका	लम्बाई गज़	चौड़ाई इञ्च	मूल्य प्रत्येक थानका
८ „	२१ „	१॥)	६ ,	३५ ”	६) ७) ८) ९)
१० „	२२ „	२)	१७ ”	३३ से ३४	६) ७) ८) ९)
११ „	२४ „	२॥)	१८ ”	३६ ”	८) ९) १०) १२) १५)
११॥ „	२५ „	३)	१९ ”	३८ से ४०	१०) १२)
१२ „	२७ „	३॥) ४) ४॥)	१९ से २०	४२ से ४४	१०) १२) १३) १४)
१३ „	३० „	५) ५॥)	१८ से २०	५० से ५४	१२) १४) १६) २०)
१४ „	३३ से ३४	६) ९८))			

मंगाने का पता—हिमालय डिपो, मुरादाबाद।

यौगिक पैशाचिक, दानवी, राक्षसी, मायावी विद्याका

अपूर्व सच्चा ग्रन्थ
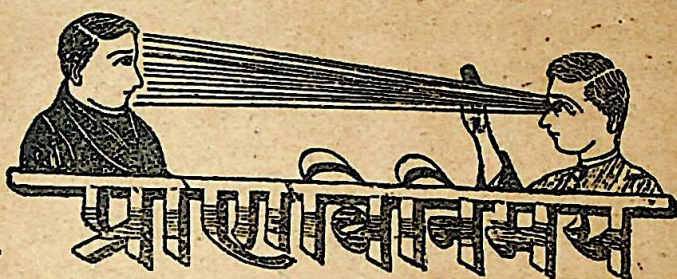
मैस्मेरिजम शिक्षक

इसी ग्रन्थके साधन द्वारा मदोन्मत्त हस्ती महाविकराल गर्जते हुए केहरी सिंहको दृष्टिमात्र [देखने भर] से ही स्तंभित करके स्थिर करदेना, शेर और बकरी को एक घाट पानी पिला देना, आकाश में स्वच्छन्द विचरण करते हुए पक्षियों को खेंच लेना तथा बड़े बड़े क्रूर कर्माओं को तृणवत बनादेना, अपरिमित धनको जो चिर काल से घरों जङ्गलों और पर्वतों में निरर्थक गढ़ा पड़ा है, जान लेना, अपने पूज्यपूर्वज पिता पितामहों को पवित्र आत्माओंको चक्र रचना द्वारा आकर्षित करके गुप्त बातों को पूँछना तथा उनसे वार्तालाप करके अपने को धन्य धन्य मानना तथा इसीके साधनों से रात्रि दिन चिन्तित रखनेवाले मुकद्दमों के परिणाम को जानना, विछोह से दुःखित परिणाम को जानना विछोह से दुःखित गृह से पलायमान, विदेश गये अपने प्रिय [प्यारे] को विदित करके बुलाना, अत्यन्त क्लेशित आर्त्तनाद करते हुए रोगियों को क्षण मात्रमें निरोग करके आनंद से विदा करना, भूत भविष्य और वर्त्तमान समय की वार्त्ताओं को जानलेना तथा इसके द्वारा स्त्री पुरुष आदि सबजीवोंको मोहित[वशीकरण] करके इच्छानुसार कार्य करा लेना, जिस पात्र [मनुष्य] पर योग [मैस्मेरिजम] किया हो, उसके द्वारा चोरी गये द्रव्य [पदार्थ] का पूछना और चुराने वालेको जानलेना, विदेशोंकी बात आदि सैंकड़ों हजारों आश्चर्य कारक कार्यों को केवल दृष्टि मात्र से बना देना, मनुष्य के हृदयके विचारों को जानलेना आदि इसीसे सिद्धहोते हैं मूल्य १॥) डाँकव्यय सहित।

मँगाने का पता--हिमालय डिपो, मुरादाबाद ।

मयंक बाला

इस उपन्यास में भाग्यचक्रका अपूर्व परिवर्तन दिखलाया गया है। प्रेमका सच्चा परिणाम भी इसी के पढ़ने से ज्ञात होता है मूल्य ।)

डल्ला

ऐसा कौन मनुष्य है जो इस महाधूर्ता डल्ला के नाम से परिचित न हो, यह उसी ठगनी चातुर्यता कीमूर्ति डल्ला का पूरा चरित्र है, जिस को पढ़कर अचम्भित होना पड़ता है, असंभव को संभव समझना पड़ताहै, इसने एक २ पुरुष को चार २ बार चकमा देकर उनका धन हरण किया है, इसके चरित्र पढ़कर मनुष्य छल प्रपंच का ज्ञाता होजाता है। पुस्तक अत्यन्त मनोरञ्जक हैं। मूल्य ॥)

ज्ञान-भक्ति उपदेश

यह पुस्तक कवितामें है, ज्ञान, तथा उपदेश दोहे छन्दराग आदि में वर्णन किये हैं। जिन्हें पढ़कर मनुष्य ज्ञान भक्ति में लय हो जाता है। मूल्य ।≶)

बालचिकित्सा।

इसमें बालकों को होने वाले समस्त रोगों की चिकित्सा तथा उनसे वचनेका उपाय बड़ी उत्तमता से समझाया है तथा बलीहोने का प्रकार भी लिखा है। प्रत्येक गृहस्थ के लियेअत्यन्त उपयोगी है।मूल्य ।)

नव चरित्र

हिन्दी संसार में अद्वितीय आविष्कार।

स्त्री शिक्षा का भण्डार,धर्म का आगार, पौराणिक तथा ऐतिहासिक उपहार

इसमें उन प्रातःस्मरणीय सती--साध्वी भारतीय--ललनाओंके जीवनचरित्र हैं, जिनके पढ़ने तथा सुनने से हृदय पवित्र हो जाता है, बड़े बड़े धार्मिक ग्रंथों की धार्मिक तथा पातिव्रत--धर्म की शिक्षाओं से कहीं अधिक इस की शिक्षायें हैं। सुन्दर सुन्दर रोचक उपन्यासों सेबढ़ चढ़ कर इस ग्रंथ की रोचक शिक्षाप्रद लेखनी है, इस पुस्तक को प्रारम्भ करने पर बिना आद्यो पान्त (पूरी) पढ़े हुए छोड़ना ही असम्भव है—

इसमें निम्नलिखित दृढ़ प्रतिज्ञा पतिपरायणा वीर विदुषियों के सविस्तृत जीवन चरित्र हैं-शकुन्तला, कादम्बरी, मालतीमाधव, नल दमयन्ती, रत्नावली, चञ्चल कुमारी, सती सावित्री, महारानीशैव्या, सती विमला।

ऐसे आदर्श नव चरित्रों का मूल्य डांक सहित १॥) मात्र है।

देवी गीता

मुमुक्षुओं के वास्ते मूल्य ॥) है

अवधूतगीता।

भाषाटीका सहित मूल्य ॥)

मँगाने का पता—हिमालय डिपो, मुरादाबाद।

वीरश्रेष्ठ जितेन्द्रिय, पंजाब भूषण।

पूरनमल भक्त

धर्मतत्परता, जितेन्द्रियता में और पितृ-भक्ति पर बलिदान होने वाले वीर पूरनमल का उपन्यास के रूप में साक्षात् चित्र खींचा गया है। पुस्तक पढ़ने और प्रत्येक गृहस्थ के पास रहने योग्य है, शिक्षा के साथ साथ पाठकों का मनोरंजन भी भली प्रकार होता है, एक बार हाथ में उठाते ही चित्त आद्योपान्त पढ़ने को चाहता है, भाषा भी इतनी सरल और रोचक है, कि चित्त पढ़ते २ उकताता भी नहीं है। अभीतक साङ्गीतों में ही यह पढ़ने को मिलता था, किन्तु साहित्य की शोभावृद्धि के लिए तथा हिन्दी के गौरवार्थ उपन्यास रूप में तैयार किया गया है, एकबार मँगा कर अवश्य पढ़िये मूल्य सजिल्द १॥)

बैतालपच्चीसी

इसमें स्त्री, पुरुष, बालक सब के पढ़ने योग्य शिक्षाप्रद २५ कहानिया हैं। मूल्य केवल मात्र ॥|) है।

रानाडे-चरित्र

यह उन्हींदेश के सच्चे हितषी, स्वदेशी के प्रचारक भारत माता के आदर्श पुत्र महादेव गोविन्द रानाडे का जोवन चरित्र है, जिसको पढ़कर बालक वृद्ध युवा स्त्री सबको शिक्षाग्रहण करनी चाहिये। मूल्य।)

* विलास कुमारी *

जिसने अन्यायी यवन समाट् औरङ्गज़ेब के समय में पापी सेनापति से अपने पिताका बदला लिया था, उसका तथा वीरश्रेष्ठ दुर्गादास का, युवराज अमरसिंह का, केसरी सिंह का, काले पहाड़ आदि यवनों से भयङ्कर युद्धों का विवरण पढ़ना है तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें। पुस्तक इतनी योग्यता के साथ लिखी गई है कि सब दृश्य नेत्रों के समक्ष ही ज्ञात होने लगते हैं। मूल्य डाँक व्यय सहित २) रु०

संस्कृत हिन्दी कोष

संस्कृत-हिन्दी कोष अकारादि क्रमसे संस्कृत शब्दोंका हिंदी भाषा में अर्थ प्रथम संस्कृत शब्द कौन है? यह बतलाया है! फिर लिङ्ग वाचक हिंदी भाषा में जितने शब्द हैं उनके सब के अर्थ लिखे हैं। मूल्य जिल्द सहित पुस्तक का १।

हिन्दी उर्दू कोष

(हिन्दी उर्दू डिक्शनरी) अकारादि क्रमसे यह हिन्दी उर्दू कोष है। हिन्दी उर्दू शब्दों का अर्थ है। विद्यार्थी वकील मुख्तार और सर्व साधारण के काम की चीज़ है मू० ॥)

षट्चक्र

इस पुस्तक में छहों पद्मों का पृथक् २ वर्णन है। योगके जिज्ञासुओं का यह पुस्तक अद्वितीय है अवश्य देखना चाहिये। मूल्य।)

योगबीज मूल्य।)

मँगाने का पता—हिमालय डिपो मुरादाबाद।

जिन शैरों को सुनकर तमाम उम्र भूलते ही नहीं, उन्हीं माने !खेज़ (मतलब भरे हुए) चुह चुहाते हुए शैरों को जहां-तहां से पढ़ कर, सुन कर, लिख कर यह अभूतपूर्व संग्रह किया गया है । प्रेमियों को अपनाने के लिये अलभ्य पुस्तक है। इसमें प्रायः सभी चुने हुए उर्दू शायरों जैसे मीर, दाग़, अमीर, सादी, ग़ालिब, जौक, चिरकीन, ज़फर, नज़ार, बरबाद, अकबर आदि के बढ़िया शैरों का संग्रह है। नमूना तो देखिये—

ख़ाकसारी ज़ाहिदों की बेसबब होती नहीं।
ख़ाक में मिलता है दाना सब्ज़ होने के लिये ॥
अफ़शाए राज़े इश्क में गो ज़िल्लतें सहीं।
लेकिन उसे जता तो दिया, जान तो गया ॥

पुस्तक मोटे अक्षरों और बढ़िया कागज़ पर छापी गई है। प्रत्येक शैर ख़ूबसूरती के साथ अलग-अलग सजा कर रक्खा गया है। मूल्य ॥)

जादू-विद्या

इस पुस्तक में अँग्रेज़ी ढँगके जादूके खेल हैं जो अँग्रेज़ दिखाते हैं। मूल्य ।)

प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान

देवयानी और शर्मिष्ठा

महर्षि शुक्राचार्य जी की माननी कन्या का असुरराज वृषपर्वाकी कन्या से वैमनस्य होना और उसका परिणाम तथा जिस कठोर परिश्रमसे महर्षि बृहस्पतिके पुत्र कच ने सञ्जीवनी होना विद्याऽध्ययन करी थी, उसका भी रोमाञ्चकारी वृत्तान्त इसी में है। मूल्य ।=)

मँगाने का पता—हिमालय डिपो, मुरादाबाद ।

सब श्लोकोंकी अकारादि अनुक्रमणिका सहित

श्रीमद्भगवद्गीता भाषाटीका

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।

अर्थात्, एक गीता ही सम्पूर्ण ज्ञान कराने को समर्थ है दूसरे शास्त्रों की क्या आवश्यकता है? गीता के एक श्लोक का पाठ बड़े २ पापों का नाश करता है।

गीता के पढ़ने से पुण्य होता है, शान्ति लाभ होता है, भगवत् वाक्य है, गीता के समान दूसरा ग्रन्थ नहीं है, इसी ग्रन्थ को हमने सुन्दर गुटका के आकार में छापकर जिल्द बँधवा दी है। मूल्य भी सर्व सुगम पक्की ज़िल्द का ॥) है।

भगवत् भक्ति के अगाध प्रेम-गायनोंका

भजन संग्रह।

यदि आप सब प्रकार के गायनों का आनन्द लेना चाहते हैं, भगवत् भक्ति सुख लेना चाहते हैं, तो इस पुस्तक के मँगाने में विलम्ब न करें, इतना उत्तम संग्रह और कहीं न मिलेगा। इसमें रागरागनी, भजन प्रभाती, आरती, विनय स्तुति, भैरवी, सारंग, ठुमरी, दादरे, धनाश्री, होली, काफ़ी, गाने थियेटर आदि हैं, जो स्त्री, पुरुष, बालक बालिकाओं सब के पढ़ने योग्य हैं, मूल्य ॥।) मात्र है।

मशहूर, मशहूर, शायरों की चोज़ भरी गज़लों का

ग़ज़ल संग्रह।

जिन ग़ज़लों को एक बार सुनलेने पर ही, वे साख्ता मुंह से वाह वाहनिकल पड़ती है, बारम्बारगाने पर भी तृप्ति नहीं होती, उन गज़लोंका बड़े परिश्रम से संग्रह करा कर छापा है, जिसमें हरसमयके गाने की; हर तरह की गज़लें हैं. इतनी सुन्दर ग़ज़लों का संग्रह और कहीं भी न मिलेगा, मू० ॥)

मँगाने का पता—हिमालय डिपो, मुरादाबाद।

प्रत्येक भारतवासी स्त्री पुरुष बालक बालिकाओंके पढ़ने योग्य

स्वाधीन भारत का अन्तिम इतिहास

क्षत्रियकुल दिवाकर भारतीय अन्तिम सम्राट् पृथ्वीराज चौहान।
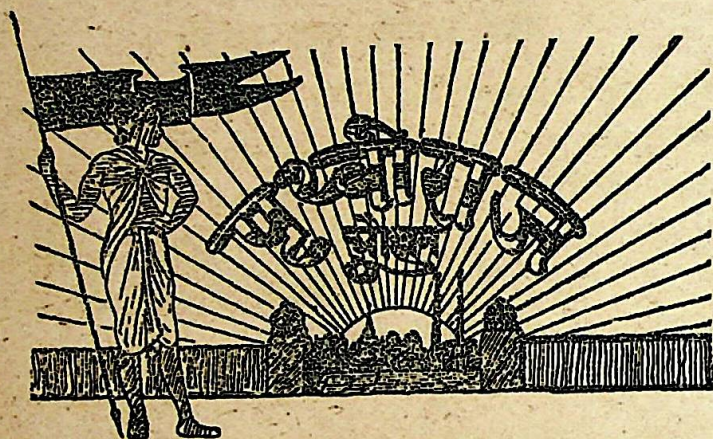
ऐसा कौन भारतवासी है, जो इनकी वीरता के गुणों से तथा भारत वर्ष पर सत्रह बार मोहम्मदगौरी के भीषण आक्रमणों के नाम से भली प्रकार परिचित न हो ? यह उसी वीरका चरित्र है, जो बारम्बार मोहम्मद गौरीको पकड़ कर उसके मैं तुम्हारी गऊ हूं इतनी क्षमा माँगनेपर ही छोड़ देता था, उसके सब दृश्योंका सविस्तार वृत्तान्त तथा दिल्ली पर अधिकार संयोगिता हरण देश द्रोही जयचन्द की पराजय आदि रहस्यमयी घटनाएं बड़ी मनोरञ्जक चित्ताकर्षक और वीरता पूर्ण ऐतिहासिक गाथायें इसी ग्रन्थ में हैं और इस महाबलशाली शब्दवेधी विद्या के ज्ञाता का प्रधान सेनानायक चामुण्डराय था, जिस के नेत्रों से केवल युद्ध के समय ही पट्टी खोली जाया करती थी, इस के युद्धों का विवरण भी पढ़ने योग्य है तथा निर्जीव आत्माओं को सजीव कर देने वाला पृथ्वीराज रासे के रचयिता महाराज के सच्चे सुहृद आशु कविवर भाट चन्दवरदाई की वीरता तथा स्नेहता आदर्श है और दिल्लीपति पृथ्वीराज का सच्चा चरित्र न जानने के कारण जो किम्वदन्ती हैं, उन सबका इसी ग्रंथ में शङ्का समाधान भी कर दिया गया है, तथा भारत का भविष्य फल (आगे को क्या होगा) जो समरसिंह को अंतिम युद्ध के समय देवादिदेव महादेव के गण वीरभद्र ने सुनाया था, वह भी मय सरल भाषा टीका के इसी ग्रंथ में है। मूल्य डांकव्यय सहित २) है।

सावरो यो न जानाति स रुष्टः किं करिष्यति ।

जो सावर तन्त्र को नहीं जानता है, वह मेरा नाराज़ होकर ही क्या कर लेगा ?

विधान तथा भाषाटीका सहित । बृहत्सावर तन्त्र

अनमिल अक्षर अर्थ न जापू । प्रकट प्रभाव महेश प्रतापू ॥

पाठकगण ! जितने मंत्र, तंत्र, यंत्र, हैं वह समस्त शिवजी ने कलियुग में कील दिये हैं, इस कारण सिद्ध होते नहीं । कलियुग में सिद्ध होने के सावर मंत्र शिवजी ने बनाये हैं । जो तत्काल फल देते हैं । प्रत्यक्ष में देखा जाता है कि बिच्छू, सर्प, सिंह आदि जीव इन सावर मंत्रों से ही पकड़े जाते हैं, सावर मन्त्रों से ही समस्त रोगों की चिकित्सा होती है, मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन आदि षट्कर्म सावर मन्त्रों सेही सिद्धहोते हैं, सावर मन्त्रों द्वारा बङ्गाल आदि में जादू टोना, छिप,जाना, तोता-बकरा बनालेना,तथा दूर,देशकी वस्तु मँगालेना,भूत,पिशाच,डाकिनी, शाकिनी, यक्षिणी को वशमें करलेना इत्यादि इन्द्रजाल विद्या समस्त सावर मन्त्रों से ही सिद्ध होती है । आज हम इस अत्यन्त गोप्य सावरतंत्र को जगत् कल्याणार्थ प्रकाशित किये देते हैं कि जिससे मनुष्य थोड़े दिनों में सुख-पूर्वक साधन करके विचित्र २ आश्चर्ययुक्त कार्य सिद्ध करलेता है । हमनेयह सावरतंत्र बड़े परिश्रम से प्राप्त किया है । जिसके देखने से अविश्वासी मनुष्य को भी विश्वास करना पड़ता है मूल्य डाँकव्यय सहित १॥) मात्र है ।

मँगानेका पता—हिमालय डिपो, मुरादाबाद ।

खूंन साफ करने की मशहूर दवा।

सारसा-प्यारेला

शरीर में अच्छी चीज़ खून ही है। खूंन ही से मांस, मज्जा, और वीर्य्य (धातु) बनता है। मांसपेशी गठीली और मज़बूत होती हैं तथा सब इन्द्रियां बराबर अपना अपना काम किया करती हैं और जहां रक्त ख़राब हुआ कि साथ ही नये रक्त की पैदायश बन्द होजाती है, सब इन्द्रियां अपना अपना काम छोड़ देती हैं, इसी से भूंख घट जाती है, धातु ख़राब होजाती है, और नया वीर्य्य बनना बन्द हो जाता है। शरीर दुवला और जर्जर हो जाता है दाद खाज और फोड़ा फुन्सी तथा लाल २ चकत्ते शरीर में निकलने लगते हैं और कुछ दिनों में मनुष्य बिलकुल बेकाम होजाता है।

इसीसे खूंन की हिफाज़त रखना मनुष्य का कर्त्तव्य है, खूंन तीन तरह से ख़राब होता है। (१) माता पिता के दोषसे (२) आतशक गर्मीसे (३) पारा या पारा मिली दवा खाने से।

हमारे इस सारसा प्यारेला की एक दो शीशी पीने से गन्दा रक्त साफ़ हो जाता है और साथ ही नया रक्त दिन दिन बढ़ने लगता है। शरीर की कुल बीमारियां दूर हो जाती हैं और कुछ ही दिनों में मनुष्य मज़बूत और ताक़तवर होजाता है। मूल्य १॥=) शीशी पोस्टेज १ से ३ शीशी तक ।≶)

कब्ज नाशक. अतिसार नाशक

इस दवा की एक खुराक खाने से फौरन ही कब्ज की शिकायत दूर होती है। यह भूख को लगाती है। रात को खकार सोने से सुवह को दस्त साफ होजाता है। मूल्य एक शीशी का ॥)

यह दस्तों की सर्व श्रेष्ठ औषधि है। इससे पतले और बार २ दस्तों का आना। हरे, पीले, आँव के दस्त संग्रहणी तक को आराम हो जाता है। मूल्य एक शीशी ॥)

मँगाने का पता--हिमालय डिपो, मुरादाबाद।

दर्द नाशक तैल ।

सब प्रकार के दर्दों की मशहूर दवा ।
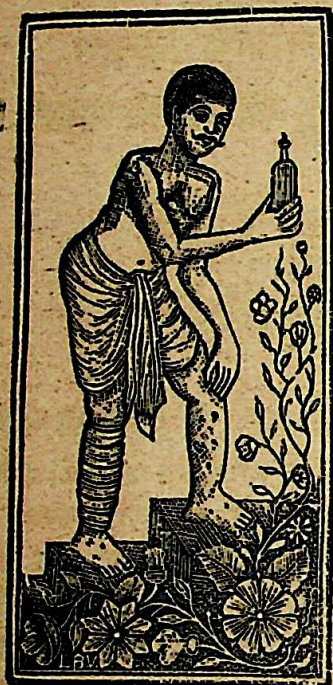
इस तैल को सेवन करने से सम्पूर्ण शरीर की पीड़ा, लकवा आधे शरीरका रहजाना, एक हाथका रहजाना, एक पांव का रहजाना, निरन्तर शरीर का कांपना, ग्रीवा का रहजाना, ठोड़ी जकड़ना, कमर की पीड़ा, सन्धिवात [जोड़ों की पीड़ा] कुबड़ापन, जिह्वाकी जड़ता, हड्डियों का टूटना, हाथों—पांव का कांपना, शिरका दर्द, शूल, घुटनोंकी पीड़ा, अर्दित रोग और सब प्रकार के वात रोग नष्ट होते हैं । जो वातरोग किसी दवा से आरोग्य नहीं होते, वे इससे निश्चय आराम होजाते हैं । मूल्य १॥) शीशी, डाँक व्यय ।~)

आतशक (गर्मी) की दवा ।

इस अमूल्य दवा के खाते ही खाते घाव आप ही सूख जाते हैं । इस दवासे ऐसे ऐसे रोगी जो जीनेकी आशा छोड़ बैठे थे और जिनका कि बदन बिलकुल फूट गया था तथा बदबू आती थी एक ही दिन में तीन२ चार २ जोड़ी कपड़े बदलने पड़ते थे, जिन्हें उठने बैठने तक की ताक़त न थी, अच्छे चंगे जवान हो गये और न अभीतक उनके दुबारा हुई है और न होनेकी उम्मेद पाई जाती है । बिलकुल जड़ से नष्ट होगई इसके खाने में किसी किस्म का परहेज करना नहीं पड़ता है इस अमूल्य दवा की तारीफ़ कहां तक करें ? दाम २।) डाक खर्च ।~)

नयन चन्द्रोदय-

नेत्रों में लगाते ही ठंडक पड़जाती है । रतौंधी, नेत्रों का दुखना, लाली, फुल्ली इसके सेवन से नष्ट होजाते हैं मूल्य १)

मँगाने का पता--हिमालय डिपो, मुरादाबाद ।